※ श्रीगणेशायनमः ※

कूर्म्मपुराण

—:※:—

कूर्म्मपुराण की ब्राह्मीसंहिता मात्र पुराणप्रेमी विद्वद्वर्ग की सेवा में गुरुमण्डलग्रन्थमाला के २२वें पुष्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। पुराण गणना क्रम में यह १५ वां महापुराण आता है।

कूर्म्मपुराण के प्रतिपाद्य विषयों का निरूपण बृहन्नारदीय पुराण में इस प्रकार किया गया है :—

ब्रह्माजी बोले हे वत्स! आज कूर्म नामक पुराण का संक्षिप्त तथा विषय जो लक्ष्मी कल्पानुसार हुआ है सुनोः—इसमें कूर्म वपु भगवान् ने धर्मार्थ काम मोक्ष का पृथक् पृथक् माहात्म्य इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग से कृपाधिक्य द्वारा ऋषियों को सुनाया। यह मङ्गलमय पुराण १७००० श्लोकों का एवं ४ चार संहिताओं से युक्त है।

इसकी ब्राह्मी संहिता में (जो प्रस्तुत है) नानाविधधर्मों का विविध कथाओं के प्रसङ्ग से वर्णन किया गया है और वे सब अवश्य ही मनुष्यों को सद्गति देने वाले हैं।

पूर्वभागमें :—

पूर्व विभाग में प्राचीन काल में पुराणों के उपक्रम लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्न का सम्वाद कूर्मरूप भगवान् विष्णु और ऋषियों का सम्वाद वर्णाश्रम की आचार संहिता सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन संक्षेप से काल परिसंख्या एवं

मुद्रक —
सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी
निवासी श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद
सूनु॰ श्रीअवधकिशोरसिंहः
स्वयन्त्रालये
गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
नामके
स्थानम् :—८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

है। तीसरी सौरी संहिता (अनुपलब्ध) है यह सम्पूर्ण मनुष्यों का इष्ट सम्पादन करने वाली छै प्रकार की कर्मसिद्धि को छै तरह से कामी (काम प्रधान लोगों) को बोधन करती है।

चतुर्थी संहिता (अनुपलब्ध) वैष्णवी है जो मोक्ष देने वाली कही जाती हैं। यह भी चारपादों में है द्विज आदि के लिये साक्षात् ही ब्रह्मस्वरूपिणी है ये क्रमशः ६ हजार ४ हजार और दो हजार श्लोकों में विभक्त है।

फलश्रुतिः—

इस चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाले कूर्म पुराण को जो लोग इन्हें पढते या सुनते हैं सभी को उत्कृष्ट गति प्रदान करता है।

जो व्यक्ति इसे अविचल भक्तिपूर्वक लिखकर सोने की कूर्म प्रतिमा बनाकर अयनादि विशेपपर्व पर योग्य ब्राह्मण को देता है वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त होगा।

इस प्रकार हमें उपलब्ध कूर्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता ही मिली है इसे सम्पूर्ण रूप से अविकल छपाने की आवश्यकता आ बनी है, क्योंकि १७ हजार के विशाल ग्रन्थ में केवल एक तिहाई की ही उपलब्धि हुई है। बहुत ग्रन्थ भाण्डारों के अधिकारी वर्ग से सर्वत्र ही इस विपय में विशेपतया सानुरोध पत्राचार करने पर भी विशेप सफलता अबतक नहीं मिली है। सभी विद्वद्वर्ग से इस अपूर्व ज्ञान भण्डार को प्रयत्न पूर्वक जनता के हित से प्रकाशित करने के लिये इस एवं अभीतक प्रकाशित अन्य पुराणों की सम्पूर्ण प्रति के प्राप्त्यर्थ सादर निवेदन है। यह पुराण पूर्णरूपेण नाना उपादेय विपयों से जन मन का विशेप कल्याण कर उन्हें "सर्वभूतहितेरताः" बनाये यही हार्दिक कामना है। ग्रन्थ की आदर्शप्रति वङ्गवासी प्रेस, और एशियाटिक सोसाइटी में छपे कूर्म पुराण हैं। भविष्य में सभी गुरुमण्डल में प्रकाशित पुराण ग्रन्थों

ल्प के अन्तमें विभु परमात्मा का स्तवन है। इसके बाद संक्षेप से सर्ग का निरूपण, शङ्करजी का चरित्र एवं पार्वती के सहस्रनाम के साथ योग का प्रतिपादन है। भृगुवंश के समाख्यान के बाद स्वायम्भुव का वर्णन है देवगण आदि की उत्पत्ति व दक्षयज्ञ का विध्वंस फिर दक्ष सृष्टि की कथा और तत्पश्चात् कश्यपवंश का वर्णन श्री कृष्ण को शुभ आत्रेय वंश का कथन है। महर्षि मार्कण्डेय और कृष्ण का सम्वाद, व्यास पाण्डवों का परस्परसम्वाद युगधर्म का निरूपण, व्यास जैमिनि का सम्वाद, वाराणसी एवं प्रयाग का माहात्म्य उसके बाद त्रैलोक्य वर्णन तथा वेद की शाखा का निरूपण है।

उत्तरभाग में :—

इसके उत्तर भाग में सर्वप्रथम गीतिश्वरी ईश्वरगीता व्यास गीता कही गई है जो विविध धर्मों का प्रबोधन कराती है। तब नाना तीर्थों का पृथक् माहात्म्य है। यह ब्राह्मी संहिता का वर्णित विषय है। इसके बाद निरूपण में भागवती संहिता का निरूपण जिसमें वर्णों की पृथक् वृत्ति का प्रतिपादन है। पाचपादों में भागवती संहिता का (अनुपलब्ध) विभाग है।

हे वत्स! इसके प्रथम पाद में सदाचारात्मक भोग और सौख्य को बढ़ानेवाले वाली ब्राह्मणों की व्यवस्थिति कही गई है। द्वितीय में क्षत्रियों की वृत्ति का वर्णन है, जिस पालन कर पापों को दूरकर स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है। तृतीय में वैश्यजाति की चार प्रकार की वृत्ति बतलायी गई है जिसे पालन कर मनुष्य उत्तम गति प्राप्त कर लेता है। इसके चतुर्थ पाद में शूद्रवृत्ति का प्रतिपादन है। श्रीभगवान् हरि जो सबलोगों के हाँ श्रेय को बढ़ाते हैं इसके पालन से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके पञ्चम पाद में सङ्कर जातियों की वृत्ति बतलाई गई है जिससे भावी जन्मों में प्राणी को जाना होता इस प्रकार पञ्चपादी (पाच पादों वाली) भागवती संहिता बतलाई गई

है। तीसरी सौरी संहिता (अनुपलब्ध) है यह सम्पूर्ण मनुष्यों का इष्ट सम्पादन करने वाली छै प्रकार की कर्मसिद्धि को छै तरह से कामी (काम प्रधान लोगों) को बोधन करती है।

चतुर्थी संहिता (अनुपलब्ध) वैष्णवी है जो मोक्ष देने वाली कही जाती हैं। यह भी चारपादों में है द्विज आदि के लिये साक्षात् ही ब्रह्मस्वरूपिणी है ये क्रमशः ६ हजार ४ हजार और दो हजार श्लोकों में विभक्त है।

फलश्रुतिः—

इस चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को देने वाले कूर्म पुराण को जो लोग इन्हें पढते या सुनते हैं सभी को उत्कृष्ट गति प्रदान करता है।

जो व्यक्ति इसे अविचल भक्तिपूर्वक लिखकर सोने की कूर्म प्रतिमा बनाकर अयनादि विशेषपर्व पर योग्य ब्राह्मण को देता है वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त होगा।

इस प्रकार हमें उपलब्ध कूर्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता ही मिली है इसे सम्पूर्ण रूप से अविकल छपाने की आवश्यकता आ बनी है, क्योंकि १७ हजार के विशाल ग्रन्थ में केवल एक तिहाई की ही उपलब्धि हुई है। बहुत ग्रन्थ भाण्डारों के अधिकारी वर्ग से सर्वत्र ही इस विषय में विशेषतया सानुरोध पत्राचार करने पर भी विशेष सफलता अबतक नहीं मिली है। सभी विद्वद्वर्ग से इस अपूर्व ज्ञान भण्डार को प्रयत्न पूर्वक जनता के हित से प्रकाशित करने के लिये इस एवं अभीतक प्रकाशित अन्य पुराणों की सम्पूर्ण प्रति के प्राप्त्यर्थ सादर निवेदन है। यह पुराण पूर्णरूपेण नाना उपादेय विषयों से जन मन का विशेष कल्याण कर उन्हें "सर्वभूतहितेरताः" बनाये यही हार्दिक कामना है। ग्रन्थ की आदर्शप्रति वङ्गवासी प्रेस, और एशियाटिक सोसाइटी में छपे कूर्म पुराण हैं। भविष्य में सभी गुरुमण्डल में प्रकाशित पुराण ग्रन्थों

को अपने यहाँ उपलब्ध प्रामाणिक हस्तलिखित ग्रन्थों से तुलना कर जो विद्वान् मेरा मार्ग प्रदर्शन कर अधिक प्रथ पाठ लिख भेजने की कृपा करेंगे उन्हें परिशिष्ट रूप से छपाकर साङ्गता सिद्धि की चेष्टा करूंगा। आगे जिन महापुराणों को छपवाना है उनके लिये विशिष्ट ज्ञातव्य सूचना भेजने वाले विद्वानों का मैं आभार मानूंगा।

इस ग्रन्थ की अवशिष्ट तीन संहिता, भागवती सौरी और वैष्णवी जिन महानुभावों के पास होवें कृपाकर मुझे पत्र द्वारा सूचना दें उनकी सुविधा के अनुरूप ही इन संहिताओं का प्रतिलिपीकरण कर छपवाने का विशेष आयोजन किया जायगा। इस ग्रन्थ का प्रकाशन उत्साहवश शीघ्रता में श्रीविश्वनाथजी शास्त्री के सहयोग से नवलगढ़निवासि श्री रामनाथजी दाधीच पुराण साङ्ख्य स्मृतितीर्थ साहित्य शास्त्री के सम्पादकत्व में हुआ है तदर्थ वह धन्यवादार्ह हैं भ्रम प्रमादादिवश समागत त्रुटियों के लिये संशोधन करने की प्रार्थना है।

शुभमिति द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला
१० बुधवार
२०१८ विक्रमसम्वत

मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता -१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

कूर्मपुराण की विवेचना

पुराणेधर्मनिर्णयः (पद्मपुराणम्)

संस्कृत वाङ्मयमें पुराणों का एक विशिष्टस्थान है, वेद, और स्मृति के अनन्तर पुराणों काही प्रमाणरूपसे आस्तिकजनग्रहण करते हैं। इनमें वेदार्थ का स्पष्टीकरण तो है ही, साथसाथ कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सिद्धान्त अतिसरल भाषा एवं अनेक कथाओंके द्वारा समझाये गये हैं। जिनको पढने सुननेसे साधारण बुद्धि का मनुष्यभी वेदों एवं उपनिषदों में वर्णित जटिलतम सिद्धान्त समझकर अपने आचरणों में ला सकता है।

उपनिषदों के पदार्थों को सुननेसे पढालिखामनुष्य भी जबयहमालूम करता है किब्रह्मतत्त्व-भगवान्-देश, काल, और वस्तुभेदों के परे बुद्धि एवं इन्द्रियों से अतीत अपने स्वतः सिद्धस्वरूपमें स्थित है, तब कुछ निराश एवं भययुक्त हो जाता है कि जो हमारे चित्तवृत्तियों के आकलन से सर्वथा अतीत है, उसकी उपासना और स्मरण कैसेकरें, उसे हम अपने हृदयमन्दिर में लाकर कैसे स्थिर करें। मनुष्य की इस विवशताको भगवान् व्यासजीने भली-भाँति अनुभव किया और भगवान् की दयाका साक्षात् अनुभव कर सब प्राणिमात्रका हित हो इसबुद्धि से परमेश्वरकी सर्वव्यापकता, एवं सर्वात्मताके यथार्थ स्वरूपको देश, काल और वस्तुओं के भीतर अपने हृदय में भी स्थापित करनेका अर्थात् अनुभव करने का अति सरल मार्ग पुराणों द्वारा प्रदर्शित किया जिसका आश्रय लेकर गरीब, अमीर समर्थ, असमर्थ, अन्ध, पङ्गु, सभी परमेश्वरकी दयाके पात्र हो सकते हैं। श्री व्यासजी की इस पुराणरूपी कृति को देखकर कृतज्ञता के भारसे मस्तक स्वयं ही उनके चरणों में झुक जाता है।

पुराणों में जो साधन प्रदर्शित किये हैं, उनमें अनेक तीर्थों, व्रतों, पूजा-अर्चनादिकों एवं अनेक पवित्र वस्तुओंका वर्णन किया है। दृढनिश्चय और श्रद्धा से उनमें से अपने योग्य कोई साधन चुनकर अखण्डरूपसे उसका परिशीलन करने से अत्यन्तपापीभी पुण्यात्मा, हिंसक अहिंसाशील, इन्द्रियों का दास, इन्द्रियों को वशी करनेवाला एवं चञ्चलचित्त स्थिर बुद्धिहोकर अन्तमें परमेश्वर की दया का पात्र हो जाता है।

पुराणों के अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं सदाचारको सर्वसाधारण जनता में प्रचार का श्रेय इन्हीं पुराणों को है। प्रत्युत इस समय वेदों और स्मृतियों की अपेक्षा वेदों के अविरोधि पौराणिक धर्मका ही अधिक प्रचार है, अतएव वेदों के यथार्थ अभ्यास में पुराणों का अति महत्त्व है। अतएव पुराणों का यह सिद्धान्त है कि :—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥ अस्तु ।

ऐसे सरल एवं सुलभ पुराणान्वित उपायों का श्रद्धा से श्रवण एवं आचरण करने से परमेश्वर की भक्ति तथा दया द्वारा अखण्ड, अनन्त आनन्द रूप परमगति—मुक्ति—की प्राप्ति होती है, पुराणों का श्रवण भी सदाचारशील, निर्लोभ एवं परमेश्वर के भक्त के द्वारा सुनने से शीघ्र फल होता है। पद्मपुराण में लिखा है :—

साधुसङ्गाद् भवेद्‌ विप्र ! शास्त्राणां श्रवणं सदा।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततो ज्ञानं ततो गतिः ॥ ब्रह्मख० ॥ १,६

ज्ञान, कर्म एवं कर्मगत उपासनासे भी अत्यन्त सरल तथा मनुष्यमात्र के लिये सहजआचरणीय ऐसे भक्तितत्त्वका विशद आविष्कार एवं विशद स्वरूप पुराणों में ही अनेक भक्तों की कथा द्वारा हुआ है। जिसको सुनकर अत्यन्त दरिद्र भी केवल श्रद्धासे परमेश्वर का स्मरणकर उसकी कृपाका पात्र हो जाता है इसमें सन्देह नहीं।

ऐसे पुराणों का प्रचार और उसमें प्रतिपादित तत्त्वों का आचार केवल सम्पूर्ण भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी हो जाय तो मनुष्यों में वास्तविक मनुष्यता जागृत होगी और आजका मानव केवल मानव और प्राणिमात्र में ही नहीं किन्तु वृक्षादिकों में भी सत्य तत्त्व का अपने में के समान अनुभव करने लगेगा और सम्प्रति आणविक अस्त्रों के प्रयोग से चेतन जड के संहार का जो विभीषिका खड़ा है वह सदा के लिये मिट जायगी।

इसप्रकारके सत्य एवं जगत्के कल्याणकारी विचारों से प्रेरित होकर विद्वान् एवं पुराणों के मर्मज्ञ भक्तप्रवर धनी एवं सुविचारक कलकत्ता निवासी श्री मनसुखराय मोर पुराणों व धर्मशास्त्रकी स्मृतियों का प्रकाशन एवं विद्वानों को विनामूल्य वितरण कर रहे हैं।

सम्प्रति कूर्म पुराण प्रकाशनके लिये प्रस्तुत है, कूर्मपुराण की चार संहिताओं में से ब्राह्मी संहिता ही इस समय उपलब्ध होती है, और भागवती, सौरी एवं वैष्णवी दुष्प्राप्य है। सभी पुराणों की श्लोक संख्या, स्वरूप एवं विषयों का संक्षिप्त वर्णन नारदपुराण में उपलब्ध होता है, उसके अनुसार कूर्म पुराण में ब्राह्मीसंहिता ६ हजार श्लोकों में तथा पूर्व एवं उत्तरभाग में विभाजित है। भागवती पांच पादोंमे और ४ हजार श्लोकों से युक्त है। सौरी २ हजार से युक्त तथा वैष्णवी चारपादों से और पांच हजार श्लोकों मे युक्त है। नारद् पुराणके वर्णनानुसार प्रकाशन के लिये प्रस्तुत कूर्म पुराण की ब्राह्मीसंहिता सर्वांशसे मिलती है। ब्राह्मीसंहिता के ऊपर भाग में ईश्वरगीता है उसपर विज्ञान भिक्षुका भाष्य है, डा० विलसन्को जो कूर्म्मपुराण मिला था उसकी श्लोकसंख्या ६ हजार देखकर एवं अन्यत्र पुराणों में दी हुई १७ या १८ हजार श्लोक संख्या देखकर उन्होंने इसको असली कूर्म्मपुराण रूप से ग्रहण नहीं किया, परन्तु नारदपुराण के वर्णनानुसार कूर्म्मपुराण की केवल ब्राह्मीसंहिता ६ हजार श्लोक वाली उनको मिली थी, और वह संहिता नारदपुराण के अनुसार निश्चित कूर्म्म पुराण की एवं अतिशुद्ध चर्ची हुई प्रति है। क्योंकि कूर्म्मपुराण में ही लिखा है:-

इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैश्च सम्मिता।
भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्रसङ्ख्यया॥ १,२४

ब्राह्मीसंहिता में कुछ तान्त्रिक विषय आ जाने से कुछ लोक उसको आधुनिक समझते हैं, परन्तु उनका यह मत एकदम गलत है। श्रीशङ्कराचार्यजी के समय ६४ तन्त्र विद्यमान थे। उन्होंने आनन्दलहरी में "चतुःषष्ट्यातन्त्रैः सकलमभिसन्धायभुवनम्" इसप्रकार ६४ तन्त्रों का उल्लेख किया है। एवं ईसा के द्वितीयशतक में पैदा हुए नागार्जुन ने अपने कक्षापुटी नामक ग्रन्थ में :-

शाम्भवे यामले शाक्ते मौले कौलेयडामरे।
स्वच्छन्दे लाकुले शैवे राजतन्त्रेऽमृतेश्वरे॥ ६॥
... ...॥ ६॥
इत्येतदागमोक्तञ्च वक्त्रात् वक्त्रेण यच्छ्रुतम्॥
तत्सर्वं तु समुद्धृत्य दध्नो घृतमिवादरात्॥ १०॥

इसप्रकार २९-३० तन्त्रों का उल्लेख किया है। इसपुराण में ईश्वर-

गीता और व्यासगीता के श्लोक श्रीशङ्कराचार्यजीने विष्णुसहस्रनाम भाष्य एवं सनत्सुजातीय भाष्य में प्रमाण रूप से लिये हैं। ईश्वर गीता के ऊपर विज्ञान भिक्षु का भाष्य प्रस्तुत कूर्मपुराण के अन्त में जोड़ दिया गया है। व्यासगीता में प्राय सम्पूर्ण वर्णाश्रमधर्म का निरूपण हुआहै। और अनेक अपूर्व विषय बृहद्विषय सूची को देखने से ज्ञात हो जायेंगे। अस्तु।

अनेक पुराणों, स्मृतियों और निबन्धादि ग्रन्थों का अन्वेषण, सम्पादन सुन्दर प्रकाशन और विद्वानो को बिना मूल्य वितरण आदि अनन्य साधारण कार्य श्रीमान् भक्तप्रवर मोर कुलभूषण श्रीमनसुखरायजी करते हुए राष्ट्र का एवं परमेश्वर का अनिमहत्त्व का सेवा कर रहे है। इनका यह कार्य और धार्मिकों के लिये नि सशय आदर्शभूत है।

भारतीय विशिष्ट विद्वानो से मेरी प्रार्थना है कि पुराणों का प्रकाशनरूप राष्ट्रीय कार्य निर्लोभ वृत्तिसे लाखों रुपयों का व्यय कर श्रीभक्तप्रवर पुराणज्ञ श्री मनसुखरायमोरजी कर रहे हैं। अत आदरणीय पण्डित लोग अपने प्रान्तो में अनुपलब्ध अमूल्य हस्तलिखित पुराणों एव पुराणों के भागों को खोजकर उन की सूचना श्रीमोरजी को देवें। जिससे वे उसकी प्रतिलिपिकराकर अपने योग्य विद्वान् सम्पादक द्वय श्रीपण्डितवर रामनाथजी मिश्र एव श्रीपण्डितवर ब्रह्मदत्त जीत्रिवेदीशास्त्री द्वारा सम्पादन एव प्रकाशन करा सकेंगे। अपनेअपने नगर आदि में स्थित लिखित पुराणो के सग्रह का ज्ञान विद्वान् पण्डितो को रहता ही है, अत थोड़ासा समय निकाल कर श्री मनसुखराय द्वारा प्रचारित इस राष्ट्रीय कार्य में वे हाथ बटा सकते हैं। प्राय सभाप्रान्तो में श्रीमोरजी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ विद्वानो के पास बिनामूल्य पहुचनेही है। अन्तमें मैं श्रीमनसुखराय मोरजी के इस निर्लोभ राष्ट्रीय कार्यका प्रशसा कर उनको अनेक धन्यवाद देता हूँ। और उनके पुत्रादि को मैं धर्म प्रेम एव राष्ट्रीय कार्य करने की बुद्धि उत्तरोत्तर बढ़े ऐसी ईश्वर से प्रार्थना करताहूँ।

प० श्रीअनन्त शास्त्री फडके
व्याकरणाचार्य, मीमांसातीर्थ, वेदान्तकेशरी
अध्यक्ष—पुराणेतिहासविभाग
वाराणसेयसस्कृतविश्वविद्यालय

वाराणसी
सितम्बर २५।१९६१
आश्विनकृष्णा १।२०१८

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ कूर्म्मपुराणान्तर्गतब्राह्मीसंहितायाः

विषयानुक्रमणिका

आरभ्यते

———:०:———

उत्तरार्द्धम्

ईश्वरगीतामाहात्म्यारम्भः

व्यासगीतारम्भः

समाप्तैषा कूर्मपुराणान्तर्गत ब्राह्मीसंहितायाविषयानुक्रमणिका
इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिजन
(लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासि) ब्रह्मदत्तत्रिवेदि—
नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़-जयपुर-
निवासि) रामनाथमिश्रदाधीचौ ।

शुभमस्तुसताम्

पुराऽमृतार्थंदैतेयदानवैः सह देवताः। मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन्कूर्म्मरूपी जनार्द्दनः। बभार मन्दरंदेवो देवानां हितकाम्यया
देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः। कूर्म्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम् ॥
तदन्तरेऽभवद्देवी श्रीर्नारायणवल्लभा। जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः ॥
तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः। मोहिताः स्नहशक्रेण श्रेयोवचनमब्रुवन् ॥
भगवन् देवदेवेश! नारायणजगन्मय। कैषा देवीविशालाक्षी यथावद् ब्रूहिपृच्छताम्

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्द्दनः।
प्रोवाच देवीं सम्प्रेक्ष्य नारदादानकल्मषान् ॥ ३३ ॥

इयं सा परमाशक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी। मायामम प्रियानन्ता ययेदं धार्य्यते जगत्
अनयैव जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्। मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिङ्गतिम्।
विद्यया वीक्ष्य चाऽऽत्मानं तरन्ति विपुलामिमाम् ॥ ३६ ॥
अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् सुराः।
ब्रह्मेशानादयः सर्व्वे सर्व्वशक्तिरियं मम ॥ ३७ ॥
सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।
प्रागेव मत्तः सञ्जाता श्रीः कल्पे पद्मवासिनी ॥ ३८ ॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ताशुभान्विता। कोटिसूर्य्यप्रतीकाशामोहिनीसर्व्वदेहिनाम्
नालं देवा न पितरो मानवा वासवोऽपि च। मायामेतांसमुत्तर्तुं येचान्येभुविदेहिनः
इत्युक्ता वासुदेवेनमुनयो विष्णुमब्रुवन्। ब्रूहित्वं पुण्डरीकाक्ष! यत्त्रिकालत्रयेऽपिच
अथोवाचहृषीकेशो मुनीन्मुनिगणार्चितः। अस्तिद्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इतिश्रुत

पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः।
दृष्ट्वा मां कूर्म्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम् ॥ ४३ ॥
संहितां मन्मुखाद्दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान्।
ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः ॥ ४४ ॥

मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः । प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम्

रोमहर्षण उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं कूर्म्मरूपधरं हरिम् ।

वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ ६ ॥

यां श्रुत्वा पापकर्मापि गच्छेत परमां गतिम् । न नास्तिके कथां पुण्यामिमां ब्रूयात् कदाचन
श्रद्दधानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये । इमां कथामनुब्रूयात्साक्षान्नारायणेरिताम्
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्
ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च । शैवं भागवतञ्चैव भविष्यं नारदीयकम् ॥१२
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च । लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च ॥

कौर्म्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम् ।

अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमितिसञ्ज्ञितम् ॥ १५ ॥

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु । अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा सङ्क्षेपतो द्विजाः
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम् । तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम् । दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम्
कापिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम् । ब्रह्माण्डं वारुणञ्चैव कालिकाह्वयमेव च ॥
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम् । पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम्
इदन्तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्म्ममुत्तमम् । चतुर्द्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्त्तिता ।

चतस्रः संहिताः पुण्या धर्म्मकामार्थमोक्षदाः ॥ २२ ॥

इयन्तु संहिता ब्राह्मी चतुर्व्वेदैस्तु सम्मिता ।

भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र सङ्ख्यया ॥ २३ ॥

यत्र धर्म्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः । माहात्म्यमखिलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वर
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशा मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं पुण्यं दिव्याः प्रासङ्गिकाः कथा
ब्राह्मणाद्यैरियं धार्या धार्मिकैर्वेदपारगैः । तामहं वर्णयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा

पुराऽमृतार्थंदैतेयदानवैः सह देवताः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन्कूर्म्मरूपी जनार्द्दनः । बभार मन्दरंदेवो देवानां हितकाम्यया
देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः । कूर्म्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम् ॥
तदन्तरेऽभवद्देवी श्रीर्नारायणवल्लभा । जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः ॥
तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः । मोहिताः सहशक्रेण श्रेयोवचनमब्रुवन् ॥
भगवन् देवदेवेश! नारायणजगन्मय । कैषा देवीविशालाक्षी यथावद् ब्रूहिपृच्छताम्

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्द्दनः ।
प्रोवाच देवीं सम्प्रेक्ष्य नारदादानकल्मषान् ॥ ३३ ॥

इयं सा परमाशक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी । मायामम प्रियानन्ता ययेदं धार्य्यते जगत्
अनयैव जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिङ्गतिम् ।
विद्यया वीक्ष्य चाऽऽत्मानं तरन्ति विपुलामिमाम् ॥ ३६ ॥
अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् सुराः ।
ब्रह्मेशानादयः सर्व्वे सर्व्वशक्तिरियं मम ॥ ३७ ॥
सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।
प्रागेव मत्तः सञ्जाता श्रीः कल्पे पद्मवासिनी ॥ ३८ ॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्तास्रगन्विता । कोटिसूर्य्यप्रतीकाशामोहिनीसर्व्वदेहिनाम्
नालं देवा न पितरो मानवा वासवोऽपि च । मायामेतांसमुत्तर्तुं येचान्येभुविदेहिनः
इत्युक्ता वासुदेवेनमुनयो विष्णुमब्रुवन् । ब्रूहित्वं पुण्डरीकाक्ष! यद्धिकालत्रयेऽपिच
अथोवाचहृषीकेशो मुनीन्मुनिगणार्चितः । अस्तिद्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इतिश्रुत

पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः ।
दृष्ट्वा मां कूर्म्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम् ॥ ४३ ॥
संहितां मन्मुखाद्दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान् ।
ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः ॥ ४४ ॥

मद्भक्तो संस्थितान् बुद्ध्या ममैव शरणं गत ।
मत्स्थापितो मया चाथ विप्रयोनिं गमिष्यसि ॥ ४९ ॥
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जातिस्मरस्त्वमर्चितः । सर्वेषामेव भूतानां देवानामप्यगोचरम्
वक्ष्ये यद्गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ । लब्ध्वा तन्मामकं ज्ञानं मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि
अंशान्तरेण भूम्यां त्वं तत्र तिष्ठ सुनिर्वृत । वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थं मां प्रवेक्ष्यसि
मां प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम् । कालधर्मं गतः कालाच्छ्वेतद्वीपे मया सह
भुक्त्वा तान्वैष्णवान् भोगान्योगिनामप्यगोचरान् ।
मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा जज्ञे विप्रकुले पुन ॥ ५० ॥
ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं यत्र द्वे निहितेऽक्षरे । विद्याविद्ये गूढरूपे यत्तद्ब्रह्म परं विदुः
सोऽर्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम् । व्रतोपवासनियमैर्होमैर्ब्राह्मणतर्पणैः ॥५२
तदाशीस्तन्मनास्तद्वत्तन्निष्ठस्तत्परायणः । आराधयन्महादेवं योगिनां हृदि संस्थितम्
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित्परमा कला । स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं विष्णुसमुद्भवम्
दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा विष्णोर्भगवत प्रियाम् । संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः कृताञ्जलिरभाषत

इन्द्रद्युम्न उवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि विष्णुचिह्नाङ्किते शुभे । याथातथ्येन वै भावं तवेदानीं ब्रवीहि मे
तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सुप्रसन्ना सुमङ्गला । हसन्ती संस्मरन्विष्णुं प्रियं ब्राह्मणमब्रवीत्

श्रीरुवाच

न मां पश्यन्ति मुनयो देवाः शक्रपुरोगमाः । नारायणात्मिका चैका मायाहं तन्मयी परा
न मे नारायणाद्भेदो विद्यते हि विचारत । तन्मय्यहं परं ब्रह्म स विष्णुः परमेश्वरः
येऽर्चयन्तीह भूतानामाश्रयं पुरुषोत्तमम् । ज्ञानेन कर्मयोगेन न तेषां प्रभवाम्यहम्
तस्मादनादिनिधनं कर्मयोगपरायण । ज्ञानेनाराधयानन्तं ततो मोक्षमवाप्स्यसि
इत्युक्त स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महामति । प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलि पुनरब्रवीत्
कथं स भगवानीश शाश्वतो निष्कलोऽच्युत । ज्ञातुं हि शक्यते देवि ब्रूहि मे परमेश्वरि
एवमुक्ताथ विप्रेण देवी कमलवासिनी । साक्षान्नारायणो ज्ञानं दास्यतीत्याह तं मुनिम्

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम् ।
स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६५ ॥

सोऽपि नारायणं द्रष्टुं परमेण समाधिना । आराधयद्धृषीकेशं प्रणतार्त्तिप्रभञ्जनम्
ततो बहुतिथे काले गतेनारायणःस्वयम् । प्रादुरासीन्महायोगीपीतवासाजगन्मयः
दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मनमव्ययम् । जानुभ्यामवनिं गत्वातुष्टावगरुडध्वजम्

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत!गोविन्द!माधवानन्त!केशव !। कृष्णविष्णोहृषीकेशतुभ्यंविश्वात्मनेनमः
नमोऽस्तु ते पुराणाय हरयेविश्वमूर्त्तये । सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये ॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलायनमोनमः । पुरुषाय नमस्तेऽस्तु विश्वरूपायतेनमः
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये । आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः
नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः । भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे
नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने । अनन्तमूर्त्तये तुभ्यममूर्त्ताय नमोनमः ॥
नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः । नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥
नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः । नमः शिवाय शुद्धाय नमस्तेपरमेष्ठिने
त्वयैवत्सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः । त्वं पिता सर्वभूतानांत्वं मातापुरुषोत्तम

त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योमनिष्कलम् ।
सर्व्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं नमसः परम् ॥ ७८ ॥

प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम् । प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम्॥
एवं स्तुवन्तं भगवान्भूतात्माभूतभावनः । उभाभ्यामथहस्ताभ्यां पस्पर्शप्रहसन्निव
स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुङ्गवः । यथावत्परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः
ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्द्दनम् । प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥
त्वत्प्रसादादसन्दिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम !। ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम्॥
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवायवेधसे । किं करिष्यामि योगेश! तन्मे वद जगन्मय!॥
श्रुत्वानारायणोवाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधवः । उवाचसस्मितंवाक्यमशेषंजगतोहितम्

श्रीभगवानुवाच

वर्णाश्रमाचारवता पुंसा देवो महेश्वरः। ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा
विज्ञाय तत्परं तत्त्वं विभूतिं कार्यकारणम्। प्रवृत्तिं चापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्चयेत्
सर्वसंगान्परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत्। अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम्
त्रिविधा भावना ब्रह्मन्प्रोच्यमाना निबोध मे। एका मद्विषया तत्र द्वितीयाव्यक्तसंश्रया
अन्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा। आसामन्यतमां चाथ भावनां भावयेद्बुधः
अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायणः
समाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि।

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं तत्परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनार्दन ॥ ९२ ॥
किं कार्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव।

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम् ॥ ९३ ॥
नित्यानन्दं स्वयंज्योतिरक्षरं तमसः परम्। ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते
कार्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम्। अहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः॥
सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते। एतद्विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज !॥
ततस्त्वं कर्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्चय।

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः ॥ ९९ ॥
ज्ञानञ्च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम्। कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः॥
कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च। कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च
तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरम्।
कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः ॥ १०० ॥
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष ! यथावदधुना पुनः।

श्रीकूर्म्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाऽहं भक्तानुग्रहकाम्यया ॥ १०१ ॥
यथावदखिलं सम्यगवोचं मुनिपुङ्गवाः ॥ व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु ॥
अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम् । सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमाः
आराधयामासपरं भावपूतः समाहितः । त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः
स न्यस्य सर्व्वकर्म्माणि परं वैराग्यमाश्रितः ।
आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत् ॥ १०५ ॥
सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्व्विकाम् । अवाप परमं योगं येनैकंपरिपश्यति
यं विनिद्रा जितश्वासाः कांक्षन्ते मोक्षकांक्षिणः ।
ततः कदाचिद्योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम् ॥ १०७ ॥
जगामादित्यनिर्द्देशान्मानसोत्तरपर्व्वतम् । आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्य्यप्रभावतः
विमानं सूर्य्यसङ्काशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम् । अन्वगच्छन्देवगणा गन्धर्वाप्सरसांगणाः
दृष्ट्वाऽन्ये पथि योगीन्द्रंसिद्धाब्रह्मर्षयोययुः । ततःस गत्वानुगिरिंविवेशसुरवन्दितम्
स्थानंतद्योगिभिर्जुष्टं यत्रास्तेपरमःपुमान् । सम्प्राप्यपरमंस्थानं सूर्य्यायुतसमप्रभम्
विवेश चान्तर्भवनं देवानाञ्च दुरासदम् । विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्व्वदेहिनाम्
अनादिनिधनं चैव देवदेवं पितामहम् । ततः प्रादुरभूत्तस्मिन् प्रकाशःपरमाद्भुतः ॥
तन्मध्ये पुरुषं पूर्व्वमपश्यत्परमं पदम् । महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्
चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिर्भिरुपशोभितम् । सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्यप्रणमन्तमुपस्थितम्
प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषस्वजे । परिष्वक्तस्यदेवेनद्विजेन्द्रस्याथ देहतः
निर्गत्य महतीज्योत्स्नाविवेशादित्यमण्डलम् । ऋग्यजुःसामसंज्ञं तत्पवित्रममलंपदम्
हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक् ।
द्वारं तद्योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ॥ ११८ ॥
ब्रह्मतेजोमयं श्रीमन्निष्ठा चैव मनीषिणाम् । दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्म्मयोमुनिः
अपश्यदैश्वरंतेजः शान्तंसर्वत्रगंशिवम् । स्वात्मानमक्षरंव्योम यत्रविष्णोःपरं पदम्

आनन्दमक्षरं ब्रह्मण्यात तत्परमेश्वरम् । सर्वभूतात्मभूतस्थः परमैश्वर्य्यमास्थितः ॥

ज्ञानवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः ॥ १२२ ॥
समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मीं तरेद् बुधः ।

सूत उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः ॥ १२३ ॥
शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम् ।

ऋषय ऊचुः

देवदेव हृषीकेश ! नाथ ! नारायणाव्यय ! ॥ १२४ ॥

तद्वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा । इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्म्मादिगोचरम् ॥ शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय ! । ततः स भगवान् विष्णुः कूर्म्मरूपी जनार्दनः रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः । पृष्टः प्रोवाच सकलं * पुराणं कौर्म्यमुत्तमम् सन्निधौ देवराजस्य तद्वक्ष्येभवतामहम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम् पुराणश्रवणं विप्राः कथनञ्च विशेषतः । श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते । इदं पुराणं परमं कौर्म्मं कूर्म्मस्वरूपिणा ॥

उक्तं वै देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥ १३१ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

* सकलमित्यत्र "भगवान्" इति पाठान्तरम् ।

द्वितीयोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

शृणुध्वमृषयःसर्व्वेयत्पृष्टोऽहंजगद्धितम् । वक्ष्यमाणंमयासर्व्वंमिन्द्रद्युम्नायभाषितम्
भूतैर्भव्यैर्भवद्भिश्च चरितैरुपबृंहितम् । पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्म्मानुकीर्त्तनम्
अहं नारायणोदेवःपूर्व्वमासंनमेपरम् । उपास्यविपुलांनिद्रांभोगिशय्यांसमाश्रितः
चिन्तयामि पुनः सृष्टिं निशान्तेप्रतिबुध्यतु । ततोमेसहसोत्पन्नःप्रसादोमुनिपुङ्गवाः

चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः ।

तदन्तरेऽभवत्क्रोधः कस्माच्चित्कारणात्तदा ॥ ५ ॥

आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वरः । रुद्रःक्रोधात्मकोजज्ञेशूलपाणिस्त्रिलोचनः
तेजसा सूर्य्यसङ्काशस्त्रैलोक्यं संदहन्निव । तदा श्रीरभवद्देवी कमलायतलोचना ॥ ७
सुरूपासौम्यवदनामोहिनीसर्व्वदेहिनाम् । शुचिस्मितासुप्रसन्नामङ्गलामहिमास्पदा

दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता ।

नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया ॥ ६ ॥

स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पार्श्वं समुपाविशत् ।

तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिम् ॥ १० ॥

मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम् येनेयं विपुला सृष्टिर्वर्द्धते मम माधव!॥
तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रवं प्रहसन्निव । देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्

मोहयित्वा ममादेशात्संसारे विनिपातय ।

ज्ञानयोगरतान्दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः ॥ १३ ॥

अक्रोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय ।

ध्यायिनो निर्म्ममान् शान्तान्धार्मिकान्वेदपारगान् ॥ १४ ॥

आनन्दमचलं ब्रह्मस्थानं तत्परमेश्वरम् । सर्वभूतात्मभूतस्थाः परमैश्वर्यमाश्रिताः ॥
प्राप्नुवन्त्यात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः ॥ १२२ ॥
समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मीं तरेद् बुधः ।

सूत उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः ॥ १२३ ॥
शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम् ।

ऋषय ऊचुः

देवदेव हृषीकेश ! नाथ ! नारायणाव्यय ! ॥ १२४ ॥
तद्वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा । इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम् ।
शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय !। ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः । पृष्टः प्रोवाच सकलं * पुराणं कौर्ममुत्तमम्
सन्निधौ देवराजस्य तद्वक्ष्ये भवतामहम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम्
पुराणश्रवणं विप्राः कथनञ्च विशेषतः । श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते । इदं पुराणं परमं कौर्मं कूर्मस्वरूपिणा ।
उक्तं वै देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥ १३१ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

* सकलमित्यत्र 'भगवान्' इति पाठान्तरम् ।

ततः कालवशात्तासां रागद्वेषादिकोऽभवत् ॥ ३३ ॥
अधर्म्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्म्मप्रतिबन्धकः ।
ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते ॥ ३४ ॥
रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन् ।
तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः ॥ ३५ ॥
वार्त्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिञ्च कर्म्मजाम् ।
ततस्तासां विभुः ब्रह्मा कर्म्माजीवमकल्पयत् ॥ ३६ ॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं धर्म्मान्प्रोवाच सर्व्वदृक् ।
साक्षात्प्रजापतेर्मूर्त्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणो द्विजाः ॥ ३७ ॥

भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्म्मानथोचिरे । यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः
अध्यापनंचाध्ययनंषट्कर्म्माणिद्विजोत्तमाः । दानमध्ययनंयज्ञोधर्म्मःक्षत्रियवैश्ययोः
दण्डो युद्धंक्षत्रियस्यकृषिर्वैश्यस्यशस्यते । शुश्रूषैवद्विजातीनांशूद्राणांधर्म्मसाधनम्
कारुकर्म्मतथाजीवःपाकयज्ञादिधर्म्मतः । ततःस्थितेषुवर्णेषुस्थापयामासचाश्रमान्
गृहस्थञ्च वनस्थंचभिक्षुकंब्रह्मचारिणम् । अग्नयोऽतिथिशुश्रूषायज्ञोदानंसुरार्च्चनम्
गृहस्थस्यसमासेनधर्म्मोऽयंमुनिपुङ्गवाः । होमोमूलफलाशित्वंस्वाध्यायस्तपएवच

संविभागो यथान्यायं धर्म्मोऽयं वनवासिनाम् ।
भैक्षाशनञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः ॥ ४४ ॥
सम्यग्ज्ञानञ्च वैराग्यं धर्म्मोऽयं भिक्षुके मतः ।
भिक्षाचर्य्या च शुश्रूषा गुरोः स्वध्याय एव च ॥ ४५ ॥
सन्ध्याकर्म्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम् ।
ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः ॥ ४६ ॥

साधारणं ब्रह्मचर्य्यं प्रोवाच कमलोद्भवः । ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषुनचान्यतः
पर्व्ववर्ज्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्य्यमुदाहृतम् । आगर्भधारणादाज्ञा कार्य्या तेनाप्रमादतः
अकुर्वाणस्तुविप्रेन्द्राभ्रूणहातूपजायते । वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्याश्राद्धञ्चातिथिपूजनम्

यतिनस्तापसान्विप्रान्दूरतः परित्यज्य । वेदवेदान्तविज्ञानसञ्छिन्नाशेषसंशयान्
महायज्ञपरान्विप्रान्दूरतः परित्यज्य । ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम् ॥ १६ ॥

स्वाध्यायेनेज्यया दूरात् प्रयत्नेन परंतप ।
भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान् ॥ १७ ॥

प्राणायामादिषु रतान्दूरात्परिहरन्मम । प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान् ॥
अथर्वशिरसो वेत्तॄन् धर्मज्ञान् परिवर्जय । बहुनात्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान्
ईश्वराराधनरतान्मन्नियोगान्न मोहय । एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा ॥ २० ॥
यथादेशं चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् । श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम्

अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् ।
ततोऽसृजत्स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २२ ॥

चराचराणि भूतानि यथापूर्वं ममाज्ञया । मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद्योगविद्यया । नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्माणो ब्राह्मणोत्तमाः

ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः ।
ससर्ज ब्राह्मणान्वक्त्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद्विभुः ॥ २५ ॥

वैश्यानूरुद्वयाद्देवः पद्भ्यां शूद्रान् पितामहः । यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज ह ॥ २६ ॥
गुप्तये सर्ववेदानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बभौ । ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया । अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा

आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
अतोऽन्यानि हि शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित् ॥ २९ ॥

न तेषु रमते धीरः पाषण्डी तेन जायते । वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा ।
स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः । या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।
पूर्वकल्पे प्रजा जाता सर्वबाधाविवर्जिताः ॥ ३२ ॥

शुद्धान्तःकरणाः सर्वाः स्वधर्मपरिपालिकाः ।

गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्त्तताम् । अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्

स्मृतं तेषान्तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।
सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ॥ ७१ ॥
प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा ।
यतीनां जितचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ७२ ॥

हैरण्यगर्भं तत्स्थानं यस्मान्नावर्त्तते पुनः । योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमक्षरम्

आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परा गतिः ।

ऋषय ऊचुः

भगवन्देवतारिघ्न! हिरण्याक्षनिषूदन! ॥ ७४ ॥
चत्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते ।

कूर्म उवाच

सर्वकर्माणि सन्न्यस्य समाधिमचलं श्रितः ॥ ७५ ॥
य आस्ते निश्चलो योगी स सन्यासी च पञ्चमः ।
सर्वेषामाश्रमाणान्तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः । योऽधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत्

उपकुर्व्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ।
उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ॥ ७८ ॥
कुटुम्बभरणायत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ।
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् ॥ ७९ ॥

एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः । तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान्जुहोति च

स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसो मतः । तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्

सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ।
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः ॥ ८२ ॥

ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः । यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः

सम्यग्दर्शनसम्पन्न सयोगीभिक्षुरुच्यते । ज्ञानसन्न्यासिन केचिद्वेदसन्न्यासिनोऽपरे

कर्मसन्न्यासिन केचित्त्रिविधा पारमेष्ठिका ।

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिक सांख्य एव च ॥ ८५ ॥

तृतीयोह्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममाश्रित । प्रथमा भावनापूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना

तृतीयेचान्तिमा प्रोक्ताभावना पारमेश्वरी । तस्मादेतद्विजानीध्यमाश्रमाणा चतुष्टयम्

सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमोनोपपद्यते । एव वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जन ॥ ८८

दक्षाद्या प्राह विश्वात्मा सृजध्वं विविधा प्रजा । ब्रह्मणोवचनात्पुत्रा दक्षाद्यामुनिसत्तमा

असृजन्त प्रजा सर्व देवमानुषपूर्वका । इत्येष भगवान् ब्रह्मास्रष्टृत्वे स व्यवस्थित

अहं वै पालयामीदं संहरिष्यति शूलभृत् । तिस्रस्तु मूर्तय प्रोक्ताब्रह्मविष्णुमहेश्वरा

रज सत्त्वतमोयोगात्परस्य परमात्मन ।

अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविन ॥ ९२ ॥

अन्योन्यप्रणताश्चैव लीलया परमेश्वरा । ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना ॥

तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सतत द्विजा । प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या त्वक्षरभावना

द्वितीया ब्रह्मण प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना । अहं चैव महादेवो न भिन्न परमार्थत

विभज्य स्वेच्छयात्मान सोऽन्तर्यामीश्वर स्थित ।

त्रैलोक्यमखिल स्रष्टु सदेवासुरमानुषम् ॥ ९६ ॥

पुरुष परतोऽव्यक्तो ब्रह्मत्व समुपागमत् । तस्माद्ब्रह्मामहादेवोविष्णुर्विश्वेश्वर पर

एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनु कार्यवशात्प्रभो ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वन्द्या पूज्या विशेषत ॥ ९८ ॥

यदीच्छेदचिरात्स्थान यत्तन्मोक्षाख्यम व्ययम् । वर्णाश्रमप्रयुक्तेनधर्मेणप्रीतिसयुत ।

पूजयेद्भावयुक्तेन यावज्जीव प्रतिज्ञया । चतुर्णामाश्रमाणान्तुप्रोक्तोऽयविधिवद्द्विजा

आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इतित्रय । तल्लिङ्गधारीनियत तद्भक्तजनवत्सल ॥

ध्यायेदथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायण । सर्वेषामेव भक्ताना शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम् ॥

सितेनभस्मना कार्य ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् । यस्तुनारायण देव प्रपन्न परम पदम्

धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः । प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्

तेषां ललाटे तिलकं धारणीयन्तु सर्वदा ।

योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्माऽसौ धृतो भवेत् ॥ १०५ ॥

उपर्यधोभावयोगात्त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात् ।

यत्तत्प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ १०६ ॥

धृतन्तु शूलधरणाद्भवत्येव न संशयः । ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मण्डलं रवेः ॥१०७

भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते । तस्मात्कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथा च तिलकं शुभम्

आयुष्यञ्चापि भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम् । यजेतजुहुयादग्नौजपेद्दद्याज्जितेन्द्रियः

शान्तो दान्तो जितक्रोधो वर्णाश्रमविधानवित् ।

एवं परिचरेद्देवान् यावज्जीवं समाहितः ॥ ११० ॥

तेषां स्वस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति ॥ १११ ॥

इतिश्री कूर्ममहापुराणे वर्णाश्रमधर्मवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

वर्णाश्रमक्रमवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वर्णाभगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा । इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणांवदप्रभो!

कूर्म उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा । क्रमेणैवाश्रमाःप्रोक्ताःकारणादन्यथाभवेत

उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमंगतः । प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्यात्तु यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥

दारानाहृत्य विधिवदन्यथाविविधैर्मखैः । यजेदुत्पादयेत्पुत्रान् विरक्तोयदिसंन्यसेत्

अनिष्ट्वा विधिवद्यज्ञैरनुत्पाद्य तथाऽऽत्मजान् ।

गार्हस्थ्य गृही त्यक्त्वा संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विज ॥ ५ ॥
अथवैराग्यवेगेन स्थातु नोत्सहते गृहे । तत्रैव सन्न्यसद्विद्वाननिष्ट्वापि द्विजोत्तम ॥६
तथापि विविधैयज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयन् । तपस्तप्त्वातपोयोगाद्विरक्त स-यसेद्यदि
वानप्रस्थाश्रम गत्वा न गृह प्रविशेत्पुन । न सन्यासी वनञ्चाथ ब्रह्मचर्यञ्च साधक
प्राजापत्याग्निरूप्यैष्टिमाग्नेयीमथवाद्विज । प्रव्रजेत्तुगृहाद्विद्वान्वनाद्वाश्रुतिचोदनात्
यक्तु मसमर्थोऽपि जुहोति यजतिक्रिया । अन्ध पङ्गुदरिद्रोवाविरक्त सन्यसद्विज
सर्वेषामेव वैराग्य सन्यासे विधीयते । पतत्येवाविरक्तो य सन्यास कर्तुमिच्छति
एकस्मिन्नथवा सम्यग्वर्त्तेतामरणान्तिकम् । श्रद्धावानाश्रमयुक्त सोऽमृतत्वायकल्पते
न्यायागतधन शान्तो ब्रह्मविद्यापरायण । स्ववमपालकोनित्य ब्रह्मभूयाय कल्पते
ब्रह्मण्याधायकर्म्माणि नि सङ्ग कामवर्जित । प्रसन्नेनैव मनसाकुर्वाणोयातितत्पदम्
ब्रह्मणा दीयते देय ब्रह्मणे सम्प्रदीयते । ब्रह्मैवदीयतेचेतिब्रह्मार्पणमिद परम् ॥ १५
नाहकर्त्ता सर्वमतद्ब्रह्मैव कुरुते तथा । एतद्ब्रह्मार्पण प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभि ॥
प्रीणातुभगवानीश कर्म्मणानेन शाश्वत । करोतिसतत बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमि परम्
यद्वाफलाना सन्यास प्रकुर्यात्परमेश्वरे । कर्म्मणामतदप्याहुर्ब्रह्मार्पणमनुत्तमम् ॥१८॥
कार्यमित्येव य कर्म्म नियत सङ्गवर्जितम् । क्रियत विदुषाकर्म्मतद्भवेदपिमोक्षदम्
अथवा यदिकर्म्माणिकुर्यान्नित्यान्यपिद्विज । अकृत्वाफलसन्यासबध्यतेतत्फलेनतु
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्म्माश्रित फलम् ।
अविद्वानपि कुर्वीत कर्म्माऽऽप्नोति चिरात्पदम् ॥ २१ ॥
कर्म्मणा क्षीयते पापमैहिक पौर्व्विक तथा । मन प्रसादमन्वेति ब्रह्मविज्ञायते नर
कर्म्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग्योगोऽभिजायते ।
ज्ञानं च कर्म्मसहित जायते दोषवर्जितम् ॥ २३ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यत्रतत्राश्रमे रत । कर्म्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात्
सम्प्राप्य परमं ज्ञान नैष्कर्म्यत प्रसादत । एकाकीनिर्म्मम शान्तोजीवन्नेवविमुच्यते
वीक्षते परमात्मान परब्रह्म महेश्वरम् । नित्यानन्दी निराभास तस्मिन्नेवलयव्रजेत्

तस्मात्सेवेत सततं कर्म्मयोगं प्रसन्नधीः । तृप्तयेपरमेशस्य तत्पदं याति शाश्वतम् ॥
एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । न ह्येतत्समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दतिमानवः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे चातुराश्रम्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

प्राकृतसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

श्रुत्वाऽऽश्रमविधिं कृत्स्नमृषयो हृष्टचेतसः । नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्रुवन्

मुनय ऊचुः

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । इदानींश्रोतुमिच्छामो यथासम्भवतेजगत्
कुतः सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेष्यति । नियन्ता कश्चसर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्म्मरूपधृक् ।
प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवोऽव्ययः ॥ ४ ॥

कूर्म्म उवाच

महेश्वरःपरोऽव्यक्तः चतुर्व्यूहः सनातनः । अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता सर्व्वतोमुखः ॥
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानंप्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
जगद्योनिर्महाभूतं परब्रह्म सनातनम् । विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठितं महत् ॥ ८
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् । असाम्प्रतमविज्ञेयंब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥ ९
गुणसाम्ये तदातस्मिन् पुरुषेचात्मनिस्थिते । प्राकृतःप्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भवः
ब्राह्मी रात्रिरियंप्रोक्ता ह्यहःसृष्टिरुदाहृता । अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः ॥

निशान्तेऽप्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान् । सर्वभूतमयोऽव्यक्तादन्तर्यामीश्वरः परः
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वरः । क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥ १३ ॥

यथा मदो नरस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः ।
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथाऽसौ योगमूर्त्तिमान् ॥ १४ ॥

स एव क्षोभको विप्राः क्षोभ्यश्च परमेश्वरः । ससङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः
प्रधानात् क्षोभ्यमानाच्च तथा पुंसः पुरातनात् । प्रादुरासीन्महद्बीजं प्रधानपुरुषात्मकम्

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ।
प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः संविदेतस्मादिति तत्स्मृतम् ॥ १५ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः । त्रिविधोऽयमहङ्कारो महतः सम्बभूव ह ।

अहङ्कारोऽभिमानश्च कर्त्ता मन्ता च स स्मृतः ।
आत्मा च मत्परो जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ १६ ॥

पञ्चभूतान्यहङ्कारात्तन्मात्राणि च जज्ञिरे । इन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं तस्यात्मजं जगत्
मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तं विकारः प्रथमः स्मृतः । येनासौ जायते कर्त्ता भूतादींश्चानुपश्यति
वैकारिकादहङ्कारात्सर्गो वैकारिकोऽभवत् । तैजसानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम् । भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवद् द्विजाः
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह । आकाशो जायते तस्मात्तस्य शब्दो गुणो मतः

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
वायुरुत्पद्यते तस्मात्तस्य स्पर्शं गुणं विदुः ॥ २० ॥

वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह । ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च ॥ २१ ॥

आपश्चापि विकुर्वाणा गन्धमात्रं ससर्जिरे । सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः

आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥ २२ ॥

रूपंतथैवाविशतः शब्दस्पर्शौगुणावुभौ । त्रिगुणःस्यात्ततो वह्निःसशब्दस्पर्शरूपवान्

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसमात्रं समाविशत् ।

तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥ ३१ ॥

शब्दःस्पर्शश्चरूपञ्चरसोगन्धंसमाविशत् । तस्मात्पञ्चगुणाभूमिः स्थूलाभूतेषुशब्यते

शान्ता घोराश्चमूढाश्च विशेषास्तेनते स्मृताः । परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम्

एतेसप्तमहात्मानोह्यन्योन्यस्यसमाश्रयात् । नाशक्नुवन्प्रजाःस्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नशः

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च । महदादयोविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्तिते

एककालसमुत्पन्नंजलबुद्बुदवच्च तत् । विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत्तदुदकेशयम् ॥ ३६

तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धं परमेष्ठिनः ।

प्राकृतेऽण्डे विवृद्धे तु क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसञ्ज्ञितः ॥ ३७ ॥

। वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥

माहुः पुरुषं हंसं प्रधानात्परतःस्थितम् । हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्त्तिं सनातनम्

मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्चापि पर्वताः ।

गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्परमात्मनः ॥ ४० ॥

ास्मिन्नण्डेऽभवद्विश्वं सदेवासुरमानुषम् । चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौसहवायुना

अद्भिर्दशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम् । अपोदशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः

तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् । आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम्

भूतादिर्महतातद्वदव्यक्तेनावृतो महान् । एते लोका महात्मानः सर्वे तत्त्वाभिमानिनः

वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मानो व्यवस्थिताः ।

ईश्वरा योगधर्म्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः ॥ ४५ ॥

सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः । एतैरावरणैरण्डं प्राकृतैः सप्तभिर्वृतम् ॥

एतावच्छक्यतेवक्तुंमायैषा गहनाद्विजाः । एतत्प्राधानिकंकार्यं यन्मया बीजमीरितम्

प्रजापतेःपरा मूर्त्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः । ब्रह्माण्डमेतत्सकलं सप्तलोकबलान्वितम्

द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः । हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मावै कनकाण्डजः

तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः । रजोगुणमयं चान्यद्रूपं तस्यैव धीमतः ॥ ५० ॥
चतुर्मुखस्तु भगवाञ्जगत्सृष्टौ प्रवर्त्तते । सृष्टञ्च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः

सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम् ।
अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः ॥ ५२ ॥

तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत् । एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः । एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा गुणैः
योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च । नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया
हिताय चैव भक्तानां स एव ग्रसते पुनः । त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्तते
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषतः । यस्मात्सृष्ट्वानुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः
गुणात्मकत्वात्त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते । अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतः सनातनः

आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥ ६१ ॥

देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः । बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात्परमेश्वरः
वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः । ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वहरो यतः
अनुत्पादाच्च पूर्वत्वात्स्वयम्भूरिति स स्मृतः । नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः
हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते । भगवान्सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः
सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः । शिवः स्यान्निर्मलो यस्माद्विभुः सर्वगतो यतः
तारणात्सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते । बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥
अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः । इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात्कथितो मया ॥

अबुद्धिपूर्वको विप्रा ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत ॥ ६६ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे प्राकृतसर्गवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

कालसंख्याविवरणम्

कूर्म्म उवाच

(अनुत्पादाच्च पूर्वस्मात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥ १ ॥

नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः । हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते ॥

भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः ॥ २ ॥

सर्व्वज्ञः सर्व्वविज्ञानात्सर्व्वः सर्व्वमयो यतः ।)

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥

न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम् । कालसंख्या समासेन परार्द्धद्वयकल्पिता

स एव स्यात्परः कालस्तदन्ते सृज्यतेपुनः । निजेन तस्यमानेन ह्यायुर्वर्षशतं स्मृतम्

तत्पराढ्र्ढं तदर्द्धं वा परार्द्धमभिधीयते । काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः

काष्ठा त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्त्तिकी गतिः ।

तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम् ॥ ७ ॥

अहोरात्राणि तावन्ति मासःपक्षद्वयात्मकः । तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयनेदक्षिणोत्तरे

अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसञ्ज्ञितम् ॥

चतुर्युगंद्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत । चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणांतत्कृतंयुगम्

तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु ।

त्रिशतीद्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात् ॥ ११ ॥

अंशकं षट्शतं तस्मात्कृतसन्ध्यांशकैर्विना ।

त्रिद्व्येकधा च साहस्रं विना सन्ध्यांशकेन तु ॥ १२ ॥

त्रेताद्वापरतिष्याणां कालज्ञानेप्रकीर्त्तितम् । एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकंपरिकल्पितम्

तदेकसप्ततिगुणं मनोरन्तरमुच्यते । ब्रह्मणोदिवसे विप्रा मनवश्च चतुर्द्दश ॥ १४ ॥

षष्ठोऽध्यायः

पृथिव्युद्धारवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्। शान्तवातादिकं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे। तदा समभवद्ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥ ३॥

चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति। ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाव्ययम्
पो नाराइति प्रोक्ता आपोवैनरसूनवः। अयनंतस्य ता यस्मात्तेन नारायणःस्मृतः
ल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः। शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात्॥
तस्तुसलिलेतस्मिन्विज्ञायान्तर्गतांमहीम्। अनुमानात्तदुद्धारं कर्त्तुं कामःप्रजापति
लक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः। अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयंब्रह्मसंज्ञितम्
थिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम्। दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः

दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथ्वीं प्रथितपौरुषम्।
अस्तुवञ्जनलोकस्था सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम्॥ १०॥

ऋषय ऊचुः

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने। पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च॥ ११॥
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने। नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने॥
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवेविश्वयोनये। नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे॥
नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र! शार्ङ्गचक्रासिधारिणे। सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थायनमोनमः

नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे॥ १५॥

तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरंप्रभुः। तस्याभिध्यायतःसर्गं तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्त्तत

यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतः ततः स्मृतः।
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥ ६ ॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वासर्गमन्यंससर्ज्ज ह। ऊर्द्धस्रोत इतिप्रोक्तो देवसर्गस्तुसात्त्विकः
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः। प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंज्ञिताः

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा।
प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ ६ ॥
तत्र प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः।
दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥

ं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद्भगवानजः। तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्
ेपरिग्रहिणः सर्वे संविभागरताःपुनः। खादिनश्चाप्यशालाश्च भूताद्याःपरिकीर्त्तिताः
इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुङ्गवाः। प्रथमोमहतःसर्गाविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूत सर्गो हि संस्मृतः।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥ १४ ॥
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्व्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ १५ ॥
तिर्य्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः।
तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ १६ ॥
ततोऽर्वाक् स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥

नवमश्चैवकौमारःप्राकृतावैकृतास्त्विमे। प्राकृतास्तुत्रयःपूर्व्वंसर्गास्तेबुद्धिपूर्व्वकाः
बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्तेमुख्याद्यामुनिपुङ्गवाः। अग्रेससर्ज्जवैब्रह्मामानसानात्मनःसमान्
सनकं सनातनं चैवतथैवचसनन्दनम्। क्रतुं (ऋभुं) सनत्कुमारंचपूर्व्वमेवप्रजापतिः
पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः। ईश्वरासक्तमनसोनसृष्टौदधिरे मतिम्

नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतां नमः । अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च ।
नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः ॥ १९
नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे । नमो योगाधिगम्याय नमः सङ्कर्षणाय ते
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं त्रिधाम्ने दिव्यतेजसे । नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभागिने
नमोऽस्त्वादित्यरूपाय नमस्ते पद्मयोनये । नमोऽमूर्त्ताय मूर्त्ताय माधवाय नमोनम-
स्त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम् । पालयैतज्जगत्सर्वं त्राता त्वं शरणं गतिः
इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकाद्यैरभिष्टुतः । प्रसादमकरोत्तेषां वराहवपुरीश्वरः ॥

ततः संस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ।
मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा धराधरः ॥ २१ ॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता । विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम्

पृथिवीं स समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ।
प्राक् सर्गदग्धानखिलान् ततः सर्गेऽदधन्मनः ॥ २५ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे पृथिव्युद्धारवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

कूर्म्म उवाच

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा । अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः । अविद्यापञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः

पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
संवृतस्तमसा चैव बीजकुम्भवदावृतः ॥ २ ॥

तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यद्परंप्रभुः । तस्याभिध्यायतःसर्गं तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्त्तत

यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतः ततः स्मृतः ।
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥ ६ ॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वासर्गमन्यंससर्ज्ज ह । ऊर्द्धस्रोत इतिप्रोक्तो देवसर्गस्तुसात्त्विकः

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः । प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंज्ञिताः

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ ६ ॥
तत्र प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ।
दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद्भगवानजः । तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्

नेपरिग्रहिणः सर्वे संविभागरताःपुनः । खादिनश्चाप्यशालाश्च भूताद्याःपरिकीर्त्तिताः

इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुङ्गवाः । प्रथमोमहतःसर्गाविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूत सर्गो हि संस्मृतः ।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥ १४ ॥
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्व्वकः ।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ १५ ॥
तिर्य्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः ।
तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ १६ ॥
ततोऽर्वाक् स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।
अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥

नवमश्चैवकौमारःप्राकृतावैकृतास्त्विमे । प्राकृतास्तुत्रयःपूर्व्वेसर्गास्तेबुद्धिपूर्व्वकाः

बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्तेमुख्याद्यामुनिपुङ्गवाः । अग्रेससर्ज्जवैब्रह्मामानसानात्मनःसमान्

सनकं सनातनं चैवतथैवचसनन्दनम् । क्रतुं (ऋभुं) सनत्कुमारंचपूर्व्वमेवप्रजापतिः

पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः । ईश्वरासक्तमनसोनसृष्टौदधिरे मतिम्

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः । मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः
सम्बोधयामास च तं जगन्मायो महामुनिः । नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः
बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः । स तप्यमानो भगवान्नकिञ्चित्प्रत्यपद्यत

ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत ।

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥ २५ ॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्परमेष्ठिनः । समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः
भगवानीशानस्तेजोराशिः सनातनः । यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम्
ॐकारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः । तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः
निशम्य भगवद्वाक्यं शङ्करो धर्मवाहनः । आत्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः

कपर्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान्नीललोहितान् ॥ २६ ॥

तमाह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः । सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ सृज त्वमशुभाः प्रजाः । निवार्य स तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्भव

स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान्निबोधत ।

आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा ॥ ३२

नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुध एव च । लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ता दिवसाः क्षपा
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः । स्थानाभिमानिनः सृष्ट्वा साधकानसृजत्पुन
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्मं सङ्कल्पमेव च
प्राणाद्ब्रह्माऽसृजद्दक्षं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् । शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद्भृगुमेव
नेत्राभ्यामत्रिनामानं धर्मं च व्यवसायतः । सङ्कल्पं चैव सङ्कल्पात्सर्वलोकपितामह
पुलस्त्यं च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं मुनिम् । अपानात्क्रतुमव्यग्रं समानाच्च वसिष्ठक
इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः । आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्तैः सम्प्रवर्त्तित
ततो देवासुरपितॄन्मनुष्यांश्च चतुष्टयम् । सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयोजय
युक्तात्मनस्तमोमात्रा ह्युद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः । ततोऽस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुत
उत्ससर्जासुरान् सृष्ट्वा तां तनुं पुरुषोत्तम । साचोत्सृष्टा तनुस्तेन मयोरात्रिरजायत

सा तमोबहुला यस्मात्प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः ।

सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यां गृहीतवान् ॥ ४२ ॥

ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यतः सम्प्रजज्ञिरे । त्यक्ता साऽपि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद्दिनम् ।

तस्मादहो धर्मयुक्ता देवताः समुपासते । सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ।

पितृवन्मन्यमानस्य पितरः सम्प्रजज्ञिरे । उत्ससर्ज पितॄन्सृष्ट्वा ततस्तामपि विश्वसृक् ।

साऽपविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या व्यजायत ।

तस्मादहर्देवतानां रात्रिः स्याद्देवविद्विषाम् ॥ ४७ ॥

तयोर्मध्ये पितॄणां तु मूर्त्तिः सन्ध्या गरीयसी । तस्माद्देवासुराः सर्वे मुनयो मानवास्तदा

उपासते सदा युक्ता राज्यह्नोर्मध्यमां तनुम् ।

रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यां ततोऽसृजत् ॥ ४९ ॥

ततोऽस्य जज्ञिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृताः । तामथाशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः

ज्योत्स्ना सा चाऽभवद्विप्राः प्राक्सन्ध्या याऽभिधीयते ।

ततः स भगवान्ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुङ्गवाः ॥ ५२ ॥

मूर्त्तिं तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्ययूयुजत् । अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे

पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः । सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वाः सम्प्रजज्ञिरे

रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत्प्रभुः ।

वयांसि वयसः सृष्ट्वा अवींश्च वक्षसोऽसृजत् ॥ ५४ ॥

मुखतोऽजान् ससर्जान्यान् उदराद्गाश्च निर्ममे ।

पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गान्रासभान् गवयान्मृगान् ॥ ५५ ॥

उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्याश्च जातयः । ओषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे

गायत्रं च ऋचश्चैव त्रिवृत्स्तोमं रथन्तरम् । अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्

यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा । बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात्

सामानि जागतं छन्दः स्तोमं सप्तदशं तथा । वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च । आनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥ ६० ॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे। ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तु प्रजापतेः

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसः शुभाः ।

सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम् ॥ ६२ ॥

ततोऽसृजच्च भूतानि स्थावराणि चराणि च । नरकिन्नररक्षांसि वय पशुमृगोरगान्
अव्यय च व्यय चैव द्वयंस्थावरजङ्गमम् । तेषां येयानि कर्माणि प्राक्सृष्टे प्रतिपेदिरे
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः । हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते । महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु
विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम् । नामरूपं च भूतानां प्राकृतानां प्रपञ्चनम्
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः । आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु दृष्टयः

शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ।

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ॥ ६६ ॥

दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ ७० ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे सृष्टिप्रकरणवर्णननाम

सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

मुख्यादिसर्गकथनम्

कूर्म उवाच

एवंभूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च । यदास्य ता प्रजा सृष्टा न व्यवर्द्धन्त धीमतः
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाशोचत दुःखितः । ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्
अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम् । रजःसत्त्वं समावृत्त वर्तमानं स्वधर्मतः
तमस्तु व्यनुदत्पश्चाद्रज सत्त्वेन संयुतः । ततम प्रतिनुद वै मिथुनं समजायत ।

अधर्माचरणोविप्रा हिंसाचाशुभलक्षणा। स्वांतनुं सततोब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्
द्विधाकरोत्पुनर्देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्द्धेन नारी पुरुषो विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ६

नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं ससृजे शुभाम्।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता ॥ ७ ॥

योगैश्वर्य्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता। योऽभवत्पुरुषात्पुत्रो विराड्व्यक्तजन्मनः ॥
स्वायंभुवोमनुर्देवः सोऽभवत्पुरुषोमुनिः। सा देवी शतरूपाख्यातपःकृत्वासुदुश्चरम्
भर्त्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत। तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ॥ १० ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम्। तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददे पुनः
प्रजापतिरथाकूतिं मानसो जगृहे रुचिः। आकूत्यांमिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेःशुभम्
यज्ञस्यदक्षिणां चैवयाभ्यांसंवर्द्धितं जगत्। यज्ञस्य दक्षिणायां चपुत्राद्वादशजज्ञिरे
यामाइतिसमाख्याता देवाःस्वायंभुवेऽन्तरे। प्रसूत्यांचतथा दक्षश्चतस्रोविंशतितथा

ससर्ज्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निबोधत।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥ १५ ॥
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिःसिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्म्मो दाक्षायणीः शुभाः ॥ १६ ॥
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः।
ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥ १७ ॥

सन्ततिश्चानसूयाचऊर्ज्जास्वाहास्वधातथा। भृगुर्भवोमरीचिश्च तथाचैवाङ्गिरामुनिः
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित्। अत्रिर्वसिष्टो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्

ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो ज्ञानसत्तमाः।
श्रद्धाया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ॥ २० ॥
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते।
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः शमस्तथा ॥ २१ ॥

क्रियायाश्चाभवत्पुत्रो दण्डश्चनय एवच। बुद्ध्याबोधः सुतस्तद्वदप्रमादोऽप्यजायत

लज्जायाविनयः पुत्रो धृतेश्च व्यवसायकः । क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सिद्धः सिद्धेरजायत
यशः कीर्त्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्मसूनवः । कामस्य हर्षः पुत्रोऽभूद्देवानन्दोऽप्यजायत
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्त्तितः ।
जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिं चानृतं सुतम् ॥ २७ ॥
निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नरकमेव च । माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ॥
भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् । वेदनायां सुतश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ।
दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ॥ २९ ॥
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः । इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः
संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुङ्गवाः ॥ ३० ॥
इति श्रीकूर्ममहापुराणे मुख्यादिसर्गकथनंनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदाद्या महर्षयः । प्रणम्य वरदं विष्णुं पप्रच्छुः संशयान्विताः

मुनय ऊचुः

कथितो भवता सर्गो मुख्यादीनां जनार्द्दन ! । इदानीं संशयं चेममस्माकं छेत्तुमर्हसि॥
कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक् । पुत्रत्वमगमच्छम्भुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
कथं च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामहः । अण्डजो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि

कूर्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शङ्करस्यामितौजसः । पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम् । आसीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न महर्षयः
तत्र नारायणो देवो निर्ज्जने निरुपप्लवे । आश्रित्य शेषशयनं सुष्वापपुरुषोत्तमः ॥
सहस्रशीर्षा भूत्वासस्सहस्राक्षःसहस्रपात् । सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः ।
ततो विभूतियोगात्मा योगिनां तु दयापरः ॥ ६ ॥

कदाचित्तस्यसुप्तस्यलीलार्थंदिव्यमद्भुतम् । त्रैलोक्यसारंविमलंनाभ्यांपङ्कजमुद्बभौ

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।
दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥ ११ ॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्त्तमानस्य शार्ङ्गिणः । हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे
सतंकरेणविश्वात्मा समुत्थाप्यसनातनम् । प्रोवाचमधुरंवाक्यं माययातस्यमोहितः
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते । एकाकी को भवांश्चेति ब्रूहि मे पुरुषर्षभ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः । उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः
भोभो नारायणं देवलोकानांप्रभवाव्ययम् । महायोगीश्वरं मांवै जानीहिपुरुषोत्तमम्
मयि पश्य जगत्कृत्स्नं त्वं च लोकपितामहः । सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम्
एवमाभाष्य विश्वात्माप्रोवाचपुरुषंहरिः । जानन्नपि महायोगी को भवानितिवेधसम्

ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।
प्रत्युवाचाऽम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा ॥ १६ ॥

अहंधाताविधाता चस्वयम्भूःप्रपितामहः । मय्येवसंस्थितंविश्वं ब्रह्माहंविश्वतोमुखः
श्रुत्वा वाचंसभगवान्विष्णुः सत्यपराक्रमः । अनुज्ञाप्याथयोगेन प्रविष्टोब्रह्मणस्तनुम्
त्रैलोक्यमेतत्सकलं सदेवासुरमानुषम् । उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः ।
अथापि भगवान्विष्णुः पितामहथाब्रवीत् ॥ २३ ॥

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम् । प्रविश्य लोकान्पश्यैतान्विचित्रान्पुरुषर्षभ
ततः प्रह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च । श्रीपतेरुदरम्भूयःप्रविवेशकुशध्वजः

लज्जायाविनय पुत्रो वपुषोव्यवसायक । क्षेम शान्तिसुतश्चापि सिद्ध सिद्धेरजायत
यश कीर्त्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्म्मसूनव । कामस्यहर्षं पुत्रोऽभूद्देवानन्दोऽप्यजायत
इत्येष वै सुखोदर्क सर्गो धर्म्मस्य कीर्त्तित ।
जज्ञे हिंसा त्वधर्म्माद्वै निर्ऋति चानृत सुतम ॥ २० ॥
निकृतेस्तनयो यज्ञे भय नरकमेव च । माया च वेदना चैव मिथुन त्विदमेतयो ॥
भयाज्जज्ञेऽथवैमाया मृत्यु भूतापहारिणम् । वेदनाञ्चसुतश्चापि दु खजज्ञेऽथरौरवात्
मृत्योर्व्याधिर्जराशोकौ तृष्णा क्रोधश्च जज्ञिरे ।
दु खोत्तरा स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्म्मलक्षणा ॥ २८ ॥
नैषा भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वेनैरूर्द्ध्वरेतस । इत्येषतामस सर्गोजज्ञे धर्म्मनियामक
सङ्क्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुङ्गवा ॥ ३० ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे मुख्यादिसर्गकथननामाऽष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचननारदाद्या महर्षय । प्रणम्यवरद विष्णु पप्रच्छु संशयान्विता

मुनय ऊचु

कथितोभवता सर्गो मुख्यादीना जनार्द्दन । इदानीं संशय चेममस्माक छेत्तुमर्हसि
कथं स भगवानीश पूर्वजोऽपि पिनाकधृक् । पुत्रत्वमगमच्छम्भुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन
कथ च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामह । अण्डतो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि

कूर्म्म उवाच

शृणुध्वमृषय सर्वे शङ्करस्यामितौजस । पुत्रत्व ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम् । आसीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न चर्षयः
तत्र नारायणो देवो निर्ज्जने निरुपप्लवे । आश्रित्य शेषशयनं सुष्वापपुरुषोत्तमः ॥
सहस्रशीर्षा भूत्वासससहस्राक्षःसहस्रपात् । सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः ।
ततो विभूतियोगात्मा योगिनां तु दयापरः ॥ ६ ॥

कदाचित्तस्यसुप्तस्यलीलार्थंदिव्यमद्भुतम् । त्रैलोक्यसारंविमलंनाभ्यांपङ्कजमुद्बभौ

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।
दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥ ११ ॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्त्तमानस्य शार्ङ्गिणः । हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे
सतंकरेणविश्वात्मा समुत्थाप्यसनातनम् । प्रोवाचमधुरंवाक्यं माययातस्यमोहितः
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते । एकाकी को भवांश्चेति ब्रूहि मे पुरुषर्षभ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः । उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः
भोभो नारायणं देवलोकानांप्रभवाव्ययम् । महायोगीश्वरं मांवै जानीहिपुरुषोत्तमम्
मयि पश्य जगत्कृत्स्नं त्वं च लोकपितामहः । सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम्
एवमाभाष्य विश्वात्माप्रोवाचपुरुषंहरिः । जानन्नपि महायोगी को भवानितिवेधसम्

ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।
प्रत्युवाचाऽम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा ॥ १६ ॥

अहंधाताविधाता चस्वयम्भूःप्रपितामहः । मय्येवसंस्थितंविश्वं ब्रह्माहंविश्वतोमुखः
श्रुत्वा वाचंसभगवान्विष्णुः सत्यपराक्रमः । अनुज्ञाप्याथयोगेन प्रविष्टोब्रह्मणस्तनुम्
त्रैलोक्यमेतत्सकलं सदेवासुरमानुषम् । उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः ।
अथापि भगवान्विष्णुः पितामहमथाब्रवीत् ॥ २३ ॥

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम् । प्रविश्य लोकान्पश्यैतान्विचित्रान्पुरुषर्षभ
ततः प्रह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च । श्रीपतेरुदरम्भूयःप्रविवेश

संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोक्य ।
तस्य तत्क्षोभजं वाक्यं श्रुत्वाऽपि न तदा प्रभुः ॥ ४६ ॥

मामेवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः । न मे ह्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथा वक्ष्यामि ते
किन्तुमोहयति ब्रह्मशनन्ता पारमेश्वरी । मायाशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा ॥४८
एतावदुक्त्वा भगवान्विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह । ज्ञात्वातत्परमंतत्त्वंस्वमात्मानंसुरेश्वरः
कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः । प्रसादं ब्रह्मणेकर्तुं प्रादुरासीत्ततो हरः ॥५०
ललाटनयनो देवो जटामण्डलमण्डितः । त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः

दिव्याविलासग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः ।
मालामत्यद्भुताकारां धारयन्पादलम्बिनीम् ॥ ५२ ॥

तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मालोकपितामहः । मोहितो मायया त्वर्थं पीतवाससमब्रवीत्
क एष पुरुषो नीलः शूलपाणिस्त्रिलोचनः । तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानवमर्दनः । अपश्यदीश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलेऽम्भसि
ज्ञात्वा तं परमं भावमैश्वरं ब्रह्मभावनः । प्रोवाचोत्थाय भगवान्देवदेवं पितामहम् ॥

अयं देवो महादेवः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान् ॥ ५७ ॥

शङ्करः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः । भूतानामधिपो योगी महेशोविमलःशिवः
एषधाता विधाता च प्रधानः प्रभुरव्ययः । यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेनभाविताः
सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा । कालोभूत्वा महादेवःकेवलोनिष्कलःशिवः
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः । वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायातिशङ्करः
अस्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम् । वासुदेवाभिधानं मामवेहि प्रपितामह
किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम् । दिव्यं भवतुतेचक्षुर्येनद्रक्ष्यसितत्परम्
लब्ध्वा शैवं तदा चक्षुर्विष्णोर्लोकपितामहः । बुबुधे परमेशानं पुरतः समवस्थितम्
स लब्ध्वा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रपितामहः । प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम् ॥६५
ओङ्कारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना । अथर्वशिरसादेवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः

संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः । अवाप परमां प्रीतिं व्याजहार स्मयन्निव ॥
मत्समस्त्वं न सन्देहो मद्भक्तश्च भवान् । मयैवोत्पादितः पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्यय
त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो मम देहसमुद्भवः । वरं वरय विश्वात्मन्वरदोऽहं तवानघ ॥ ६६ ॥
स देवदेववचनं निशम्य कमलोद्भवः । निरीक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्योवाच शङ्करम्
भगवन्भूतभव्येश महादेवाम्बिकापते । त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशं सुतम्
मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया । न जाने परमं भावं याथातथ्येन ते शिव
त्वमेव देव भक्तानां माता भ्राता पिता सुहृत् । प्रसीद तव पादाब्जं नमामि शरणागतः
स तस्य वचनं श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वजः । व्याजहार तदा पुत्रं समालोक्य जनार्दनम्
यदर्थितं भगवता तत्करिष्यामि पुत्रक । विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघ
त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजितः । कुरुष्वैषु देवेश मायया लोकपितामह
एष नारायणो भक्ता ममैव परमा तनुः । भविष्यति तवेशान योगक्षेमवहो हरिः ॥ ७३ ॥
एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रीतः स परमेश्वरः । संस्पृश्य देवं ब्रह्माणं हरिं वचनमब्रवीत्

तुष्टोऽस्मि सर्वथाऽहं ते भक्तस्त्वं च जगन्मय ।
वरं वृणीष्व नावाभ्यामन्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७४ ॥

श्रुत्वाऽथ देववचनं विष्णुर्विश्वजगन्मयः । प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य तदाननम्
एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं परमेश्वरम् । पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि ॥
तथेत्युक्त्वा महादेवः पुनर्विष्णुमभाषत । भवान्सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम्
त्वन्मयं मन्मयं चैव सर्वमेतन्न संशयः । भवान्सोमस्त्वहं सूर्यो भवान्रात्रिरहं दिनम्
भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च । भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान्मायाहमीश्वरः ॥

भवान्विद्यात्मिका शक्तिः शक्तिमानहमीश्वरः ।
योऽहं स निष्कलो देवः सोऽपि नारायणः प्रभुः ॥ ८० ॥
एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिनः ।
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् योगी मामुपैष्यति ॥
पालयैतज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥ ८१ ॥

इतीदमुक्त्वा भगवाननादिः स्वमायया मोहितभूतभेदः ।
जगाम जन्मर्द्धिविनाशहीनं धामैकमव्यक्तमनन्तशक्तिः ॥ ८७ ॥
इतिश्रीकूर्ममहापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

रुद्रसृष्टिवर्णनम्

कूर्म उवाच

गते महेश्वरे देवे भूय एव पितामहः । तदेव सुमहत्पद्मं भेजेनाभिसमुत्थितम् ॥ १ ॥
अथदीर्घेणकालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ । महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥२॥
क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ । कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥
तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः । त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि
तदस्यवचनं श्रुत्वा हरिर्नारायणः प्रभुः । आज्ञापयामासतयोर्वधार्थं पुरुषावुभौ ॥५॥
तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद् द्विजाः ।
व्यजयत्कैटभं जिष्णुः विष्णुश्च व्यजयन्मधुम् ॥ ६ ॥
ततःपद्मासनासीनं जगन्नाथः पितामहम् । बभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः
अस्मान्मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो । नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयंगुरुम्
ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः ।
अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूतोऽथ विष्णुना ॥ ९ ॥
सह तेनतथाविश्य शङ्खचक्रगदाधरः । ब्रह्मानारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा
सोऽनुभूय चिरंकालमानन्दं परमात्मनः । अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसञ्ज्ञितम्
ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वादेवश्चतुर्मुखः । ससर्जसृष्टितद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः
पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा । ऋभुं सनत्कुमारञ्च पूर्वजं तं सनातनम् ॥

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिताः । विदित्वा परमं भावं चक्रिरे विद्धि निर्मतिम् ॥
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ पितामहः । बभूव नष्टचेता वै मायया परमेष्ठिनः ॥ १५
ततः पुराणपुरुषो जगन्मूर्त्तिः सनातनः । व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम् ॥

विष्णुरुवाच

कच्चिन्नु विस्मृतो देव शूलपाणिः सनातनः । यदुक्तो वै पुरा शम्भुः पुत्रत्वे भवशङ्करः ॥
प्रयुक्तवान् ममात्योऽसौ पुत्रत्वेनानुशङ्कर । अवाप सञ्ज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ॥
प्रजाः स्रष्टुं मनश्चक्रे तपः परमदुश्चरम् । तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित् समवर्त्तत ॥
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधोऽभ्यजायत । क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन् । सर्वांस्तानग्रतो दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ॥
जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः । तदा प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत् प्रभोर्मुखात् ॥
सहस्रादित्यसङ्काशो युगान्तदहनोपमः । रुरोद सुस्वरं घोरं देवदेवः स्वयं शिवः ॥
रोदमानं ततो ब्रह्मा मा रोदीरित्यभाषत । रोदनाद्रुद्र इत्येवं लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥

अन्यानि सप्त नामानि पत्नीः पुत्रांश्च शाश्वतान् ।
स्थानानि चैषामष्टानां ददौ लोकपितामहः ॥ [illegible] ॥

भवः शर्वस्तथेशानः पशूनां पतिरेव च । भीमश्चोग्रो महादेवस्तानि नामानि सप्त वै ॥
सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च । दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्त्तयः ॥
स्थानेष्वेतेषु ये रुद्रं ध्यायन्ति प्रणमन्ति च । तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परमं पदम् ॥

सुवर्चला तथैवोमा विकेशी च शिवा तथा ।
स्वाहा दिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नयः ॥ २९ ॥
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ।
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चैषां सुताः स्मृताः ॥ ३० ॥

एवंप्रकारो भगवान्देवदेवो महेश्वरः । प्रजाधर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमाश्रितः ॥
आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थितः । पीत्वा तदक्षरं ब्रह्म शाश्वतं परमामृतम् ॥

प्रजाः सृजेति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ।

स्वात्मना सदृशान्रुद्रान् ससर्ज्ज मनसा शिवः ॥ ३३ ॥
कपर्द्दिनो निरातङ्कांन्नीलकण्ठान् पिनाकिनः ।
त्रिशूलहस्तान्रुद्रिकान् सदानन्दांस्त्रिलोचनान् ॥ ३४ ॥

जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान् । वीतरागांश्चसर्व्वज्ञान् कोटिकोटिशतान्प्रभुः
तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान्निर्म्मलान्नीललोहितान् । जरामरणनिर्मुक्तान्व्याजहारहरंगुरुः
मास्राक्षीरीदृशीर्द्देव प्रजामृत्युविवर्जिताः । अन्याःसृजस्वभूतेशजन्ममृत्युसमन्विताः
ततस्तमाह भगवान् कपर्द्दीकामशासनः । नास्तिमेतादृशःसर्गःसृजत्वंविविधाःप्रजाः
ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते शुभाः प्रजाः । स्वात्मजैरेव तैरुद्रैर्निवृत्तात्माह्यतिष्ठत
स्थाणुत्वं तेनतस्यासीद्देवदेवस्य शूलिनः । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपःसत्यंक्षमा धृतिः
द्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च । अव्ययानिदशैतानिनित्यंतिष्ठन्तिशङ्करे
एवं स शङ्करः साक्षात्पिनाकी परमेश्वरः । ततःस भगवान्ब्रह्मावीक्ष्यदेवंत्रिलोचनम्
सहैव मानसै रुद्रैः प्रीतिविस्फारलोचनः । ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा ॥

तुष्टाव जगतामीशं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव! नमस्ते परमेश्वर !॥ ४४ ॥

नमः शिवायदेवाय नमस्तेब्रह्मरूपिणे । नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे ॥
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतयेनमः । नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने ॥४६॥
नमःपिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमोनमः । नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं ब्रह्मणे जनकाय ते ॥
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने । नमोवेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ॥ ४८
वेदान्तसारसाराय नमोवेदात्ममूर्त्तये । नमो बुद्धाय रुद्राय योगिनां गुरवे नमः ॥४६
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते । नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ॥
त्र्यम्बकायादिदेवाय नमस्ते परमेष्ठिने । नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमोमुण्डायदण्डिने
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमस्ताराय तीर्थाय नमोयोगर्द्धिहेतवे ॥
नमोधर्म्मादिगम्याय योगगम्याय ते नमः । नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासायते नमः

ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने । त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय ॥ त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः ।
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः । त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा । भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहङ्कार एव च

यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसञ्ज्ञितम् ।
यस्य द्यौरभवन्मूर्द्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः ॥ ५८ ॥
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ।
सन्तापयति यो नित्यं स्वभाभिर्भासयन् दिशः ॥ ५९ ॥

ब्रह्मतेजोमयं विश्वं तस्मै सूर्यात्मने नमः । हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः

कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः ।
आप्याययति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत् ॥ ६१ ॥

पीयते देवतासङ्घैस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः । बिभर्त्यशेषभूतानि यान्तश्चरति सर्वदा
शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः । सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः
आत्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः । यः शेते शेषशयने विश्वमावृत्य मायया
स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विष्ण्वात्मने नमः । बिभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम्

ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः ।
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकसाक्षिकम् ॥ ६६ ॥

नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः । योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु । कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः
तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ये विश्वतस्तनुम् । यं विनिद्रा जितश्वासाः सन्तुष्टाः समदर्शिनः

ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ।
यया सन्तरते मायां योगी संक्षीणकल्मषः ॥ ७० ॥

अपारतरपर्यन्ता तस्मै विद्यात्मने नमः । यस्य भासा विभातीदमद्वयं तमसः परम्
प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं तद्रूपं पारमेश्वरम् । नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम्

प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम् । एवंस्तुत्वा महादेवं ब्रह्मातद्भावभावितः ॥ ७३

प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्मसनातनम् ।
ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम् ॥ ७४ ॥

ऐश्वरं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः । कराभ्यांकोमलाभ्यांचसंस्पृश्यप्रणतार्त्तिहा
व्याजहार स्मयन्नेव सोऽनुगृह्य पितामहम् । यत्त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वेभवतामम

कृतं मया तत्सकलं सृजस्व विविधं जगत् ।
त्रिधाभिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया ॥ ७७ ॥

सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः । स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः
ममैव दक्षिणादङ्गाद्वामाङ्गात्पुरुषोत्तमः । तस्यदेवाधिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः ॥
सम्बभूवाथ रुद्रोवा सोऽहंतस्यपरातनुः । ब्रह्मविष्णुशिवाब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः

विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शङ्करः स्थितः ।
तथाऽन्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि च ॥ ८१ ॥

अरूपःकेवलः स्वस्थो महादेवः स्वभावतः । य एभ्यःपरतोदेवस्त्रिमूर्त्तिः परमातनुः
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा । तस्याएवपरांमूर्त्तिमामवेहि पितामह
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानं तेजोयोगसमन्वितम् । सोऽहं ग्रसामिसकलमधिष्ठायतमोगुणम्
कालोभूत्वानमनलामामन्योऽभिभविष्यति । यदायदाहिमांनित्यंविचिन्तयसिपद्मज
तदातदा मे सान्निध्यंभविष्यतितवानघ । एतावदुक्त्वाब्रह्माणंसोऽभिवन्द्य गुरुं हरः
सहैव मानसैःपुत्रैःक्षणादन्तरधीयत । सोऽपि योगं समास्थायससर्ज विविधंजगत्
नारायणाख्योभगवान्यथापूर्वंप्रजापतिः । मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्
दक्षमत्रिं वशिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया । नवब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयो मतः ॥

सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधकाः ब्रह्मवादिनः ॥ ८६ ॥
सङ्कल्पञ्चैव धर्म्मञ्च युगधर्म्मांश्च शाश्वतान् ।
स्थानाभिमानिनःसर्वान्यथा ते कथितम्पुरा ॥ ६० ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे रुद्रसृष्टिवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

द्वादशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यवर्णनपूर्वकंदेवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनम्

सूत उवाच

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्म्मरूपेण भाषितम् । विष्णुनापुनरेवेमं प्रपच्छुःप्रणता हरिम्

ऋषय ऊचुः

कैषाभगवतीदेवी शङ्करार्द्धशरीरिणी । शिवा सती हैमवती यथावद्ब्रूहि पृच्छताम्

तेषां तद्वचनंश्रुत्वामुनीनांपुरुषोत्तमः । प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वंपरमम्पदम्

कूर्म्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभने । रहस्यमेतद्विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥

साङ्ख्यानांपरमंसाङ्ख्यंब्रह्मविज्ञानमुत्तमम् । संसारार्णवमग्नानांजन्तूनामेकमोचनम्

या सा माहेश्वरीशक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा । व्योमसंज्ञा परा काष्ठासेयं हैमवती मता

शिवासर्व्वगतानन्तागुणातीतातिनिष्कला । एकानेकविभागस्थाज्ञानरूपातिलालसा

अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा ।
स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला ॥ ८ ॥

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः । परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य सन्निधौ ॥

सेयं करोति सकलं तस्याः कार्य्यमिदंजगत् । नकार्य्यंनापिकरणमीश्वरस्येतिसूरयः

चतस्रःशक्तयोदेव्यास्वरूपत्वेनसंस्थिताः । अधिष्ठानवशात्तस्याःशृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः

शान्तिर्विद्याप्रतिष्ठाचनिवृत्तिश्चेतिताःस्मृताः । चतुर्व्यूहस्ततोदेवःप्रोच्यतेपरमेश्वरः

अनया परयादेवः स्वात्मानन्दंसमश्नुते । चतुर्ष्वपि च वेदेषुचतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ॥१३॥

अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्य्यमतुलंमहत् । तत्सम्बन्धादनन्तैषा रुद्रेण परमात्मना

सैषा सर्व्वेश्वरीदेवी सर्व्वभूतप्रवर्तिका । प्रोच्यते भगवान् कालोहरिःप्राणोमहेश्वरः

तत्र सर्व्वमिदंप्रोतमोतञ्चैवाखिलञ्जगत् । स कालाग्निर्हरो देवो गीयते वेदवादिभिः

कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः । सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ॥ प्रधानं पुरुषस्तत्त्वं महानात्मा तथैव च । कालेनान्यानि तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना ॥ तस्य सर्वजगन्मूर्तिः शक्तिर्मायेति विश्रुता । तयेदं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः ॥

सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी ।
वैश्वरूपं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत् ॥ २० ॥
अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः ।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ॥ २१ ॥

सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः । माययैवाथ विप्रेन्द्राः सा चानादिरनश्वरा ॥ सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया । मायावी सर्वशक्तीशः कालः कालकरः प्रभुः ॥ करोति कालः सकलं संहरेत् काल एव हि । कालः स्थापयते विश्वं कालाधीनमिदं जगत् ॥

लब्ध्वा देवाधिदेवस्य सन्निधिं परमेष्ठिनः ।
अनन्तस्याखिलेशस्य शम्भोः कालात्मनः प्रभोः ॥ २४ ॥

प्रधानं पुरुषो माया माया चैव प्रपद्यते । एका सर्वगतानन्ता केवला निष्कला शिवा ॥

एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः ।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः ॥ २६ ॥

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः । अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ शक्तयो गिरिजा देवी शक्तिमानथ शङ्करः । विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः ॥ भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता । प्रोच्यते भगवान् भोक्ता कपर्दी नीललोहितः ॥ मन्ता विश्वेश्वरो देवः शङ्करो मन्मथान्तकः । प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारतः ॥ इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम् । प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

एतत्प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
सर्ववेदान्तवादेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ॥ ३३ ॥

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम् ॥ आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम् ॥

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् । अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमम्पदम्
शुभं निरञ्जनंशुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्ज्जितम् । आत्मोपलब्धिविषयंदेव्यास्तत्परमम्पदम्

सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम् ।
संसारतापानखिलान्निहन्तीश्वरसंश्रयात् ॥ ३८ ॥
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम् ।
आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम् ॥ ३९ ॥

लब्ध्वाचपुत्रींशर्वाणींतपस्तप्त्वासुदुश्चरन् । सभार्य्यःशरणंयातःपार्वतींपरमेश्वरीम्
तां दृष्ट्वा जायमानाञ्च स्वेच्छयैव वराननाम् । मेना हिमवतःपत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्

मेनोवाच

पश्य बालामिमांराजन्राजीवसदृशाननाम् । हिताय सर्वभूतानांजाताचतपसाऽऽवयोः

सोऽपि दृष्ट्वा ततो देवीं तरुणादित्यसन्निभाम् ।
कपर्द्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम् ॥ ४३ ॥
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् ।
निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्ज्जिताम् ॥ ४४ ॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चाऽतिविह्वलः ।
भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥ ४५ ॥

हिमवानुवाच

कात्वंदेविविशालाक्षिशशाङ्कावयवाङ्किते !। न जाने त्वामहंवत्सेयथावद्ब्रूहिपृच्छते
गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी । व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा

श्रीदेव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ॥ ४८ ॥

अनन्यामव्ययामेकांयांपश्यन्तिमुमुक्षवः । अहं हि सर्वभावानामात्मासर्वात्मनाशिवा
शाश्वतैश्वर्य्यविज्ञानमूर्त्तिः सर्वप्रवर्त्तिका । अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी
दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्यमेरूपमैश्वरम् । एतावदुक्त्वाविज्ञानं दत्त्वाहिमवतेस्वयम्

कालप्रकृतिपुरुषात्मिकाः संहारनिरताः । सर्वे कल्पान्तरयाणाम कल्पकल्पविग्रहाः प्रधानंपुरुषकालमकालात्मकाद्वृत्ति । कालेनाव्यक्तमिरव्यादि समाधिनामित्यादिना नाम्ना मायाक्रमेण शक्तिमायेति विग्रहा । तदुक्तंग्रामवेदेऽतोः मायान्तेपुरुषोत्तम

एषा सा माहेश्वरी शक्तिः मायाकारा सनातनी ।
विश्वरूपं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशते ॥ ३० ॥
अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः ।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ॥ ३१ ॥

सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः । माययैवाथ विप्रेन्द्रा सा चानादिरनन्तया सर्वशक्तिमयी मायापूर्विकाभिनन्दवा । सा चानादिरवंशनीशा कालकल्पकलाप्रभु कालिका सकलमारभ्यकल्पान्त हि । काल अनन्तयतेविश्वंकल्पाभिनिवेशग्रन्

तस्या हृषाधिकृत्यस्य सन्निधि परमेष्ठिनः ।
भवान्तराणि नित्यानि शक्तयो कालरूपस्य प्रभो ॥ ३२ ॥

प्रधानं पुरुषः माया माया भव प्रपद्यते । तथा सर्वगतानन्तावैशक्ता निष्कला स्थिता

एका शक्तिः शिवोऽपि शक्तिमानुच्यते तथा ।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः ॥ ३१ ॥

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः । अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः शक्तयोगिरिजादेवी शक्तिमानथ शङ्करः । विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः भोग्या विश्वेश्वरीदेवी महेश्वरपतिव्रता । प्रोच्यते भगवान्भोक्ता कपर्दी नीललोहित मन्ता विश्वेश्वरो देवः शङ्करो मन्मथान्तकः । प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारतः इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम् । प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः

एतत्प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
सर्ववेदान्तवादेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ॥ ३३ ॥

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परम्पदम्
आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् । योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परम्पदम्

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् । अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमम्पदम्
शुभं निरञ्जनंशुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्ज्जितम् । आत्मोपलब्धिविषयंदेव्यास्तत्परमम्पदम्

सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम् ।
संसारतापानखिलान्निहन्तीश्वरसंश्रयात् ॥ ३८ ॥
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम् ।
आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम् ॥ ३९ ॥

लब्ध्वाचपुत्रींशर्वाणींतपस्तप्त्वासुदुश्चरन् । सभार्य्यःशरणंयातःपार्वतींपरमेश्वरीम्
तां दृष्ट्वा जायमानाञ्च स्वेच्छयैव वराननाम् । मेना हिमवतःपत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्

मेनोवाच

पश्य बालामिमांराजन्राजीवसदृशाननाम् । हिताय सर्वभूतानांजाताचतपसाऽऽवयोः

सोऽपि दृष्ट्वा ततो देवीं तरुणादित्यसन्निभाम् ।
कपर्द्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम् ॥ ४३ ॥
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् ।
निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्ज्जिताम् ॥ ४४ ॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चाऽतिविह्वलः ।
भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥ ४५ ॥

हिमवानुवाच

कात्वंदेविविशालाक्षिशशाङ्कावयवाङ्किते ! न जाने त्वामहंवत्सेयथावद्ब्रूहिपृच्छते
गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी । व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा

श्रीदेव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ॥ ४८ ॥

अनन्यामव्ययामेकांयांपश्यन्तिमुमुक्षवः । अहं हि सर्वभावानामात्मासर्वात्मनाशिवा
शाश्वतैश्वर्य्यविज्ञानमूर्त्तिः सर्वप्रवर्त्तिका । अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी
दिव्यं ददामि ते चक्षुःपश्यमेरूपमैश्वरम् । एतावदुक्त्वाविज्ञानं दत्त्वाहिमवतेस्वयम्

स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यं तत्पारमेश्वरम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोबिम्बं निराकुलम्
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् । दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमण्डितम्
किरीटिनं गदाहस्तं शङ्खचक्रधरं तथा । त्रिशूलवरहस्तञ्च घोररूपम्भयानकम् ॥ ५४॥
प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्ताश्चर्य्यसंयुतम् । चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम्
किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्

शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम् ।

अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमाभ्यन्तरं परम् ॥ ५७ ॥

सर्वशक्तिमयं शुभ्रं सर्वाकारं सनातनम् । ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम्

सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वमावृत्य तिष्ठन्तं ददर्श परमेश्वरीम् ॥ ५९ ॥

दृष्ट्वा तदीदृशं रूपं देव्या माहेश्वरं परम् । भयेन च समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः ॥
आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन् । नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम्

हिमवानुवाच

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलामला । शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती परमाक्षरा

अचिन्त्या केवलाऽनन्त्या शिवात्मा परमात्मिका ।

अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाऽचला ॥ ६३ ॥

एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला । महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना

काष्ठा सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा ।

नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा ॥ ६४ ॥

शान्तिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा । व्योममूर्तिर्व्योमलया व्योमाधाराऽच्युताऽमरा
अनादिनिधनाऽमोघा कारणात्माकुलाकुला । स्वतः प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसंश्रया
प्राणेश्वरप्रिया माता महामहिषघातिनी । प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ॥
महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी । सर्वशक्तिकलाकारा ज्योत्स्ना द्यौर्महिमास्पदा
सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी । संसारयोनिः सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ॥

संसारपोता दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा ।
प्राणशक्तिः प्राणविद्या योगिनी परमा कला ॥ ७१ ॥
महाविभूतिर्दुर्द्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा । अनाद्यनन्तविभवा परमाद्याऽपकर्षिणी ॥
सर्गस्थित्यन्तकरणीसुदुर्वाच्यादुरत्यया । शब्दयोनिःशब्दमयीनादाख्यानादविग्रहा
अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी । आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी
महामाया सुदुष्पारा मूलप्रकृतिरीश्वरी । प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका ॥
पुराणा चिन्मयीपुंसामादिपूरुषरूपिणी । भूतान्तरस्थाकूटस्थामहापुरुषसञ्ज्ञिता
जन्ममृत्युजरातीतासर्व्वशक्तिसमन्विता । व्यापिनीचानवच्छिन्नाप्रधानानुप्रवेशिनी
क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता । अनादिमायासम्भिन्नात्रितत्त्वाप्रकृतिग्रहा ॥
महामायासमुत्पन्ना तामसीपौरुषी ध्रुवा ।
व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला प्रसूतिका ॥७९ ॥
अकार्य्या कार्य्यजननी नित्यं प्रसवधर्म्मिणी ।
सर्गप्रलयनिर्म्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्म्मिणी ॥ ८० ॥
ब्रह्मगर्भाचतुर्व्विंशापद्मनाभाच्युतात्मिका । वैद्युतीशाश्वतीयोनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया
सर्वाधारामहारूपासर्वैश्वर्य्यसमन्विता । विश्वरूपामहागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी
महीयसी ब्रह्मयोनिः महालक्ष्मीसमुद्भवा । महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका
सर्व्वसाधारणी सूक्ष्माह्यविद्यापारमार्थिका । अनन्तरूपानन्तस्थादेवीपुरुषमोहिनी
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता । ब्रह्मजन्माहरेर्मूर्त्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका
ब्रह्मेशविष्णुजननीब्रह्माख्याब्रह्मसंश्रया । व्यक्ता प्रथमजाब्राह्मी महती ब्रह्मरूपिणी
वैराग्यैश्वर्य्यधर्म्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हृदिस्थिता ।
अपां योनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा ॥ ८७ ॥
ईश्वराणी च शर्वाणी शङ्करार्द्धशरीरिणी । भवानीचैवरुद्राणीमहालक्ष्मीरथाम्बिका
महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शङ्करेच्छानुवर्तिनी । ईश्वरार्द्धासनगता महेश्वरपतिव्रता ॥ ९० ॥

शरद्विमानामक्लीत्तिमुद्रपरिशोभिणी । पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी

गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकाशिनी ।

सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरसिस्थिता ॥ ९३ ॥

सरोजनिलयागङ्गा योगनिद्रा सुरार्दिनी । सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठासुमङ्गला

वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्त्तिः सर्वार्थसाधिका ।

योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना ॥ ९४ ॥

गुह्यविद्याऽऽत्मविद्या च धर्म्मविद्यात्मभाविता ।

स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः ॥ ९५ ॥

नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी ।

पूज्या विभावरी सौम्या भोगिनी भोगशायिनी ॥ ९६ ॥

शोभा च शङ्करीलोलामालिनीपरमेष्ठिनी । त्रैलोक्यसुन्दरीरम्यासुन्दरीकामचारिणी

महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्द्दिनी । पद्मनाभा पापहरा विचित्रमुकुटाङ्गदा ॥

कान्ताचित्राम्बरधरादिव्याभरणभूषिता । हंसाख्याव्योमनिलयाजगत्सृष्टिविवर्द्धिनी

नियन्त्री यन्त्रमध्यस्था नन्दिनीभद्रकालिका । आदित्यवर्णाकौबेरीमयूरवरवाहना

वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता । अदितिर्नियता रौद्रापद्मगर्भाविवाहना

विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी । महाफलाऽनवद्याङ्गी कामरूपा विभावरी

विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्त्तिप्रभञ्जनी । कौशिकी कर्षणीरात्रिस्त्रिदशार्त्तिविनाशिनी

बहुरूपा स्वरूपा च विरूपारूपवर्जिता । भक्तार्त्तिशमनी भव्या भवतापविनाशिनी

निर्गुणा नित्यविभवा निःसारानिरपत्रपा । तपस्विनीसामगीतिर्भवाङ्कनिलयालया

दीक्षा विद्याधरा दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी ।

सर्वातिशायिनी विश्वा सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ १०६ ॥

सर्वेश्वरप्रियाभार्या समुद्रान्तरवासिनी । अकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धानिरामया

कामधेनुर्बृहद्गर्भा धीमती मोहनाशिनी । निःसङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रिया

ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोमयी । महाभगवती भर्गा वासुदेवसमुद्भवा ॥

महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा । ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषयागतिः ॥
दक्षिणा दहती दीर्घा सर्वभूतनमस्कृता । योगमाया विभागज्ञा महामोहा गरीयसी
सन्ध्यासर्व्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवियाश्रयादिभिः । बीजाङ्कुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः

क्षान्तिः प्रज्ञा चितिः सच्चिन्महाभोगीन्द्रशायिनी ।
विकृतिः शाङ्करी शास्तिर्गणगन्धर्व्वसेविता ॥ ११३ ॥

वैश्वानरीमहाशालामहासेनागुहप्रिया । महारात्रिः शिवानन्दाशचीदुःस्वप्ननाशिनी

इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेया सुरूपिणी ।
तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता ॥ ११५ ॥

गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठामरुत्सुता । हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा
जगद्योनिर्जगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा । बुद्धिर्महाबुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी

तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता ।
सर्व्वेन्द्रियमनोमाता सर्व्वभूतहृदि स्थिता ॥ ११८ ॥

संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया । ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणी
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्त्तिका । सुमालिनी सुरूपाचभाविनी हारिणीप्रभा
उन्मीलनीसर्व्वसहासर्व्वप्रत्ययसाक्षिणी । सुसौम्या चन्द्रवदनाताण्डवासक्तमानसा
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी । जगत्प्रिया जगन्मूर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिरमृताश्रया
निराश्रया निराहारानिरङ्कुशपदोद्भवा । चन्द्रहस्ताविचित्राङ्गीस्त्रग्विणी पद्मधारिणी
परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा । विश्वेश्वरप्रिया विद्युद्विद्युज्जिह्वा जितश्रमा
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा । सहस्ररश्मिः सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया

क्षालिनी मृण्मयी व्यापा तैजसी पद्मबोधिका ।
महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा ॥ १२६ ॥
व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितानाऽमितप्रभा ।
वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी ॥ १२७ ॥

अनाहता कुण्डलिनी नलिनीपद्मभासिनी । सदानन्दासदाकीर्त्तिःसर्वभूताश्रयस्थिता

वागीश्वरी ब्रह्मकला कलातीता कलारणी। ब्रह्मश्रीर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया
व्योमशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः परा गतिः।
क्षोभिका बन्धिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता ॥ १३० ॥
अभिन्ना भिन्नसंस्थाना वंशिनी वंशहारिणी। गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी
भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालहारिणी। सर्ववित् सर्वतोभद्रा गुह्यातीता गुहारणिः
प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वेश्वरेश्वरी। कपिला कपिला कान्ता कमलाभा कलान्तरा
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरन्दरपुरस्सरा। पोषिणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमार्थार्थविग्रहा। धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा
मनोरमा मनोरक्षा तापसी वेदरूपिणी। वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी
योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी।
विश्वावस्था वियन्मूर्तिर्विद्युन्माला विहायसी ॥ १३९ ॥
किन्नरी सुरभी वन्द्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा। भारती परमानन्दा परापरविभेदिका
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी। अचिन्त्याऽचिन्त्यविभवा हृल्लेखा कनकप्रभा
कूष्माण्डा धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी।
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिवोदया ॥ १४० ॥
सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना। शान्तिः प्रभावती दीप्तिः पङ्कजायतलोचना
आद्या हृत्कमलोद्भूता गवां माता रणप्रिया।
सत्क्रिया गिरिजा शुद्धिर्नित्यपुष्टा निरन्तरा ॥ १४१ ॥
दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिका शान्तविग्रहा। हिरण्यवर्णा रजनी जगद्यन्त्रप्रवर्तिका
मन्दराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी। रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी
पद्मानना पद्मनिभा नित्यतुष्टामृतोद्भवा। धुन्वती दुष्प्रकम्प्या च सूर्यमाता दृषद्वती
महेन्द्रभगिनी मान्या वरेण्या वरदायिका। कल्याणी कमलावासा पञ्चचूडा वरप्रदा
वाच्या अमरेश्वरी विद्या दुर्जया दुरतिक्रमा। कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता
भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी। कराला पिङ्गलाकारा कामभेदा महास्वना

यशस्विनी यशोदा च षड्ध्वपरिवर्त्तिका (षडर्त्तुपरिवर्त्तिनी) ।
शङ्खिनी पद्मिनी साङ्ख्या साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तिका ॥ १४६ ॥
चैत्रा सम्वत्सरारूढा जगत्सम्पूरणी ध्वजा ।
शुम्भारिः खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया ॥ १५० ॥
गध्वजा खगारूढा वाराही पूगमालिनी । ऐश्वर्य्यपद्मनिलया विरक्ता गरुडास
जयन्ती हृद्गुहा गम्या गह्वरेष्ठा गणाग्रणीः ।
सङ्कल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ॥ १५२ ॥
कलिः कल्कविहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ।
निष्ठा दृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती ॥ १५३ ॥
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिःशिवामृता । लोहितासर्पमाला चभापर्णावनमालि
अनन्तशयनानन्ता नरनारायणोद्भवा । नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदा
सङ्कर्षणी समुत्पत्तिरम्बिकापादसंश्रया ।
महाज्वाला महाभूतिः सुमूर्त्तिः सर्व्वकामधुक् ॥ १५६ ॥
शुभ्राच सुस्तना सौरीधर्म्मकामार्थमोक्षदा । भ्रूमध्यनिलयापूर्व्वा पुराणपुरुषा
महाविभूतिदा मध्या सरोजनयनासमा । अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदल
सर्व्वशक्त्यासनारूढा धर्म्माधर्म्मविवर्जिता । वैराग्यज्ञाननिरतानिरालोकानिरिन्
विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी । स्थानेश्वरीनिरानन्दा त्रिशूलवरधा
अशेषदेवतामूर्त्तिर्देवता वरदेवता । गणाम्बिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपा
अवर्णा वर्णरहिता त्रिवर्णा जीवसम्भवा । अनन्तवर्णाऽनन्यस्थाशङ्करीशान्तमा
अगोत्रा गोमतीगोप्त्रीगुह्यरूपा गुणोत्तरा । गौर्गीर्गव्यप्रियागौणीगणेश्वरनमस
सत्यभामा सत्यसन्धा त्रिसन्ध्या सन्धिवर्जिता ।
सर्व्ववादाश्रया सङ्ख्या साङ्ख्ययोगसमुद्भवा ॥ १६४ ॥
असंख्येयाऽप्रमेयाख्या शून्याशुद्धकुलोद्भवा । बिन्दुनादसमुत्पत्तिःशम्भुवामाशशि

त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया ।
शान्ता भीता मलातीता निर्विकारा शिवाश्रया ॥ १६७ ॥
शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी ।
दैत्यदानवनिर्माथी काश्यपी कालकर्णिका ॥ १६८ ॥

शास्त्रयोनि क्रियामूर्त्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका । नारायणीनरोत्पत्ति कौमुदीलिङ्गधारिणी कामुकी ललिताभावा परापरविभूतिदा । पराङ्गजातमहिमा वडवा वामलोचना सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा । मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा अमन्युरमृतास्वादा पुरुहूता पुरुष्टुता । अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया हिरण्यरजनी हैमा हेमाभरणभूषिता । विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रासत्यदेवता । दीर्घाककुद्मिनी हृद्याशान्तिदाशान्तिवर्द्धिनी लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्त्तिका । त्रिशक्तिजननी जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता सुधौताकर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका । सङ्कर्षणीजगद्धात्री कामयोनि किरीटिनी ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी । प्रद्युम्नदयितादात्री युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना

मदोत्कटा हंसगति प्रचण्डा चण्डविक्रमा ।
वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी ॥ १७८ ॥

हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी । चाणूरहन्तृतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी वेदविद्या व्रतस्नाता धर्मशीलनिवासिनी । वीरभद्रप्रजा वीरा महाकामसमुद्भवा विद्याधरप्रिया सिद्धाविद्या धरनिराकृति । आप्यायनीहरन्तीचपावनी पोषणीकला मातृकामन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया । करीषिणीसुधावाणीवीणावादनतत्परा

सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती ।
अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्का मानदायिनी ॥ १८३ ॥

वसुप्रदा वसुमता वसोर्धारा वसुन्धरा । धाराधरा वरारोहा वरावाससहस्रदा

श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया ।
श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्द्धशरीरिणी ॥ १८५ ॥

अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया । निहन्त्री दैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना
सुवर्चला चसुश्रोणी सुकीर्त्तिश्छिन्नसंशया । रसज्ञा रसदारामालेलिहानाऽमृतस्रवा
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजीवना । वज्रदण्डावज्रजिह्वावैदेही वज्रविग्रहा
मङ्गल्या मङ्गला माला निर्म्मला मलहारिणी ।
गान्धर्व्वी करुका चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया ॥ १८६ ॥
सौदामिनी जनानन्दाभ्रुकुटीकुटिलानना । कर्णिकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी
युगन्धरायुगावर्त्तात्रिसन्ध्या हर्षवर्द्धनी । प्रत्यक्षदेवता दिव्यादिव्यगन्धा दिवःपरा
शक्रासनगता शाक्रीसाध्याचारुशरासना । इष्टाविशिष्टाशिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता
शतरूपा शतावर्त्ताविनता सुरभिःसुरा । सुरेन्द्रमाता सुद्युम्नासुषुम्नासूर्य्यसंस्थिता
समीक्ष्यासत्प्रतिष्ठा चनिवृत्तिर्ज्ञानपारगा । धर्म्मशास्त्रार्थकुशला धर्म्मज्ञाधर्म्मवाहना
धर्माधर्म्मविनिर्म्मात्री धार्म्मिकाणां शिवप्रदा ।
धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी ॥ १९५ ॥
धर्मान्तरा धर्ममयी धर्मपूर्व्वा धनावहा । धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा
कापाली शकला मूर्तिःकलाकलितविग्रहा । सर्वशक्तिविनिर्मुक्तासर्वशक्त्याश्रयाश्रया
सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी । प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी
सदाशिवा वियन्मूर्त्तिर्वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिका ।
एवं नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वाऽसौ हिमवान्गिरिः ॥ १९६ ॥
भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः । यदेतदैश्वरं रूपं घोरन्ते परमेश्वरि
भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वारूपमन्यत्प्रदर्शय । एवमुक्ताऽथ सा देवी तेनशैलेनपार्व्वती
संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरम्पुनः ।
नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धि च ॥ २०२ ॥
द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् । रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम्
श्रीमद्विलाससद्वृत्तं ललाटतिलकोज्ज्वलम् । भूषितंचारुसर्वाङ्गंभूषणैरतिकोमलम्
दधानमुरसामालां विशालां हेमनिर्मिताम् । ईषत्स्मितं सुविम्बोष्ठंनूपुरारावसंयुतम्

प्रसन्नवक्त्रं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् । तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः

भीतिं सन्त्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम् ।

हिमवानुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥ २०७ ॥

यन्मे साक्षात्त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरम् ।

त्वया सृष्टं जगत्सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् ॥ २०८ ॥

त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव परमा गतिः । वदन्ति केचित्त्वामेव प्रकृतिं प्रकृतेः पराम्

अपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रयात् । त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वरः

अविद्या नियतिर्माया कलाद्याः शतशोऽभवन् । त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी

सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रयाश्रया । त्वामधिष्ठाय योगेशि महादेवो महेश्वरः

प्रधानाद्यं जगत्सर्वं करोति विकरोति च । त्वयैव सङ्गतो देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते

त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी । त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम्

शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ।

त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि ॥ २१५ ॥

वायुर्बलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारकः । ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामसि

सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शङ्करः । आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनां चैव पावकः

वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामसि ।

अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः ॥ २१८ ॥

माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामसि । ओङ्कारः सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः

आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वरः । पुंसां त्वमेकः पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः

सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे । ईशानश्चापि कल्पानां युगानां कृतमेव च

आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती ।

त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि ॥ २२२ ॥

अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि । सूक्तानां पौरुषं सूक्तं साम ज्येष्ठं च सामसु

सावित्रीचापिजाप्यानां यजुषांशतरुद्रियम् । पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामपि
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ २२५ ॥
रूपं तवाशेषविकारहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम् ।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥ २२६ ॥
यद्वेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः ।
आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये ॥ २२७ ॥
अशेषभूतान्तरसन्निविष्टं प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम् ।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥ २२८ ॥
आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तथैव नमामि रूपं पुरुषाभिधानम् ॥ ५२६ ॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम् ।
सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम् ॥ २३० ॥
आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम् ।
ऐश्वर्य्यविज्ञानविरोधधर्मैः समन्वितं देवि! नतोऽस्मि रूपम् ॥ २३१ ॥
द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम् ।
अनेकभेदैरधिवासितं ते नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसञ्ज्ञम् ॥ २३२ ॥
अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं स्वतेजसा पूरितलोकभेदम् ।
त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसञ्ज्ञं नमामि रूपं रविमण्डलस्थम् ॥ २३३ ॥
सहस्रमूर्द्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम् ।
शयानमन्तः सलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥ २३४ ॥
दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं युगान्तकालानलकर्तृ रूपम् ।
अशेषभूताण्डविनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालसञ्ज्ञम् ॥ २३५ ॥
फणासहस्रेण विराजमानं भोगीन्द्रमुख्यैरपि पूज्यमानम् ।
जनार्दनारूढतनुं प्रसुप्तं नतोऽस्मि रूपं तव शेषसञ्ज्ञम् ॥ २३६

अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं ब्रह्मामृतानन्दरसज्ञमेकम् ।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसञ्ज्ञम् ॥ २३७ ॥
प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
सुकोमलं देवि ! विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि ! ॥ २३८ ॥
ॐ नमस्तेऽस्तु महादेवि ! नमस्ते परमेश्वरि !।
नमो भगवतीशानि ! शिवायै ते नमोनमः ॥ २३९ ॥
त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम ।
त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि ! ॥ २४० ॥
मया नाऽस्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ।
जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यतः ॥ २४१ ॥
एषा तवाऽम्बिके देवि ! किलाऽभूत्पितृकन्यका ।
मेनाऽशेषजगन्मातुरहो मे पुण्यगौरवम् ॥ २४२ ॥
पाहि माममरेशानि ! मेनया सह सर्वदा ।
नमामि तव पादाब्जं व्रजामि शरणं शिवम् ॥ २४३ ॥
अहो मे सुमहद्भाग्यं महादेवीसमागमात् ।
आज्ञापय महादेवि ! किं करिष्यामि शङ्करि ! ॥ २४४ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः ।
सम्प्रेक्षमाणो गिरिजां प्राञ्जलिः पार्श्वगोऽभवत् ॥ २४५ ॥
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणिः ।
सस्मितं प्राह पितरं स्मृत्वा पशुपतिं पतिम् ॥ २४६ ॥

श्रीदेव्युवाच

शृणुध्वं चैतत्परमं गुह्यमीश्वरगोचरम् । उपदेशं गिरिश्रेष्ठ ! सेवितं ब्रह्मवादिभिः
यन्मे साक्षात्परं रूपमैश्वरं दृष्टमद्भुतम् । सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम्
[illegible]

भक्त्या त्वनन्यया तात! मद्भावं परमाश्रितः ।
सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्च्चय सर्वदा ॥ २५० ॥

तदेव मनसा पश्यतद्ध्यायस्व यजस्व तत् । ममोपदेशात्संसारं नाशयामि तवानघ
अहं त्वां परयाभक्त्याऐश्वरंयोगमास्थितम् । संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेणतु
ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्याज्ञानेनचैवहि । प्राप्याहन्ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथाकर्मकोटिभिः

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्कर्म वर्णाश्रमात्मकम् ।
अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु ॥ २५४ ॥
धर्मात्सञ्जायते भक्तिर्भक्त्या संप्राप्यते परम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्म्मो यज्ञादिको मतः ॥ २५५ ॥

नान्यतोजायतेधर्म्मोवेदाद्धर्मो हि निर्बभौ । तस्मान्मुमुक्षुर्धर्म्मार्थीमद्रूपंवेदमाश्रयेत्
ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसञ्ज्ञा पुरातनी । ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ संप्रवर्त्तते
तेषामेवचगुप्त्यर्थंवेदानां भगवानजः । ब्राह्मणादीन्ससर्जाथस्वेस्वे कर्म्मण्ययोजयत्
येन कुर्वन्ति मद्धर्मन्तदर्थं ब्रह्मनिर्म्मिताः । तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्रादीनकल्पयत्

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम् ।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभिः ॥ २६० ॥
यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विविधानि तु ।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥ २६१ ॥

कापालं भैरवञ्चैव यामलं वाममार्हतम् । एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानितानि तु
येकुशास्त्राभियोगेनमोहयन्तीहमानवान् । मयासृष्टानिशास्त्राणि मोहायैषांभवान्तरे
वेदार्थवित्तमैःकार्यंयत्स्मृतं कर्म्मवैदिकम् । तत्प्रयत्नेन कुर्वन्तिमत्प्रियास्तेहियेनराः

वर्णानामनुकम्पार्थम्मन्नियोगाद्विराट् स्वयम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्द्धर्मान्मुनीनां पूर्वमुक्तवान् ॥ २६५ ॥
श्रुत्वा चाऽन्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद्धर्म्ममुत्तमम् ।
चक्रुर्द्धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्म्मशास्त्राणि चैव हि ॥ ६६ ॥

मेषु वस्तुनिर्निर्देश्यं पुराणेष्वपि सङ्गतम् । महान्तो यान्यमानानि कल्पितानि युगेयुगे महाभागवतानि च्यासादौ कथितानि । निरीशानुज्ञया शास्त्रं पुराणं प्रति हि भागवतपुराणानि निर्दिष्टं कथितानि । युगानुरूपधर्मांश्च तन्त्राणि धर्मशास्त्राणि

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ।

ज्योतिः शास्त्रं न्यायविद्या सर्वेषामुपबृंहणम् ॥ २७० ॥

एवं चतुर्दशैतानि मया हि द्विजसत्तमाः । चतुर्वेदैः स्मृतोऽस्माकं धर्मो नान्यत्र विद्यते एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम् । स्थापयन्ति ममादेशाद्यावदाभूतसम्प्लवम् ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसञ्चरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत् । धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ये तु सङ्गान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः । उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः

सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः ।

अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः ॥ २७७ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा मज्ज्ञानकथने रताः । सन्न्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः

तेषां नित्याभियुक्तानां भावनार्थं समुत्थितम् ।

नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन भो चिरात् ॥ २७८ ॥

ते सुनिर्धूततमसो ज्ञानेनैकेन मन्मयाः । सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनः पुनः ॥

तस्मात्सर्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायणः ।

मामथाश्रित्य सर्वत्र मनसा शरणं गतः ॥ २८० ॥

अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरं रूपमव्ययम् । ततो मे परमं रूपं कालाख्यं शरणं व्रज ॥ यद्यन्यत्स्यात् मतान्तरमतोऽतोऽर्चनेन । तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव ॥२८२॥ यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम् । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम् ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम् । ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्ति ते ॥२८४॥ तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः । गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः मामनाश्रित्य परमं निर्वाणममलं पदम् । प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज

एकत्वेन पृथक्त्वेनतथाचोभयथापि वा। मामुपास्यमहीपालततोयास्यसितत्पदम्
मामनाश्रित्य तत्तत्त्वंस्वभावविमलंशिवम्। ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततोमां शरणं व्रज
तस्मात्त्वमक्षरं रूपंनित्यं वारूपमैश्वरम्। आराधय प्रयत्नेन ततोऽन्यत्त्वंप्रहास्यसि
कर्म्मणा मनसा वाचाशिवंसर्व्वत्रसर्वदा। समाराधय भावेनततोयास्यासि तत्पदम्
न वै यान्यन्तितंदेवं मोहिता मम मायया। अनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम्
सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं निरञ्जनम्। नित्यानन्दं निराभासंनिर्गुणंतमसःपरम्
अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम्। स्वसंवेद्यमवेद्यंतत्परेव्योम्निव्यवस्थितम्
सूक्ष्मेण तमसानित्यं वेष्टिता मम मायया। संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनः पुनः
भक्त्या त्वनन्ययाराजन् सम्यग्ज्ञानेन चैव हि। अन्वेष्टव्यंहितद्ब्रह्मजन्मबन्धनिवृत्तये
अहङ्कारञ्चमात्सर्य्यंकामंक्रोधपरिग्रहम्। अधर्म्माभिनिवेशञ्चत्यक्त्वावैराग्यमास्थितः
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। अवेक्ष्यचात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः। ऐश्वर्य्यं परमांभक्तिं विन्देतानन्यभाविनीम्
वीक्ष्यते तत्परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्म निष्कलम्। सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते
ब्रह्मणोऽयं प्रतिष्ठानं परस्य परमः शिवः। अनन्यश्चाव्ययश्चैकश्चात्माधारो महेश्वरः
ज्ञानेनकर्मयोगेनभक्त्यायोगेन वा नृप। स्वं संसारमुक्त्यर्थमीश्वरं शरणं व्रज॥३०६
एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर!। अन्वीक्ष्य चैतदखिलं यथेष्टंकर्तुमर्हसि
अहं वै याचिता देवैः सञ्जातापरमेश्वरात्। विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम्
धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात्। मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता
स त्वं नियोगाद्देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः। प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे
तत्सम्बन्धान्तरेराजन्सर्वे देवाःसवासवाः। त्वांनमस्यन्तिवै तातप्रसीदतिचशङ्करः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम्। संपूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं व्रज

स एवमुक्तो हिमवान् देवदेव्या गिरीश्वरः।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥ ३०८॥

विस्तरेण महेशानियोगं माहेश्वरं परम्। ज्ञानं च चात्मनो योगं साधनानिप्रचक्ष्वमे

तस्यैतत्परमं ज्ञानमात्मनो योगमुत्तमम् । यथावद्व्याजहारेशा साधनानि च विस्तरात्
निशम्य वदनाम्भोजाद्गिरीन्द्रो लोकपूजितः । लोकमातुः परं ज्ञानं योगासक्तोऽभवत्पुनः
प्रददौ च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात् । नियोगाद्ब्रह्मणः साध्वीं देवानाञ्चैव सन्निधौ

य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकीर्त्तनम् ।
शिवस्य सन्निधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः ॥ ३१३ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः ।
उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोकं देव्याः स्थानमवाप्नुयात् ॥ ३१४ ॥

यश्चैतत्पठति स्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपतः । समाहितमनाः सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते
नाम्नामष्टसहस्रन्तु देव्या यत्समुदीरितम् । ज्ञात्वार्कमण्डलगतां भावयित्वा परमेश्वरीम्
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तियोगसमन्वितः । संस्मरन्परमं भावं देव्या माहेश्वरं परम्

अनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद्द्विजः ।
सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ३१८ ॥

अथवा जायते विप्रो ब्राह्मणानां कुले । पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्

सम्प्राप्य योगं परमं दिव्यं तत्पारमेश्वरम् ।
शान्तः सुसंयतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३२० ॥

प्रत्येकञ्चाथ नामानि जुहुयात्सवनत्रयम् । महामारिकृतैर्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते
जपेद्वाऽहरहर्नित्यं संवत्सरमतन्द्रितः । श्रीकामः पार्वतीं देवीं पूजयित्वा विधानतः
सम्पूज्य पार्श्वतः शम्भुं त्रिनेत्रं भक्तिसंयुतः । लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जप्तव्यं हि द्विजातिभिः । सर्वपापापनोदार्थं देव्या नामसहस्रकम्

सूत उवाच

प्रसङ्गात्कथितं विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम् । अतः परं प्रजासर्गं भृग्वादीनां निबोधत

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे देव्यामाहात्म्ये देवीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनंनाम

त्रयोदशोऽध्यायः

दक्षकन्यानांवंशवर्णनम्

सूत उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया ।
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ शुभौ ॥ १ ॥

आयतिर्नियतिश्चैवमेरोःकन्ये महात्मनः । तयोर्धातृविधातृभ्यांयौचजातौसुतावुभौ
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयोमृकण्डुतः । तथा वेदशिरानामप्राणस्यद्युतिमान्सुतः
मरीचेरपि सम्भूतिः पूर्णमासमसूयत । कन्याचतुष्टयञ्चैवसर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४ ॥
तुष्टिर्ज्येष्ठातथावृष्टिःकृष्टिश्चाऽपचितिस्तथा । विरजाःपर्वतश्चैव पूर्णमासस्यतौसुतौ
क्षमातु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः । कर्द्दमञ्च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम् ॥
तथैव च कनीयांसं तपोनिर्द्धूतकल्मषम् । अनसूया तथैवाऽत्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्
सोमं दुर्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्चयोगिनम् । स्मृतिश्चाङ्गिरसःपुत्रीर्जज्ञे लक्षणसंयुता
सिनीवालींकुहूञ्चैवराकामनुमतीमपि । प्रीत्यांपुलस्त्योभगवान्दम्भोजिमसृजत्प्रभुः
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
देवबाहुस्तथा कन्या द्वितीया नाम नामतः ॥ १० ॥

पुत्राणांषष्टिसाहस्त्रंसन्ततिःसुषुवेक्रतोः । तेचोर्द्ध्वरेतसःसर्वेबालखिल्याइतिस्मृताः
वसिष्ठश्च तयोर्ज्जायां सप्त पुत्रानजीजनत् ।
कन्याञ्च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम् ॥ १२ ॥

रजोमात्रोर्द्ध्वबाहुश्च सवनश्चानगस्तथा । सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः
योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः ।
स्वाहा तस्मात्सुतान् लेभे त्रीनुदारान्महौजसः ॥ १४ ॥

पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च रूपतः । निर्म्मथ्यःपवमानःस्याद्वैद्युतः पावकःस्मृतः

प्रतिश्रुते भाग्ययोगात्सन्न्यासमथ धर्मवित् ॥ २८ ॥
स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः ।
जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित्सिद्धसेवितम् ॥ २९ ॥

तत्र धर्मपदं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम् । अनन्ययोगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम् तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्याविमलानदी । पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता स तस्याः दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैर्योगिभिर्युतम् । सुपुण्यमाश्रमं रम्यमपश्यत्प्रीतिसंयुतः मन्दाकिनीजले स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः । अर्चयित्वा महादेवं पुष्पैः पद्मोत्पलादिभिः

ध्यात्वाऽर्कसंस्थमीशानं शिरस्याधाय चाऽञ्जलिम् ।
सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ३० ॥

रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चरितेन च । अन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शाम्भवैर्वेदसम्भवैः अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत्समायान्तं महामुनिम् । श्वेताश्वतरनामानं महापाशुपतोत्तमम्

भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम् ।
तपसा च (?) विनाऽऽस्थाय शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३१ ॥

समाप्य संस्तवं शम्भोरानन्दाश्रुविलेक्षणः । ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान्दृष्टो योगविदां वरः ॥ ३२ ॥

अहो मे सुमहद्भाग्यं तपांसि सफलानि मे । किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयाऽनघ सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम् । शिष्यत्वे परिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम्

सान्न्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः ।
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितव्रतम् ॥ ३३ ॥

अशेषवेदसारं तत्पशुपाशविमोचनम् । अन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम् उवाच शिष्यान्सम्प्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः । ब्राह्मणान् क्षत्रियान्वैश्यान् ब्रह्मचर्यपरायणान् मया प्रवर्तिताम् शाखामध्येष्येह यानिन । समारभ्य महादेवध्यानमार्गविधौ ध्रुवम् ... इदं महत्तरं शाश्वतम् महाप्रभा । अथास्य मत्प्रसादतो ... अनुवर्तनात्

इहाऽशेषजगद्धाता पुरा नारायणःस्वयम् । आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया
इहैनं देवमीशानं देवानामपि दैवतम् । आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः
इहैव मुनयः सर्वे मरीच्याद्या महेश्वरम् । दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम्
तस्मात्त्वमपिराजेन्द्रतपोयोगसमन्वितः । तिष्ठनित्यंमयासार्द्धंततस्सिद्धिमवाप्स्यसि

एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् ।
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत्सर्वसिद्धये ॥ ४७ ॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारंविमुक्तिदम् । अग्निरित्यादिकं पुण्यंऋषिभिःसम्प्रवर्त्तितम्

सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः ।
साक्षात्पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ४६ ॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधः सन्न्यासविधिमाश्रितः ॥ ५० ॥

हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम् । प्राचीनबर्हिषंनाम्नाधनुर्वेदस्य पारगम्
प्राचीनबर्हिर्भगवान्सर्वशस्त्रभृताम्वरः । समुद्रतनयायां वै दशपुत्रानजीजनत् ॥ ५२॥
प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः । अधीतवन्तःस्वंवेदंनारायणपरायणाः
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायांप्रजापतिः । दक्षो जज्ञेमहाभागो यःपूर्वंब्रह्मणःसुतः
स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता । कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत्
समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः । दृष्ट्वा यथोचितांपूजां दक्षायप्रददौस्वयम्

तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः ।
पूजामनर्हामन्विच्छञ्जगाम कुपितो गृहम् ॥ ५७ ॥

कदाचित्स्वगृहंप्राप्तांसतींदक्षःसुदुर्मनाः । भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामासवैरुषा

अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिनः ।
त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद्गच्छ यथागतम् ॥ ५६ ॥

[illegible] ॥ [illegible] ।
[illegible] ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ १८ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ १९ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २० ॥

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ २४ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे [illegible] त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु । धर्मज्ञौ तौ महावीर्यौ [illegible] उत्तानपादस्य ध्रुवो नाम सुतोऽभवत् । भक्त्या नारायणे देवे प्राप्तवान् स्थानमुत्तमम्

ध्रुवाच्छ्लिष्टिश्च भव्यश्च भव्याच्छम्भुर्व्यजायत ।

[illegible]

वसिष्ठवचनाद्देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम्
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं कपिलं वृषतेजसम् । नारायणपरान्शुद्धान्स्वधर्मपरिपालकान् ॥५॥
रिपोराधत्त महिषीचाक्षुषं सर्वतेजसम् । सोऽजीजनत्पुष्करिण्यांमनुरूपं चाक्षुषंमनुम्
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः । मनोरजायन्त दश सुतास्ते सुमहौजसः
कन्यायांसुमहावीर्या वैराजस्यप्रजापतेः । ऊरुःपुरुःशतद्युम्नस्तपस्वीसत्यवाक्शुचिः
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः । ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाबलान्
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमाङ्गिरसं शिवम् । अङ्गाद्वेनोऽभवत्पश्चाद्वैन्यो वेनादजायत
यो ऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः ।
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकाम्यया ॥ ११ ॥
नियोगाद्ब्रह्मणःसार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा । वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे ॥
सूतः पौराणिकोयज्ञे मायारूपःस्वयंहरिः । प्रवक्तासर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुरुवत्सलः
तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भूतं सनातनम् ।
अस्मिन्मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥ १४ ॥
श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणःपुरुषोहरिः । मदन्वये तु येसूताः सम्भूता वेदवर्जिताः
तेषांपुराणवक्तृत्वंवृत्तिरासीदजाज्ञया । सच वैन्यःपृथुर्धीमान्सत्यसन्धोजितेन्द्रियः
सार्वभौमोमहातेजाः स्वधर्मपरिपालकः । तस्यबाल्यात्प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत्
गोवर्द्धनगिरिं प्राप्तस्तपस्तेपे जितेन्द्रियः । तपसा भगवान्प्रीतः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
आगत्यदेवो राजानंप्राह दामोदरःस्वयम् । धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभृतांवरौ
मत्प्रसादादसन्दिग्धौ पुत्रौतवभविष्यतः । एवमुक्त्वा हृषीकेशःस्वर्कीयांप्रकृतिङ्गतः
वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्वहन् ।
सोऽपालयत्स्वकं राज्यं चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥
अचिराद्देवतन्वङ्गीभार्यातस्यशुचिस्मिता । शिखण्डिनंहविर्द्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत
शिखण्डिनोऽभवत्पुत्रः सुशील इतिविश्रुतः । धार्मिकोरूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः
सोऽधीत्य विधिवद्वेदान्धर्मेण तपसि स्थितः ।

मतिश्चक्रे भाग्ययोगात्सन्न्यासम्प्रति धर्मवित् ॥ २४ ॥
स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः ।
जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित्सिद्धसेवितम् ॥ २५ ॥

तत्र धर्मवनं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम् । अपश्यद्योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम् तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्या विमला नदी । पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैर्योगिभिर्युतम् । सुपुण्यमाश्रमं रम्यमपश्यत्प्रीतिसंयुतः मन्दाकिनीजले स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः । अर्चयित्वा महादेवं पुष्पैः पद्मोत्पलादिभिः

ध्यात्वाऽर्कसंस्थमीशानं शिरस्याधाय चाऽञ्जलिम् ।
सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ३० ॥

रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चरितेन च । अन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शाम्भवैर्वेदसम्भवैः अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत्समायान्तं महामुनिम् । श्वेताश्वतरनामानं महापाशुपतोत्तमम्

भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम् ।
तपसा क (र्ष) यितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३३ ॥

समाप्य संस्तवं शम्भोरानन्दास्राविलेक्षणः । ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान्दृष्टो योगविदां वरः ॥ ३० ॥

अहो मे सुमहद्भाग्यं तपांसि सफलानि मे । किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयाऽनघ सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम् । शिष्यत्वे परिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम्

सान्न्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः ।
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितव्रतम् ॥ ३८ ॥

अशेषवेदसारं तत्पशुपाशविमोचनम् । अन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम् उवाच शिष्यान्सम्प्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ब्रह्मचर्यपरायणाः मया प्रवर्त्तितां शाखामधीत्यैवेह योगिनः । समासते महादेवं ध्यायन्तो विश्वमीश्वरम् इह देवो महादेवो रममाणः सहोमया । अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया

इहाऽशेषजगद्धाता पुरा नारायणः स्वयम् । आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया

इहैनं देवमीशानं देवानामपि दैवतम् । आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः

इहैव मुनयः सर्वे मरीच्याद्या महेश्वरम् । दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम्

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र तपोयोगसमन्वितः । तिष्ठ नित्यं मया सार्द्धं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि

एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् ।
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत्सर्वसिद्धये ॥ ४७ ॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारं विमुक्तिदम् । अग्निरित्यादिकं पुण्यं ऋषिभिः सम्प्रवर्त्तितम्

सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः ।
साक्षात्पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ४९ ॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधः सन्न्यासविधिमाश्रितः ॥ ५० ॥

हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम् । प्राचीनबर्हिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम्

प्राचीनबर्हिर्भगवान्सर्वशस्त्रभृतां वरः । समुद्रतनयायां वै दशपुत्रानजीजनत् ॥ ५२॥

प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः । अधीतवन्तः स्वं वेदं नारायणपरायणाः

दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः । दक्षो जज्ञे महाभागो यः पूर्वं ब्रह्मणः सुतः

स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता । कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत्

समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः । दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददौ स्वयम्

तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः ।
पूजामनर्हामन्विच्छञ्जगाम कुपितो गृहम् ॥ ५७ ॥

कदाचित्स्वगृहं प्राप्तां सतीं दक्षः सुदुर्मनाः । भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामास वै रुषा

अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्त्तुस्तव पिनाकिनः ।
त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद्गच्छ यथागतम् ॥ ५९ ॥

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवी शङ्करप्रिया । विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना

प्रणम्य पशुभर्त्तारं भर्त्तारं कृत्तिवाससम् । हिमवद्दुहिता साऽभूत्तत्तपसा तस्य तोषिता

ज्ञात्वा तां भगवान्रुद्र प्रपन्नार्त्तिहरो हर । शशाप दक्षं कुपित समागत्याथ तद्गृहम्
त्यक्त्वा देहमिमं ब्राह्म क्षत्रियाणां कुले भव ।
स्वस्यां सुतायां मूढात्मा पुत्रमुत्पादयिष्यसि ॥ ६२ ॥
एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलासपर्वतम् ।
स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्ष प्राचेतसोऽभवत् ।६३ ॥
एतद्व कथितं सर्वमनो स्वायम्भुवस्य ॥ । निसर्गं दक्षपर्यन्तं शृण्वतां पापनाशनम्
इति श्रीकूर्ममहापुराणे सप्तवंशानुकीर्तननाम चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्याय

दक्षयज्ञविध्वंसवर्णनम्

नैमिषेया ऊचु

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्ति विस्तरात्प्रोक्ता(?)वैवस्वतेऽन्तरे
स शप्त शम्भुना पूर्व दक्ष प्राचेतसो नृप ।
किमकार्षीं महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥१ ॥

सूत उवाच

वक्ष्ये नारायणेनोक्तं पूर्वकल्पानुषङ्गिकम् । त्रिकालबद्धं पापघ्नं प्रजासर्गस्य विस्तरम्
स शप्त शम्भुना पूर्व दक्ष प्राचेतसो नृप ।
विनिन्द्य पूर्ववरेण गङ्गाद्वारेऽ(ना)यजद्भवम् ॥ ४ ॥
देवाश्च सर्व भागार्थमाहूता विष्णुना सह । सहैव मुनिभि सर्वैरागता मुनिपुङ्गवा
दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्न शङ्करेण विना गतम् । दधीचो नाम विप्रर्षि प्राचेतसमथाब्रवीत्

दधीच उवाच

ब्रह्माद्यास्तु पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः ।
स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किन्न पूज्यते ॥ ७ ॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु नभागः परिकल्पितः । न मन्त्रा भार्यया सार्द्धं शङ्करस्येतिनेज्यते

विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः ।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयःस्वयम् ॥ ६ ॥

दधीच उवाच

यतःप्रवृत्तिर्विश्वात्मा यश्चासौ परमेश्वरः । सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वाकिन्नशङ्करः

दक्ष उवाच

नह्ययं शङ्करोरुद्रः संहर्त्ता तामसो हरः । नग्नः कपाली विदितो विश्वात्मानोपपद्यते
ईश्वरो हिजगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणोहरिः । सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यतेसर्वकर्मसु

दधीच उवाच

किंत्वया भगवानेष सहस्रांशुर्नदृश्यते । सर्वलोकैकसंहर्त्ता कालात्मा परमेश्वरः

यं गृणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः ।
सोऽयं साक्षी तीव्ररश्मिः कालात्मा शाङ्करी तनुः ॥ १४ ॥

एषरुद्रो महादेवः कपाली चघृणीहरः । आदित्योभगवान्सूर्यो नीलग्रीवोविलोहितः
संस्तूयतेसहस्रांशुः सामगाध्वर्यु होतृभिः । पश्यैनंविश्वकर्माणं रुद्रमूर्त्तिं त्र्यीमयम्

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः । सर्वेसूर्य्याइति ज्ञेयान ह्यन्यो विद्यतेरविः
एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः । वाढमित्यब्रुवन्दक्षं तस्य साहाय्यकारिणः
तमसाविष्टमनसो न पश्यन्तो वृषध्वजम् । सहस्रशोऽथशतशोबहुशोभूय एव हि
निन्दन्तोवैदिकान्मन्त्रान्सर्वभूतपतिंहरम् । अपूजयन्दक्षवाक्यंमोहिताविष्णुमायया
देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः । नापश्यन्देवमीशानमृते नारायणं हरिम्
हिरण्यगर्भो भगवान्ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वरः । पश्यतामेव सर्वेषां [illegible]

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम् । रक्षकं जगतां देवं जगाम शरणं स्वयम्
प्रवर्तयामास च ॥ यज्ञं दक्षोऽथ निर्भयः । रक्षको भगवान्विष्णुः शरणागतरक्षक

पुनः प्राह च ॥ दक्षं दधीचो भगवान्नृपि ।
संप्रेक्ष्यर्षिगणान्देवान्सर्वांश्चैव द्विजान् ॥ २५ ॥

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानाञ्चाप्यपूजने । नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः
असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानना । दण्डो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः
एवमुक्त्वाथ विप्रर्षिः शशापेश्वरविद्विषः । समागतान्ब्राह्मणांस्तान्दक्षसाहाय्यकारिणः
यस्माद्बहिष्कृतो वेदाद्भवद्भिः परमेश्वरः । विनिन्दितो महादेवः शङ्करो लोकवन्दितः

भविष्यन्ति त्रयीबाह्याः सर्वेऽपीश्वरविद्विषः ।
निन्दन्त्यैश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तचेतसः ॥ ३० ॥
मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः ।
प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजैः परिपीडिताः ॥ ३१ ॥
त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान्पुनः ।
भविष्यति हृषीकेशः स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुखः ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वाथ विप्रर्षिर्विरराम तपोनिधिः । जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम्
एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवं महेश्वरम् । पतिं पशुपतिं देवं ज्ञात्वैतत्प्राह सर्वदृक्

श्रीदेव्युवाच

दक्षो यजन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि । विनिन्द्य भवतो भावमात्मानं चापि शंकरः
देवानहर्षयच्चान्यांस्तत्रसाहाय्यकारिणः । विनाशयाऽऽशु तं यज्ञं वरमेतं वृणोम्यहम्
एवं विज्ञापितो देव्या देवदेवः परः प्रभुः । ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया
सहस्रशिरसं क्रुद्धं सहस्राक्षं महाभुजम् । सहस्रपाणिं दुर्धर्षं युगान्तानलसन्निभम्

दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रधरं प्रभुम् ।
दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम् ॥ ३६ ॥

वीरभद्र इति ख्यातं देवदेवसमन्वितम् । स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलिः

तमाह दक्षस्य मखं विनाशय शिवोऽस्तु ते । विनिन्द्य मां यजते गङ्गाद्वारे गणेश्वर
ततो बन्धप्रमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया । वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत्क्रतुः
मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी । तया च सार्द्धं वृषभं समारुह्य ययौ गणः
अन्येऽसहस्रशो रुद्रा निसृष्टास्तेन धीमता । रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहाय्यकारिणः
शूलशक्तिगदाहस्ता दण्डोपलकरास्तथा । कालाग्निरुद्रसङ्काशा नादयन्तो दिशो दश
सर्वे वृषभमारूढा सभार्यास्त्वतिभीषणाः । समावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखं प्रति
सर्वे सम्प्राप्य तं देशं गङ्गाद्वारमिति श्रुतम् । न ददृशुर्यज्ञदेशं ते दक्षस्यामिततेजसः
देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम् । वेणुवीणानिनादाढ्यं वेदवादाभिनादितम्

दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवैः समासीनं प्रजापतिम् ॥ ४९ ॥
उवाच स प्रियो रुद्रैर्वीरभद्रः स्मयन्निव ॥ ५० ॥

वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः ।
भागार्थं लिप्सया भागान् प्राप्ता यच्छध्वमीप्सितान् ॥ ५१ ॥
अथ चेत्कस्यचिदियं माया मुनिवरोत्तमाः ।
भागो भवद्भ्यो देयस्तु नाऽस्मभ्यमिति कथ्यताम् ॥ ५२ ॥

तस्याज्ञापयति यो वेत्स्यामो हि वयं ततः । एवमुक्त्वा गणेशेन प्रजापतिपुरःसराः

देवा ऊचुः

प्रमाणं वो न जानीमो भागे मन्त्रा इति प्रभुम् । मन्त्रा ऊचुः सुरा यूयं तमोपहतचेतसः
येनाध्वरस्य राजानं पूजयेयुर्महेश्वरम् । ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वदेवतनुर्हरः
पूज्यते सर्व यज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः । एवमुक्त्वा महेशानमायया नष्टचेतनाः
न मेनिरे ययुर्मन्त्रा देवान्मुक्त्वा स्वमालयम् । ततः स रुद्रो भगवान् सभार्यः सगणेश्वरः
स्पृशन् कराभ्यां विप्रर्षिं प्रोवाच प्राह देवहा । मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलदर्पितैः
यस्मात्प्रसह्य तस्माद्वो नाशयाम्यद्य गर्वितान् । इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुङ्गवः
गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः । प्रस्तोत्रा सह होत्रा च अश्वं चैव गणेश्वराः
गृहीत्वा भीषणाः सर्वे गङ्गास्रोतसि चिक्षिपुः ।

वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्यैवोद्यतं करम् ॥ ६१ ॥
व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम् । भगनेत्रे तथोत्पाट्य करजाग्रेण लीलया
निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत् । तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया
घर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः । वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया
जघान मूर्ध्नि पादेन मुनीनपि मुनीश्वराः । तथा विष्णुं सगरुडं समायान्तं महाबलः
विव्याध निशितैर्बाणैः स्तम्भयित्वा सुदर्शनम् । समालोक्य महाबाहुरागत्य गरुडो गणम्
जघान पक्षैः सहसा ननादाम्बुनिधिर्यथा । ततः सहस्रशो रुद्रः ससर्ज गरुडान् स्वयम्

वैनतेयादभ्यधिकान् गरुडं ते प्रदुद्रुवुः ।
तान्दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजवः ॥ ६८ ॥

विसृज्य माधवं वेगात्तदद्भुतमिवाभवत् । अन्तर्हिते वैनतेये भगवान् पद्मसम्भवः
आगत्य वारयामास वीरभद्रं च केशवम् । प्रसादयामास च तं गौरवात्परमेष्ठिनः
संस्तूय भगवानीशः शम्भुस्तत्रागमत्स्वयम् । वीक्ष्य देवाधिदेवं तं साम्बं सर्वगणैर्वृतम्
तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्षः सर्वे दिवौकसः । विशेषात्पार्वतीं देवीमीश्वरार्द्धशरीरिणीम्
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्य च कृताञ्जलिः । ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम्
प्रसन्नमनसा रुद्रं वचः प्राह घृणानिधिः । त्वमेव जगतः स्रष्टा शासिता चैव रक्षिता
अनुग्राह्यो भगवता दक्षश्चापि दिवौकसः । ततः प्रहस्य भगवान् कपर्दी नीललोहितः
उवाच प्रणतान्देवान् प्राचेतसमथो हरः । गच्छध्वं देवताः सर्वाः प्रसन्नो भवतामहम्
सम्पूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः । त्वञ्चापि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्

त्यक्त्वा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्नतः ।
भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम ॥ ७८ ॥

तावत्तिष्ठ ममादेशात्स्वाधिकारेषु निर्वृतः । एवमुक्त्वा तु भगवान्सपत्नीकः सहानुगः
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः । अन्तर्हिते महादेवे शङ्करे पद्मसम्भवः
व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम् ।

ब्रह्मोवाच

किञ्चायं भवतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे ॥ ८१ ॥
यदा त्वं स स्वयं देवः पालयेत्त्वामतन्द्रितः । सर्वेषामेव भूतानां हृद्येष परमेश्वरः ॥
पश्यन्ति यंब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः । स चात्मासर्वभूतानांसर्वीजं परमा गतिः
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः । तमर्च्चयन्ति ये रुद्रं स्वात्मना च सनातनम्
चेतसा भावयुक्तेन ते यान्ति परमं पदम् ।
तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम् ॥ ८५ ॥
कर्मणामनसावाचासमाराधययत्नतः । यत्नात्परिहरेशस्य निन्दांस्वात्मविनाशनीम्
भवन्तिसर्वदोषायनिन्दकस्यक्रिया हि ताः । यस्तुवैषमहायोगीरक्षकोविष्णुरव्ययः
सदेवो भगवान्रुद्रो महादेवोनसंशयः । मन्यन्ते ये जगद्योनिंविभिन्नंविष्णुमीश्वरात्
मोहादवेदनिष्ठत्वात्ते यान्ति नरकंनराः । वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजोभवन्ति ते । योविष्णुःसस्वयंरुद्रोयोरुद्रःसजनार्दनः
इति मत्वाभजेद्देवं स यातिपरमांगतिम् । सृजत्येषजगत्सर्वंविष्णुस्तत्पश्यतीश्वरः
इत्थं जगत्सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम् । तस्मात्त्यक्त्वाहरेर्निन्दांहरे चापिसमाहितः
समाश्रय महादेवं शरण्यं ब्रह्मवादिनाम् । उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्चस्य प्रजापतिः
जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्तिवाससम् । येऽन्येशापाग्निनिर्दग्धाःदधीचस्यमहर्षयः
द्विषन्तो मोहिता देवं सम्बभूवुः कलिष्वथ ।
त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसम्भवाः ॥ ९५ ॥
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मणो वचनादिह । मुक्तशापास्ततः सर्वेकल्पान्तेरौरवादिषु
निपात्यमानाःकालेनसम्प्राप्यादित्यवर्चसम् । ब्रह्माणंजगतामीशमनुज्ञाताःस्वयम्भुवा
समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम् । भविष्यन्ति यथापूर्वंशङ्करस्य प्रसादतः
एतद्वः कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम् । शृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासांचैव सन्ततिम्
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

दक्षकन्यावंशवर्णनम्

सूत उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयंभुवा। ससर्ज देवान्गन्धर्वानृषींश्चैवासुरोरगान्
यदास्य सृजतः पूर्वं न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः। तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव सर्वतः
असिक्न्यां जनयामास वीरणस्य प्रजापतेः। सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणां तु सहस्रकम्
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य तु। षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या वैरिण्यां वै प्रजापतिः
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते। द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वन्नामानि वक्ष्येऽथ विस्तरम्
अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती। सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी

धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासु पुत्रान्निबोधत।
विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यानजीजनत् ॥ ८ ॥

मरुत्वन्तो मरुत्वत्यां वसोस्तु वसवस्तथा। भानोस्तु भानवश्चैव मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः
लम्बायाश्चाथ घोषोऽथ नागवीथी तु यामिजा। पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत

सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः।
ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥ ११ ॥
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चाऽप्यनलोऽनिलः ॥ १२ ॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः।
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो ध्वनिस्तथा ॥ १३ ॥

ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालनः। सोमस्य भगवान्वर्चा धरस्य द्रविणः सुतः

मनोजवो नलस्यासीदविज्ञातगतिस्तथा।

कुमारो ह्यनिलस्यासीत्सेनापतिरिति स्मृतः ॥ १५ ॥

देवलो भगवान्योगी प्रत्यूषस्याऽभवत्सुतः ।

विश्वकर्म्मा प्रभासस्यशिल्पकर्त्ता प्रजापतिः ॥ १६ ॥

अदितिर्द्दितिर्द्दनुस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा । सुरभिर्विनता चैव ताम्राक्रोधवशात्विरा
कद्रुर्मुनिश्चधर्मज्ञातत्पुत्रान्वैनिबोधत । अंशो धाताभगस्त्वष्टामित्रोऽथवरुणोऽर्य्यमा
विवस्वान्सवितापूषाह्यंशुमान्विष्णुरेव च । तुषितानामतेपूर्व्वंचाक्षुषस्यान्तरेमनोः
वैवस्वतेऽन्तरेप्रोक्ताआदित्याश्चादितेःसुताः । दितिःपुत्रद्वयंलेभेकश्यपाद्बलगर्वितम्
हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथानुजम् । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो महाबलपराक्रमः

आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेश्वरम् ।

दृष्ट्वा लेभे वरान्दिव्यांस्तुत्वाऽसौ विविधैस्स्तवैः ॥ २२ ॥

अथ तस्यबलाद्देवासर्वएवमहर्षयः । बाधितास्ताडिताजग्मुर्द्देवदेवंपितामहम् ॥ २३ ॥
शरण्यं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम् । ब्रह्माणं लोककर्त्तारं त्रातारं पुरुषं परम्
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम् । स याचितो देववरैः मुनिभिश्च मुनीश्वराः
सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः । संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि ॥ २६ ॥
क्षीरोदस्योत्तरं कूलंयत्रास्तेहरिरीश्वरः । दृष्ट्वा देवंजगद्योनिंविष्णुंविश्वगुरुं शिवम्

ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभाषत ।

ब्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः ॥ २८ ॥

व्यापी सर्वामरवपुर्म्महायोगी सनातनः । त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानप्रकृतिः परा
वैराग्यैश्वर्यनिरतोवागतीतोनिरञ्जनः । त्वं कर्त्ताचैव भर्त्ता च विहन्ता च सुरद्विषाम्
त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्रातासि परमेश्वरः । इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणासम्प्रबोधितः

प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासाः सुरान्द्विजाः ।

किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः ॥ ३२ ॥

इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः ।

षोडशोऽध्यायः

दक्षकन्यावंशवर्णनम्

सूत उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा । ससर्ज देवान्गन्धर्वानृषींश्चैवासुरोरगान्
यदास्य सृजतः पूर्वं न व्यवर्द्धन्त ताः प्रजाः । तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव सर्वतः
असिक्न्यां जनयामास वीरणस्य प्रजापतेः । सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणां तु सहस्रकम्
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य तु । षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या वैरिण्यां वै प्रजापतिः
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते । द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम्
मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुन्धती । सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी

धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान्निबोधत ।
विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यानजीजनत् ॥ ८ ॥

मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा । भानोस्तु भानवश्चैव मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः
लम्बायाश्चाथ घोषोऽथ नागवीथी तु यामिजा । पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत

सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः ।
ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥ ११ ॥
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानलोऽनिलः ॥ १२ ॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो ध्वनिस्तथा ॥ १३ ॥

ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालनः । सोमस्य भगवान्वर्चा धरस्य द्रविणः सुतः

मनोजवो नलस्यासीदविज्ञातगतिस्तथा ।

पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं वली । स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन सहानुगः
अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणःप्रभुः । गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा
सञ्चिन्त्य मनसादेवःसर्व्वज्ञानमयोऽमलः । नरस्यार्द्धतनुं कृत्वासिंहस्यार्द्धतनुं तथा
नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे । आविर्बभूव सहसा मोहयन्दैत्यदानवान्
दंष्ट्राकरालोयोगात्मा युगान्तदहनोपमः । समारुह्याऽऽत्मनःशक्तिंसर्वसंहारकारिकाम्

भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रविः ।
दृष्ट्वा नृसिंहं पुरुषं प्रह्लादं ज्येष्ठपुत्रकम् ॥ ५७ ॥

वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः । इमं नृसिंहं पुरुषं पूर्वस्मादूनशक्तिकम् ॥
सहैव तेऽनुजैः सर्वैर्नाशयाऽऽशुमयेरितः । सतन्नियोगादसुरःप्रह्लादोविष्णुमव्ययम्
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः । ततः संमोहितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च । तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः
न हानिमकरोदस्त्रं तथा देवस्य शूलिनः । दृष्ट्वापराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात्
मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् । सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेनचेतसा

ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ।
स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसम्भवैः ॥ ६४ ॥

निवार्यपितरंभ्रातृन् हिरण्याक्षंतदाब्रवीत् । अयंनारायणोऽनन्तःशाश्वतो भगवानजः
पुराणःपुरुषोदेवो महायोगी जगन्मयः । अयंधाताविधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः
प्रधानं पुरुषं तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्यया । ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः ॥
गच्छध्वमेनंशरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम् । एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुःस्वयम्

प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ।
अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः ॥ ६९ ॥

समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदितः । विहस्य पितरं पुत्रो वचःप्राहमहामतिः
मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् । कथं देवो महादेवः शाश्वतःकालवर्जितः
कालेनहन्यतेविष्णुःकालात्मा [illegible]

देवा ऊचुः

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ॥ ३७ ॥
बाधते भगवन्दैत्यो देवान् सर्वान् सहर्षिभिः ।
अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तम ॥ ३८ ॥
हन्तुमर्हसि सर्वेषां त्राताऽसि त्वं जगन्मय । श्रुत्वा तद्दैवतैरुक्तं स विष्णुर्लोकभावनः
वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत्पुरुषं स्वयम् । मेरुपर्वतवर्ष्माणं घोररूपं भयानकम्
शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः । हत्वा तं दैत्यराजानं हिरण्यकशिपुं पुनः
इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमर्हसि पौरुषात् । निशम्य वैष्णवं वाक्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्
महापुरुषमव्यक्तं ययौ दैत्यमहापुरम् । विमुञ्चन् भैरवं नादं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ३९
आरुह्य गरुडं देवो महामेरुरिवापरः । आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम् ॥ ४०
समं च चक्रिरे नादं तदा दैत्यपतेर्भयात् ।

असुरा ऊचुः

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवनोदितः ॥ ४१ ॥
विमुञ्चन् भैरवं नादं तं जानीमो जनार्दनम् । ततः सहासुरवरैर्हिरण्यकशिपुः स्वयम्
सन्नद्धः सायुधैः पुत्रैः सम्मर्दैस्तदा ययौ । दृष्ट्वा तं गरुडारूढं सूर्यकोटिसमप्रभम्
पुरुषं पर्वताकारं नारायणमिवापरम् । दुद्रुवुः केचिदन्योन्यमूचुः सम्भ्रान्तलोचनाः
अयं स देवो देवानां गोप्ता नारायणो रिपुः । अस्माकमव्ययो नूनं तत्सुतो वा समागतः
इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि ससृजुः पुरुषाय ते । तानि चाशेषतो देवो नाशयामास लीलया
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः । पुत्रं नारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनिःस्वनाः
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च । प्रह्लादः प्राहिणोद् ब्राह्ममनुह्लादोऽथ वैष्णवम्
संह्लादश्चापि कौमारमाग्नेयं ह्लाद एव च ।
तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि वैष्णवम् ॥ ४६ ॥
न शक्नुवन्ति विष्णुं तं वासुदेवं यथानघम् । अथासौ चतुरः पुत्रान्महाबाहुर्महाबलः
प्रगृह्य पादेषु करैश्चिक्षेप च ननाद च । विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपुः स्वयम्

पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं वली । स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन सहानुगः
अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणःप्रभुः । गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा
सञ्चिन्त्य मनसादेवःसर्व्वज्ञानमयोऽमलः । नरस्यार्द्धतनुं कृत्वासिंहस्यार्द्धतनुं तथा
नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे । आविर्बभूव सहसा मोहयन्दैत्यदानवान्
दंष्ट्राकरालोयोगात्मा युगान्तदहनोपमः । समारुह्याऽऽत्मनःशक्तिसर्वसंहारकारिकाम्

भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रविः ।
दृष्ट्वा नृसिंहं पुरुषं प्रह्लादं ज्येष्ठपुत्रकम् ॥ ५७ ॥

वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः । इमं नृसिंहं पुरुषं पूर्वस्माद्न्नशक्तिकम् ॥
सहैव तेऽनुजैः सर्वैर्नाशयाऽऽशुमयेरितः । सतन्नियोगादसुरःप्रह्लादोविष्णुमव्ययम्
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्ज्जितः । ततः संमोहितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च । तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः
न हानिमकरोदस्त्रं तथा देवस्य शूलिनः । दृष्ट्वापराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात्
मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् । सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्वयुक्तेनचेतसा

ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ।
स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसम्भवैः ॥ ६४ ॥

निवार्यपितरंभ्रातॄन् हिरण्याक्षंतदाब्रवीत् । अयंनारायणोऽनन्तःशाश्वतो भगवानजः
पुराणःपुरुषोदेवो महायोगी जगन्मयः । अयंधाताविधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः
प्रधानं पुरुषं तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्यया । ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः ॥
गच्छध्वमेनंशरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम् । एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुःस्वयम्

प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ।
अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः ॥ ६६ ॥

समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदितः । विहस्य पितरं पुत्रो वचःप्राहमहामतिः
मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् । कथं देवो महादेवः शाश्वतःकालवर्ज्जितः
कालेनहन्यतेविष्णुःकालात्मा कालरूपधृक् । ततःसुवर्णकशिपुर्दुरात्माकालचोदितः

निवारितोऽपि पुत्रेण युयुधे हरिमव्ययम्। संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः। हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः
विसृज्य पुत्रं प्रह्लादं दुद्रुवे भयविह्वलः। अनुह्रादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः
नृसिंहदेहसम्भूतैः सिंहैर्नीता यमक्षयम्। ततः संहृत्य तद्रूपं हरिर्नारायणः प्रभुः॥
स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम्। गते नारायणे दैत्यः प्रह्लादोऽसुरसत्तमः
अभिषेकेण युक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत्। स बाधयामास सुरान् रणे जित्वा मुनीनपि

लब्ध्वाऽन्धकं महापुत्रं तपसाऽऽराध्य शङ्करम्।
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् क्षुब्ध्वा च धरणीमिमाम्॥ ७९॥

नीत्वा रसातलं चक्रे वेदान्वै निष्प्रभांस्तथा। ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः

गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम्।
स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्ययः॥ ८१॥

सर्वदेवमयं शुभ्रं वाराहं वपुरादधे। गत्वा हिरण्यनयनं हत्वा तं पुरुषोत्तमः॥

दंष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम्।
त्यक्त्वा वाराहसंस्थानं संस्थाप्य च सुरद्विषः॥ ८३॥

स्वामेव प्रकृतिं दिव्यां ययौ विष्णुः परं पदम्। तस्मिन्हतेऽमररिपौ प्रह्लादो विष्णुतत्परः
अपालयत्स्वकं राज्यं त्यक्त्वा भावमथासुरम्। यजते विधिवद्देवान्विष्णोराराधने रतः
निःसपत्नं तदा राज्यं तस्यासीद्विष्णुवैभवात्। ततः कदाचिदसुरो ब्राह्मणं गृहमागतम्
न च सम्भाषयामास देवानां चैव मायया। स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानितः
शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः। यद्बलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे॥

सा शक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाशं ते गमिष्यति।
इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद् द्विजः॥ ८९॥

मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात्ततः। बाधयामास विप्रेन्द्रान्न विवेद जनार्दनम्
पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरिं प्रति। तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥
नारायणस्य देवस्य प्रह्लादस्यामरद्विषः। कृत्वा स सुमहद्युद्धं विष्णुना तेन निर्जितः

पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात्परस्मिन्पुरुषे हरौ । सञ्जातं तस्य विज्ञानंशरण्यं शरणंययौ
ततः प्रभृतिदैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्वहन् । नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे ॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि । अवाप तन्महद्राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः ॥
हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्देहसमुद्भवः । मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम् ॥
पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः । ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः ॥ ९७ ॥
ततः कदाचिन्महतीकालयोगेनदुस्तरा । अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद्भूतविनाशिनी

समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम् ।
अयाचन्तः क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम् ॥ ९९ ॥

स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः । सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा ॥
गते च द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शङ्करी । बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत् ॥
ततः सर्वे मुनिवराः समामन्त्र्य परस्परम् । महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः

निवारयामास च तान् कञ्चित्कालं यथासुखम् ।
उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः ॥ १०३ ॥

ततोमायामयीं सृष्ट्वा कृष्णां गां सर्वएवते । समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्यमहात्मनः

सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः ।
गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा ॥ १०५ ॥

स शोकेनाभिसन्तप्तःकार्याकार्यंमहामुनिः । नपश्यतिस्मसहसा तमृषिंमुनयोऽब्रुवन्
गोवध्येयंद्विजश्रेष्ठ! यावत्तव शरीरगा । तावत्तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेवहि
तेनातोऽनुमताः सन्तो देवदारुवनंशुभम् । जग्मुः पापवशंनीत्वातपश्चर्तुं यथापुरा
सतेषांमाययाजातांगोवध्यांगौतमोमुनिः । केनापिहेतुनाज्ञात्वाशशापातीव कोपतः

भविष्यन्ति त्रयी बाह्या महापातकिभिः समाः ।
बहुशस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः ॥ ११० ॥

सर्वेसम्प्राप्यदेवेशंशङ्करंविष्णुमव्ययम् । अस्तुवन्लौकिकैःस्तोत्रैरुच्छिष्टाइवसर्वगौ
देवदेवौ महादेवौ भक्तानामर्तिनाशनौ । कामवृत्या महायोगौ पापान्नस्त्रातुमर्हतः

तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य वृषभध्वजः ।
किमेतेषां भवेत्कार्यं प्राह पुण्यैषिणामिति ॥ ११३ ॥

ततः स भगवान्विष्णुः शरण्यो भक्तवत्सलः । गोपतिं प्राह विप्रेन्द्रानालोक्य प्रणतान्हरिः
न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽपि शङ्कर । सङ्गच्छते महादेव धर्मो वेदाद्विनिर्बभौ ॥
तथापि भक्तवात्सल्याद्रक्षितव्या महेश्वर । अस्माभिः सर्व एवैते गन्तारो नरकानपि
तस्माद्धि वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम् । विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज
एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा । चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः
कापालं लाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम् । पञ्चरात्रं पाशुपतं तथाऽन्यानि सहस्रशः

सृष्ट्वा तानाह विप्रेन्द्रा कुर्वाणा शास्त्रचोदितम् ।
पतन्तो नरके घोरे बहून्कल्पान् पुनः पुनः ॥ १२० ॥

जायन्तो मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः । ईश्वराराधनबलाद्गच्छध्वं सुकृतां गतिम्
वर्तध्वं मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि वः । एवमीश्वरविष्णुभ्यां चोदितास्ते महर्षयः
आदेशं प्रत्यपद्यन्त शिवस्यासुरविद्विषः । चक्रुस्तेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रताः पुनः
शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वा फलानि च । मोहयन्त इमं लोकमवतीर्य महीतले ॥
चकार शङ्करो भिक्षां हितायैव द्विजैः सह । कपालमालाभरणः प्रेतभस्मावगुण्ठितः
विमोहयँल्लोकमिमं जटामण्डलमण्डितः । निक्षिप्य पार्वतीं देवीं विष्णावमिततेजसि
नियोज्य भगवान्रुद्रो भैरवं दुष्टनिग्रहे । दत्त्वा नारायणे देवे नन्दिनं कुलनन्दनम् ॥

संस्थाप्य तत्र च गणान्देवानिन्द्रपुरोगमान् ।
प्रस्थिते च महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम् ॥ १२८ ॥

स्त्रीरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम् । ब्रह्मा हुताशनः शक्रो यमोऽन्ये सुरपुङ्गवाः
सिषेविरे महादेवीं स्त्रीरूपं शोभनं गताः । नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवल्लभः
द्वारदेशे गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत । एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मतिः
आहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम् । सम्प्राप्तमन्धकं दृष्ट्वा शङ्करः कालभैरवः
व्यवधायद्भयात्मा कालरूपधरो हरः । तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥

शूलेनोरसि तं दैत्यमाजघान वृषध्वजः । ततः सहस्रशो दैत्या महास्त्राण्यथ शक्तिनः
नन्दिप्रभृतयो देवैः स्वैः स्वैरस्त्रैरभिनिर्जिताः । घण्टाकर्णो गजनादश्चण्डेशश्चण्डनायकः
विनायकोऽथ नन्दीशः सोमनन्दी च वीरकः । सर्वेऽन्धकं दैत्यवरं समभ्याप्य निरन्तराः
युयुधुः शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वधैः । आगमिष्या तु हन्तान्धं गर्भस्थान्परागे
दैत्येन्द्रेणाऽतिबलिना विनाशे गतयोजनम् । ततोऽन्धकनिकृष्टानां गोप्ताराः
कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवाभिद्रुद्रुवुः । हाहेति शब्दः सुमहान् बभूवाभिभयङ्करः ॥
युयुधे भैरवो देवः शूलमादाय भैरवम् । दृष्ट्वान्धकानां सुभटं दुर्जयं निर्जितो हरः ॥

जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ।
सोऽसृजद्भगवान्विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम् ॥ १४९ ॥

देवीपार्श्वस्थितो देवो विनाशायासुरद्विषाम् । तदान्धकसहस्रं तद्देवीभिर्यमसादनम्
नीतं केशवमाहात्म्यात्क्षणादेव रणाजिरे । दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्धकोऽपि महासुरः ॥
पराङ्मुखो रणात्तस्मात्पलायत महाजवः । ततः क्रीडां महादेवः कृत्वा हाऽन्धकार्यनिर्जयम्
हिताय सर्वलोकानामाजगामाथ मन्दरम् । सम्प्राप्तमीश्वरं ज्ञात्वा सर्व एव गणेश्वराः
समागम्योपतिष्ठन्त भानुमन्तमिव द्विजाः । प्रविश्य भवनं पुण्यमयुक्तानां सुदुर्लभम्
ददर्श नन्दिनं देवं भैरवं केशवं शिवः । प्रणामप्रवणं देवं सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम् ॥
प्रीत्यैनं पूर्वमीशानः केशवं परिषस्वजे । दृष्ट्वा देवो महादेवीं प्रीतिविस्फारितेक्षणाम्
प्रणतः शिरसा तस्याः पादयोर्भैरवस्य च । स्वयं च जगन्नाथं शङ्करायाथ शङ्करः

भैरवो विष्णुमाहात्म्यं प्रतीतः पार्श्वगोऽभवत् ।
श्रुत्वा तं विजयं शम्भुर्विक्रमं केशवस्य च ॥ १५० ॥

५ समास्ते भगवानीशो देव्या सह वरासने । ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः
आजग्मुर्मन्दरं द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् । येन तद्विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम्
समागतं दैत्यसैन्यमीशदर्शनकाङ्क्षया । दृष्ट्वा वरासनासीनं देव्या चन्द्रविभूषणम्
प्रणेमुरादराद्देवा गायन्ति स्मातिलालसाः । प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपार्श्वे पिनाकिनः
देवासनगतां देवीं नारायणमनोमयीम् । दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्यो नारायणं तथा

प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यौ वराङ्गना ।

कन्या ऊचुः

कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयं बाला रविप्रभा ॥ १५९ ॥
को न्वयम्भाति वपुषा पङ्कजायतलोचन । निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहन
व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्ययः । अयं नारायणो गौरी जगन्माता सनातन
विभज्य संस्थितो देव स्वात्मानं बहुधेश्वर । न मे विदुः परं तत्त्वं देवाद्या न महर्षय

एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च ।
अहं हि निस्पृहः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः ॥ १६० ॥

मामेव केशवं प्राहुर्लक्ष्मीं देवीमथाम्बिकाम् । एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च
कर्त्ता कारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः । भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्त्ता कालरूपधृक्

स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायणोऽव्ययः ॥ १६३ ॥

तारकं पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम् । सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना
शान्ता सत्या सदानन्दा परमं पदमिति श्रुतिः । अस्यां सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः । तयाऽहं सङ्गतो देव्या केवलो निष्कलः पर
पश्याम्यशेषमेवेदं परमात्मानमव्ययम् । तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम्

एकमेव विजानीथ ततो यास्यथ निर्वृतिम् ।
मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयान्विताः ॥ १६८ ॥

ये भिन्नदृष्ट्या ईशानं पूजयन्तोऽनतिप्रियाः । द्विषन्ति ये जगत्सूतिं मोहिता रौरवादिषु
पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि । तस्मादशेषभूतानां रक्षको विष्णुरव्ययः
यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः । श्रुत्वा भगवतो वाक्यं देवाः सर्वेऽपि विस्मयाः
नेमुर्नारायणं देवं देवीं च हिमशैलजाम् । प्रार्थयामासुरीशाने भक्तिं भक्तजनप्रिये
भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे । ततो नारायणं देवं गणेशाः मातरोऽपि च ॥
न पश्यन्ति जगत्सूतिं तदद्भुतमिवाभवत् । तदन्तरे महादेवो [illegible]

मोहितो गिरिजां देवीमाहर्त्तुं गिरिमाययौ ।

अथानन्तवपुः श्रीमान्योगी नारायणोऽमलः । तत्रैवाविरभूद्दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तमः

कृत्वाऽथ पार्श्वे भगवन्तमीशो युद्धाय विष्णुं गणदेवमुख्यैः ।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः स कालरुद्रोऽपि जगाम देवः ॥ १७६ ॥
त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात् ।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः ॥ १७७ ॥
रराज मध्ये भगवान् सुराणां विवाहनो वारिजपर्णवर्णः ।
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढस्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः ॥ १७८ ॥
जयत्वनादिर्भगवानमेयो हरः सहस्राकृतिराविरासीत् ।
त्रिशूलपाणिर्गगने सुघोषः पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः ॥ १७९ ॥
समागतं वीक्ष्य गणेशराजं समावृतं दैत्यरिपुं गणेशैः ।
युयोध शक्रेण समातृकाभिर्गणैरशेषैरमरप्रधानैः ॥ १८० ॥
विजित्य सर्वानपिबाहुवीर्यात्स संयुगे शम्भुरनन्तधामा ।
समाययौ यत्र स कालरुद्रो विमानमारुह्य विहीनसत्त्वः ॥ १८१ ॥

दृष्ट्वान्धकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः । व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम्

हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धकं लोककण्टकम् ।
त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते ॥ १८३ ॥
त्वं हर्त्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः ।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्भिर्विचक्षणैः ॥ १८४ ॥

स वासुदेवस्यवचोनिशम्यभगवान् हरः । निरीक्ष्यविष्णुं हननेदैत्येन्द्रस्यमतिन्दधौ
जगाम देवतानीकं गणानां हर्षवर्द्धनम् । स्तुवन्ति भैरवन्देवमन्तरीक्षचरा जनाः ॥
जयानन्त महादेव कालमूर्त्ते सनातन । त्वमग्निः सर्वभावानामन्तस्तिष्ठसि सर्वगः
त्वमन्तको लोककर्ता त्वन्धाताहरिरव्ययः । त्वंब्रह्मात्वंमहादेवस्त्वन्धामपरमं पदम्
ओङ्कारमूर्त्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः । महाविभूतिर्विश्वेशो जयानन्तजगत्पते

तत्र कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वाऽन्धकमीश्वरः ।
त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त सताङ्गतिः ॥ १९० ॥
दृष्ट्वान्धकन्देवगणाः शूलप्रोतं पितामहः । प्रणेमुरीश्वरन्देवम्भैरवम्भवमोचनम् ॥ १९१ ॥
अस्तुवन्मुनयः सिद्धा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । अन्तरीक्षेऽप्सरःसङ्घान्नृत्यन्ति स्म मनोहरा
संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्बिषः ।
उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १९३ ॥

अन्धक उवाच

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं समाहिता यं विदुरीश तत्त्वम् ।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं कालं कविं योगवियोगहेतुम् ॥ १९४ ॥
दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् ।
सहस्रपादाक्षिशिरोभियुक्तं भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम् ॥ १९५ ॥
जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे विभागहीनामलतत्त्वरूप ।
त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यो वाय्वादिभेदैरखिलात्मरूप ॥ १९६ ॥
त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं त्वमन्तको योगिगणानुजुष्ट ॥ १९७ ॥
एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः ।
त्वमात्मतत्त्वं परमात्मशब्दं भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् ॥ १९८ ॥
त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूपं प्रणवाभिधानम् ।
त्वमीश्वरो वेदविदां प्रसिद्धः स्वायम्भुवोऽशेषविशेषहीनः ॥ १९९ ॥
त्वमिन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हंसः प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञः ।
प्रजापतिर्भगवानेकरूपो नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्भिः ॥ २०० ॥
नारायणस्त्वं जगतामनादिः पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च ।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ २०१ ॥
नमः परस्मै तमसः परस्मात्परात्मने पञ्चनवान्तराय ।

त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥ २०२ ॥
त्रिमूर्त्तयेऽनन्तपदात्ममूर्त्ते जगन्निवासाय जगन्मयाय ।
नमो जनानां हृदि संस्थिताय फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥ २०३॥
मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्मऐश्वर्य्यधर्म्मासनसंस्थिताय ।
नमः परान्ताय भवोद्भवाय सहस्रचन्द्रार्कसहस्रमूर्त्ते ॥ २०४ ॥
नमोऽस्तु सोमाय सुमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यबाहो !।
नमोऽग्निचन्द्रार्कविलोचनाय नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय ॥ २०५ ॥
नमोऽस्तु गुह्याय गुहान्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ॥ २०६ ॥
एवं स्तुतः स भगवान् शूलाग्रादवतार्य तम् ।
तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा च परमेश्वरः ॥ २०७ ॥
प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेनसाम्प्रतम् । सम्प्राप्यगाणपत्यंमेसन्निधानेसदावस
अरोगश्छिन्नसन्देहो देवैरपि सुपूजितः । नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः ॥
एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः । गणेश्वरं महादैत्यमन्धकं देवसन्निधौ ॥ २१०
सहस्रसूर्य्यसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिह्नितम् । नीलकण्ठं जटामौलिंशूलासक्तं महाकरम्
दृष्ट्वातन्तुष्टुवुर्दैत्यमाश्चर्यं परमङ्गताः । उवाच भगवान्विष्णुर्देवदेवं स्मयन्निव ॥२१२
स्थानेतवमहादेव प्रभावः पुरुषो महान् । नेक्षतेज्ञातिजान् दोषान् गृह्णातिचगुणानपि
इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवः सकेशवःसहान्धकोजगामशङ्करान्तिकम्
निरीक्ष्यदेवमागतं सशङ्करःसहान्धकम् समाधवं समातृकं जगामनिर्वृतिहरः ॥
प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजं जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा
विलोक्यसासमागतं पतिम्भवार्तिहारिणम् उवाच सान्धकंसुखंप्रसादमन्धकम्प्रति
अथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगां पपात दण्डवत्क्षितौ ननामपादपद्मयोः
नमामि देववल्लभानादिमद्रिजामिमां यतः प्रधानपूरुषौ निहन्ति याऽखिलञ्जगत्
विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया ।

हिरण्मयेऽतिनिर्म्मले नमामि तां हिमाद्रिजाम् ॥
यदन्तराखिलं जगज्जगन्ति यान्ति संक्षयं,
नमामि यत्र तामुमामशेषदोषवर्जिताम् ॥ २१७ ॥
॥ जायते महीयते नवज्ञंतेचतामुमां नमामि तां गुणातिगां गिरीशपुत्रिकामिमाम्
क्षमस्व देवि शैलजे कृतं मया विमोहितं सुरासुरैर्नमस्कृते नमामि ते पदाम्बुजम्
इत्थं भगवती देवी भक्तिनम्रेण पार्वती । संस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वेजगृहेऽन्धकम्
तत स मातृभि सार्द्धं भैरवोरुद्रसम्भव । जगाम त्वाज्ञयाशम्भो पाताल परमेश्वर
यत्र सा तामसी विष्णोमूर्त्ति संहारकारिका ।
समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वर ॥ २२१ ॥
ततोऽनन्ताकृति शम्भु शेषेणापि सुपूजित ।
कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजाऽऽत्मानमात्मनि ॥ २२२ ॥
युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वापवाध मातर । बुभुक्षिता महादेव प्रणम्याहुस्त्रिलोचनम्
मातर ऊचु
बुभुक्षितामहादेव त्वमनुज्ञातुमर्हसि । त्रैलोक्य भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्तिन
एतावदुक्त्वा वचनंमातरो विष्णुसम्भवा । भक्षयाञ्चक्रिरे सर्वे त्रैलोक्यंसचराचरम्
तत स भैरवो देवो नृसिंहवपुर्ष हरिम् । दध्यौनारायणं देव प्रणम्य च कृताञ्जलि
उमेशचिन्तित ज्ञात्वा क्षणात्प्रादुरभूद्धरि । विज्ञापयामास च त भक्षयन्तीह मातर
निवारयाशु त्रैलोक्य त्वदीयाभगवन्निति । संस्मृता विष्णुनादेव्योनृसिंहवपुषापुन
उपतस्थुर्महादेव नरसिंहाकृति तत ॥ २२८ ॥
सम्प्राप्य सन्निधि विष्णो सर्वा संहारकारिका ।
प्रददु शम्भवे शक्ति भैरवायाऽतितेजसे ॥ २२९ ॥
अपश्यन्ता जगन्मूर्ति नृसिंहमतिभैरवम् । क्षणादेकत्वमापन्न दोषाश्चापि मातर
व्याजहार हरिर्विशोये भक्ता शूलपाणये । येच मां संस्मरन्तीह पार्वतीया प्रयत्नत
मर्मैव मूर्त्तिरतुला सर्वसंहारकारिका । महेश्वराङ्गसम्भूता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥

अनन्तोभगवान् कालो द्विधावस्थाममैव तु । तामसी राजसी मूर्त्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः
सोऽहं देवो दुराधर्षः कालोलोकप्रकालनः ।
भक्षयिष्यामि कल्पान्ते रौद्रेण निखिलं जगत् ॥ २३४ ॥
या सा विमोहिनी मूर्त्तिर्मम नारायणाह्वया ।
सत्त्वोद्रिक्ता जगत्सर्वं संस्थापयति नित्यदा ॥ २३५ ॥
स विष्णुः परमं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः । मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देतिकथ्यते
इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विष्णुमातरः । प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं परम्
एतद्वः कथितं सर्वं मयान्धकनिषूदनम् । माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे दक्षकन्यावंशानुकार्त्तनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

त्रिविक्रमचरितवर्णनम्

सूत उवाच

अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मनः । विरोचनो नाम बली बभूव नृपतिःसुतः
देवाञ्जित्वासदेवेन्द्रान् बहून्वर्षान्महासुरः । पालयामास धर्म्मेणत्रैलोक्यंसचराचरम्
तस्यैवंवर्त्तमानस्य कदाचिद्विष्णुचोदितः । सनत्कुमारो भगवान् पुरंप्रापमहामुनिः
गत्वा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः । ननामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरोत्तमम् ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान्यतोऽसौ ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ५ ॥
किमर्थमागतोब्रह्मन् स्वयंदेवः पितामहः । ब्रूहिमेब्रह्मणःपुत्र किंकार्य्यं करवाण्यहम्
सोऽब्रवीद्भगवान्देवो धर्मयुक्तं महासुरम् । द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तंभाग्यवानसि
सुदुर्लभानीतिरेषा दैत्यानां दैत्यसत्तम । त्रिलोकेधार्मिकोनूनंत्वादृशोऽन्योनविद्यते

इत्युक्तोऽसुरराजोऽसौ पुनः प्राह महामुनिम् । धर्माणां परमं धर्मं ब्रूहि मे ब्रह्मवित्तम
सोऽब्रवीद्भगवान्योगी दैत्येन्द्राय महात्मने । सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम् ॥

सलब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।
निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ११ ॥
स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुरः ।
ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरन्दरम् ॥ १२ ॥

कृत्वा तेन महद्युद्धं शक्रः सर्वामरैर्वृतः । जगाम निर्जितो विष्णुं देवं शरणमच्युतम्

तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता ।
दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम् ॥ १४ ॥

तताप सुमहाघोरं तपोराशिं ततः परम् । प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम्
कृत्वा हृत्पद्मकिञ्जल्के निष्कलं परमं पदम् । वासुदेवमनाद्यन्तं मामनन्द्यौमकेवलम्
प्रसन्नो भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः । आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः
दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता । मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम्

अदितिरुवाच

जयाऽशेषदुःखौघनाशैकहेतो ! जयानन्त ! माहात्म्ययोगाभियुक्त !।
जयाऽनादिमध्यान्तविज्ञानमूर्त्ते ! जयाऽऽकाशकल्पामलानन्दरूप !॥ १६ ॥
नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं नमो नारसिंहाय शर्वाय तुभ्यम् ।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते ॥ २० ॥
नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम् ।
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते ॥ २१ ॥
नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्त्ते नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य !।
नमो भूधरायाऽप्रमेयाय तुभ्यं प्रभो ! विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते ॥ २२ ॥
नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम् ।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥ २३ ॥

एवं स भगवान् विष्णुर्देवमात्रा जगन्मयः । तोषितश्छन्दयामास वरेण प्रहसन्निव
प्रणम्य शिरसा भूमौ सा चक्रे वरमुत्तमम् । त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम्
तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः । दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततो बहुतिथे काले भगवन्तं जनार्दनम् । दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम्
समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम् । उत्पाता जज्ञिरे घोरा बलेर्वैरोचनेः पुरे ॥२८॥
निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान्दैत्येन्द्रो भयविह्वलः । प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम्

बलिरुवाच

पितामह महाप्राज्ञ जायतेऽस्मिन्पुरान्तरे । किमुत्पातो भवेत्कार्यमस्माकं किं निमित्तकः
निशम्य तस्य वचनञ्चिरं ध्यात्वा महासुरः । नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्

प्रह्लाद उवाच

यो यज्ञैरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिदञ्जगत् । दधारासुरनाशार्थं माता तं त्रिदिवौकसाम्
यस्मादभिन्नं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि ।
स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत् ॥ ३३ ॥
न यस्य देवा जानन्ति स्वरूपं परमार्थतः । स विष्णुरदितेर्देहं स्वेच्छयाद्य समाविशत्
यस्माद्भवन्ति भूतानि यत्र संयान्ति संक्षयम् । सोऽवतीर्णो महायोगी पुराणपुरुषो हरिः
न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना । सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेन जायते
यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी ।
माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्दनः ॥ ३७ ॥
यस्य सा तामसी मूर्त्तिः शङ्करो राजसी तनुः । ब्रह्मा सञ्जायते विष्णुरंशेनैकेन सत्त्वधृक्
इति सञ्चिन्त्य गोविन्दं भक्तिनम्रेण चेतसा । तमेव गच्छ शरणं ततो यास्यसि निर्वृतिम्
ततः प्रह्लादवचनाद्बलिर्वैरोचनिर्हरिम् । जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मवित् ॥
काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्द्धनम् । असूत कश्यपाच्चैनं देवमाता दितिः स्वयम्
चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम्
उपतस्थुः सुराः सर्वे सिद्धाः साध्याश्च चारणाः । उपेन्द्र इन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चर्षिगणैर्वृतः

कृत्वोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः । समाचारं भरद्वाजात्त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥
एवं च लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

ततः कालेन मतिमान् बलिर्वैरोचनिः स्वयम् ।
यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्चयामास सर्वगम् ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणान्पूजयामास दत्त्वा बहुतरं धनम् । ब्रह्मर्षयः समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः ॥

विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदितः ।
आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत् ॥ ४८ ॥

कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेन विराजितः । ब्राह्मणो जटिलो वेदानुद्गिरन्सुमहाध्वनिः

संप्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः ।
स्वपदत्र्या क्रमितं देशमयाचत बलिं त्रिभिः ॥ ५० ॥

प्रक्षाल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वितः ।
आचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

दास्ये तवेदं भवते पदत्रयं प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः ।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे निपातयामास सुशीतलं जलम् ॥ ५२ ॥

विचक्रमे पृथिवीमेष चैतामथान्तरिक्षं दिवमादिदेवः ।
व्यपेतरागं दितिजेश्वरं तं प्रकर्तुकामः शरणं प्रपन्नम् ॥ ५३ ॥

आक्रम्य लोकत्रयमीशपादः प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकं जगाम ।
प्रणेमुरादित्यमुख्याः सुरेन्द्रा ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः ॥ ५४ ॥

अथोपतस्थे भगवाननादिः पितामहस्तोषयामास विष्णुम् ।
भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं जगाम दिव्यावरणोऽथ भूयः ॥ ५५ ॥

अथाण्डभेदान्निपपात शीतलं महाजलं पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम् ।
प्रवर्तिता चापि सरिद्वरा सा गङ्गेत्युक्त्वा ब्रह्मणा व्योमसंस्था ॥ ५६ ॥

गत्वा महान्तं प्रकृतिं ब्रह्मयोनिं ब्रह्माणमेकं पुरुषं विश्वयोनिम् ।
अतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तुवन्ति ॥ ५७ ॥

आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं महान् वलिर्भक्तियोगेन विष्णुम् ।
ननाम नारायणमेकमव्ययं स्वचेतसा यं प्रणमन्ति वेदाः ॥ ५८
तमब्रवीद्भगवानादिकर्त्ता भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः ।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं लोकत्रयं भवता भावदत्तम् ॥ ५६ ॥
प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो निपातयामास जलं कराग्रे ।
दास्ये तवाऽऽत्मानमनन्तधाम्ने त्रिविक्रमायाऽमितविक्रमाय ॥ ६० ॥
प्रगृह्य सूनोरपि सम्प्रदत्तं प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणिः ।
जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा पातालमूलं प्रविशेति भूयः ॥ ६१ ॥
समास्यतां भवता तत्र नित्यं भुक्त्वा भोगान्देवतानामलभ्यान् ।
ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम् ॥ ६२ ॥
उक्त्वैवं दैत्यसिंहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः । पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददौजिष्णुरुरुक्रमः
संस्तुवन्तिमहायोगंसिद्धा देवर्षिकिन्नराः । ब्रह्माशक्रोऽथ भगवान्रुद्रादित्यमरुद्गणाः
कृत्वैतदद्भुतं कर्म विष्णुर्वामनरूपभृक् । पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥
सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान्पातालं प्राप नोदितः । प्रह्लादेनासुरवरैर्विष्णुभक्तस्तु तत्परः
अपृच्छद्विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम् । पूजाविधानंप्रह्लादं तदाहासौचकारसः
अथ रथचरणं सशङ्खपाणिं सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम् ।
शरणमुपययौ स भावयोगात्प्रणयगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम् ॥ ६८ ॥
एष वः कथितोविप्रा वामनस्यपराक्रमः । स देवकार्य्याणिसदा करोति पुरुषोत्तमः
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे त्रिविक्रमचरितवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्याय

कश्यपवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

बले पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम् । तेषां प्रधानो द्युतिमान्बाणो नाममहाबल

सोऽतीव शङ्करे भक्तो राजा राज्यमपालयत् ।
त्रैलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम् ॥ २ ॥
तत शक्रादयो देवा गत्वोचु कृत्तिवाससम् ।
त्वदीयो बाधते ह्यस्मान्बाणो नाम महासुर ॥ ३ ॥

व्याहृतो दैवतै सर्वैर्देवदेवो महेश्वर । ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया ।
दह्यमाने पुरे तस्मिन्बाणो रुद्रं त्रिशूलिनम् । ययौ शरणमीशानं गोपतिं नीललोहितम्
मूर्ध्न्याधाय तल्लिङ्गं शाम्भवं भयवर्जित । निर्गत्य तु पुरात्तस्मात्तुष्टाव परमेश्वरम्
संस्तुतो भगवानीश शङ्करो नीललोहित । गाणपत्येन बाणं तं योजयामास भावत
अथैवं दनो पुत्रास्तारकाद्या ह्यतिभीषणा । तारस्तथा शम्बरश्च कपिल शङ्करस्तथा

स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिता ॥ ८ ॥

सुरसाया सहस्रं तु सर्पाणामभवद्द्विजा । अनेकशिरसा तद्वत्खेचराणां महात्मनाम्
अरिष्टाजनयामास गन्धर्वाणां सहस्रकम् । अनन्ताद्या महानागा काद्रवेया प्रकीर्तिता

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुङ्गवा ।
शुकीं श्येनीं च भासीं च सुग्रीवां गृध्रिकां शुचिम् ॥ ११ ॥

गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा । इरा वृक्षलतावल्लीतृणजातीश्च सर्वश
खसा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा । रक्षोगणं क्रोधवशाजनयामास सत्तमा

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ ।
तयोश्च गरुडो धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ॥

प्रसादाच्छूलिनः प्राप्तो वाहनत्वं हरेः स्वयम् ॥ १४ ॥
आराध्य तपसा देवं महादेवं तथाऽरुणः। सारथ्येकल्पितःपूर्वं प्रीतेनार्कस्य शम्भुना
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वतां पापनाशनम् ॥ १६ ॥
सप्तविंशसुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्याश्चसुव्रताः । अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानां ह्यनेकशः
वहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः । तद्वदंगिरसः श्रेष्ठा ऋषयो ब्रह्मसत्कृताः
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवः प्रहरणः सुतः ।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥
मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यकार्य्यैः स्वनामभिः ॥ १६ ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे कश्यपवंशानुकीर्त्तनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ऋषिवंशकथनम्

सूत उवाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात् । कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत्तपः
तस्यैवन्तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौसुताविमौ । वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्चसुमहायशाः । रैभ्यस्य जज्ञिरेशूद्राःपुत्राः श्रुतिमतांवराः
च्यवनस्य सुता भार्या नैध्रुवस्य महात्मनः ।
सुमेधा जनयामास पुत्रान्वै कुण्डपायिनः ॥ ४ ॥
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत । नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः
शाण्डिल्यः परमः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थविच्छुचिः ।
प्रसादात्पार्वतीशस्य योगमुत्तमवाप्तवान् ॥ ६ ॥

शाण्डिल्यो नैध्रुवो रैभ्य त्रय पुत्रास्तु काश्यपाः ।
नरप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि व ॥ ७ ॥
तृणबिन्दोः सुता विप्रा नाम्ना त्वैलविला स्मृता ।
पुलस्त्याय तु राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ॥ ८ ॥
ऋषिस्त्वैलविलस्तस्यां विश्रवा समपद्यत ।
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धिकाः ॥ ९ ॥

पुष्पोत्कटा च वाका च कैकसी देववर्णिनी । रूपलावण्यसम्पन्नास्तासां श्रृणुत प्रजाः
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी । कैकस्यजनयत्पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम्
कुम्भकर्णं शूर्पणखां तथैव च विभीषणम् । पुष्पोत्कटाप्यजनयत्पुत्रान् विश्रवसः शुभान्
महोदरं प्रहस्तञ्च महापार्श्वं खरं तथा । कुम्भीनसीं तथा कन्यां वाका याः शृणुत प्रजाः

त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबलः ।
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश ॥
सर्वे तपोबलोत्कृष्टा रुद्रभक्ताः सुभीषणाः ॥ १४ ॥

पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः । भूताः पिशाचाः सर्पाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे । मरीचेः कश्यपः पुत्रः स्वयमेव प्रजापतिः
भृगोरथाभवच्छुक्रो दैत्याचार्यो महातपाः । स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युतिः
अत्रेः पुत्रोऽभवद्वह्निः सोऽपश्यत्तस्य नाभव । इत्यात्वस्यत्रृषिवरो पुत्रोऽस्याभिरितिः श्रुतम्

स तस्याजनयामास स्वस्त्यात्रेयान् महौजसः ।
वेदवेदाङ्गनिरतांस्तपसा हतकिल्बिषान् ॥ १६ ॥

नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ देवीमरुन्धतीम् । ऊर्ध्वरेतास्तु तत्रैव शापाद्दक्षस्य नारदः
हर्यश्वेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु । शशाप नारदं दक्षः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २१ ॥
यस्मान्मम सुताः सर्वे भवतो मायया द्विज । क्षयं नीतास्त्वशेषेण निरपत्यो भविष्यति

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम् ।
शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्वज्ञस्तपतां वरः ॥ २३ ॥

सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रजाः कमलोद्भवम् । इक्ष्वाकोश्चाभवद्वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिव

ज्येष्ठपुत्रः स तस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुताः ।
तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत्काकुत्स्थस्तु सुयोधनः ॥ ११ ॥
सुयोधनात्पृथुः श्रीमान्विश्वकश्च पृथोः सुतः ।
विश्वकादार्द्रको धीमान्युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १२ ॥

स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान् । दृष्ट्वाऽसौ गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम्

प्रणम्य दण्डवद् भूमौ पुत्रकामो महीपतिः ।
अपृच्छत्कर्मणा येन धार्मिकः प्राप्नुयात्सुतम् ॥ १४ ॥

गौतम उवाच

आराध्य पुरुषं पूर्वं नारायणमनामयम् । अनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम्

तस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः ।
तमादिकृष्णमीशानमाराध्याऽऽप्नोति सत्सुतम् ॥ १६ ॥

न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः । तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम्
स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वो महीपतिः । आराधयत् हृषीकेशं वासुदेवं सनातनम्

तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः श्रावस्तिरिति विश्रुतः ।
निर्मिता येन श्रावस्ती गौडदेशे महापुरी ॥ १९ ॥

तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत्तस्मात्कुवलयाश्वकः । धुन्धुमार इति ख्यातो धुन्धुं हत्वा महासुरम्
धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्ता द्विजोत्तमाः । दृढाश्वश्चैव दण्डाश्च कपिलाश्वस्तथैव च

दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात्संहताश्वकः ॥ २२ ॥

कृशाश्वोऽथ रणाश्वश्च संहताश्वस्य वै सुतौ । युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि

कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः ।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम् ॥ २५ ॥

मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च पार्थिव

मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा सर्वशक्रसमायुधि । अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः

हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः ॥ २७ ॥
नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तत्सुतः स्मृतः ।
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत्ततः ॥
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥ २८ ॥

सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः । प्रसादाद्धार्मिकं पुत्रं लेभे सूर्यपरायणम्

सतु सूर्यं समभ्यर्च्य राजा वसुमनाः शुभम् । लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिन्दमम्

अयजच्चाश्वमेधेन शत्रूञ्जित्वा द्विजोत्तमाः ॥
स्वाध्यायवान्दानशीलस्तितीर्षुर्धर्मतत्परः ॥ ३१ ॥

ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः । वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥

तान्प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः ।
समाप्य विधिवद्यज्ञं वसिष्ठादीन्द्विजोत्तमान् ॥ ३३ ॥

वसुमना उवाच

किंस्विच्छ्रेयस्करतरं लोकेऽस्मिन्ब्राह्मणर्षभाः । यज्ञस्तपो वा सन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान्विधिवत्सुतांश्चोत्पादयत्ततः । इष्ट्वा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद्वनमथात्मवान्

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनम्परमेश्वरम् । प्रव्रजेद्विधिवद्यज्ञैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान् ॥

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणम्परमेश्वरम् । तमाराध्य सहस्रांशुं तपसो मोक्षमाप्नुयात् ॥

जमदग्निरुवाच

अजो विश्वस्य कर्त्ता यो जगद्बीजं सनातनः । अन्तर्यामी च भूतानां स देवस्तपसेज्यते

विश्वामित्र उवाच

सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्ना कमलोद्भवम् । इक्ष्वाकोश्चाभवद्वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिव

ज्येष्ठपुत्र स तस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुता ।

तेषां ज्येष्ठ ककुत्स्थोऽभूत्काकुत्स्थस्तु सुयोधन ॥ ११ ॥

सुयोधनात्पृथु श्रीमान्विश्वकश्च पृथो सुत ।

विश्वकादार्द्रको धीमान्युवनाश्वश्च तत्सुत ॥ १२ ॥

स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्व प्रतापवान् । दृष्ट्वाऽसौ गौतम विप्र तपन्तमनलप्रभम्

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ पुत्रकामो महीपति ।

अपृच्छत्कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम् ॥ १४ ॥

गौतम उवाच

आराध्य पुरुष पूर्वं नारायणमनामयम् । अनादिनिधन देवं धार्मिक प्राप्नुयात्सुतम्

तस्य पुत्र स्वयं ब्रह्मा पौत्र स्यान्नीललोहित ।

तमादिकृष्णमीशानमाराध्याऽऽप्नोति सत्सुतम् ॥ १६ ॥

न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभाव वेत्ति तत्त्वत । तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम्

स गौतमवच श्रुत्वा युवनाश्वो महीपति । आराधयत् हृषीकेश वासुदेव सनातनम्

तस्य पुत्रोऽभवद्वीर श्रावस्तिरिति विश्रुत ।

निर्मिता येन श्रावस्ति गौडदेशे महापुरी ॥ १९ ॥

तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत्तस्मात्कुवलयाश्वक । धुन्धुमार त्वमगमद्धुन्धु हत्वा महासुरम्

धुन्धुमारस्य तनयास्त्रय प्रोक्ता द्विजोत्तमा । दृढाश्वश्चैव दण्डाश्च कपिलाश्वस्तथैव च

दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मज ।

हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात्संहताश्वक ॥ २२ ॥

कृताश्वोऽथ रणाश्वश्च संहताश्वस्य वै सुतौ । युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि

कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादत ।

लेभे त्वप्रतिम पुत्र विष्णुभक्तमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । मान्धातु पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान्

ततः प्रसन्नो भगवान्विरिञ्चिर्विश्वभावनः। वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीत्यभाषत

राजोवाच

जपेयं देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम्। भूयो वर्षशतं साग्रं तावदायुर्भवेन्मम ॥ ५७ ॥

वाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम्।
स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ५८ ॥

सोऽपि लब्धवरः श्रीमाञ्जजापातिप्रसन्नधीः। शान्तस्त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः
तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः। प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः
तं दृष्ट्वा वेदवपुषं मण्डलस्थं सनातनम्। स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयङ्गतः
तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः। क्षणादपश्यत्पुरुषं तमेव परमेश्वरम् ॥
चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम्। चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम्

भासयन्तं जगत्कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः।
रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥ ६४ ॥

तद्भावभावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि। ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यानेनचैव हि
नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने। त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे ॥६६
तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः। इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणु चानघ
सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु। नमः कुरुष्व नृपते एभिर्मां सततं शुचिः
अधीष्व शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम्। जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमना नृप
ब्रह्मचारी निराहारो भस्मनिष्ठः समाहितः। जपेदामरणाद्रुद्रं स याति परमम्पदम्
इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया। पुनः सम्वत्सरशतं राज्ञे ह्यायुरकल्पयत्
दत्त्वाऽस्मै तत्परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः। क्षणादन्तर्दधे रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥७२

राजाऽपि तपसा रुद्रं जजापाऽनन्यमानसः।
भस्मच्छन्नस्त्रिषवणं स्नात्वा शान्तः समाहितः ॥ ७३ ॥

जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णे वर्षशते पुनः। योगप्रवृत्तिरभवत्कालात्कालपरं पदम् ॥ ७४
विवेशैतद्वेदसारं स्थानं वै परमेष्ठिनः। भानोः सुमण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ।
स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मखैः ॥ ३९ ॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो वासुदेवः सनातनः । स सर्वदैवततनुः पूज्यते परमेश्वरः ॥४०॥

अत्रिरुवाच

अतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः । तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिरिदं जगत् । स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षी शम्भुः प्रजापतिः । प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसा परः

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि । नान्तरेण तपः कश्चिद्धर्मः शास्त्रेषु दृश्यते

इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान्प्रणम्यातिहृष्टधीः ।
विसर्जयित्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत् ॥ ४० ॥

आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम् । प्राणं बृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम्
त्वन्तु धर्मरतो नित्यं पालयैतदतन्द्रितः । चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम्
एवमुक्त्वा तद्राज्यं निधायात्मभवे नृपः । जगामारण्यमनघस्तपस्तप्तुमनुत्तमम्
हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवनाश्रये । कन्दमूलफलाहारैस्तपोभिरयजत्सुरान् ॥ ४८ ॥
संवत्सरशतं साग्रं तपोनिर्धूतकिल्बिषः । जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्
तस्यैवं तपतो देवः स्वयम्भूः परमेश्वरः । हिरण्यगर्भो विश्वात्मा तं देशमगमत्स्वयम्
दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम् । ननाम शिरसा तस्य पादयोर्नाम कीर्त्तयन्
नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने । हिरण्यमूर्त्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे ॥५३॥
नमो धात्रे विधात्रे च नमो देवात्ममूर्त्तये । साङ्ख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्त्तये
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने । पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः ॥

अश्मकस्योत्कलायान्तु नकुलोनामपार्थिवः। सहिरामभयाद्राजा वनंप्रापसुदुःखितः

दधत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत्।
तस्माद् विलिविलिः श्रीमान् वृद्धशर्म्मा च तत्सुतः॥ १४॥
तस्माद्विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्माद्रघुस्तस्मादजायत॥ १५॥

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः। रामोदाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः॥ भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः। सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक्। रामस्यभार्यासुभगाजनकस्यात्मजाशुभा

सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता।
तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा॥ १६॥

प्रायच्छज्जानकींसीतांराममेवाश्रितांपतिम्। प्रीतश्चभगवानीशस्त्रिशूलीनीललोहितः प्रददौ शत्रुनाशार्थंजनकायाद्भुतंधनुः। सराजाजनकोधीमान् दातुकामःसुतामिमाम् अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन्द्विजपुङ्गवाः। इदं धनुःसमादातुं यः शक्नोतिजगत्त्रये देवो वा दानवो वाऽपि स सीतां लब्धुमर्हति। विज्ञायरामोबलवाञ्जनकस्यगृहंप्रभुः भञ्जयामास चादायगत्वाऽसौ लीलयैव हि। उद्ववाहाथ तांकन्यांपार्वतीमिवशङ्करः रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः। ततो बहुतिथे काले राजादशरथःस्वयम् रामं ज्येष्ठसुतं वीरं राजानं कर्त्तुमारभत्। तस्याथ पत्नीसुभगा कैकेयीचारुहासिनी निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा। मत्सुतं भरतं वीरंराजानं कर्त्तुमर्हसि॥ पूर्वमेव वरो यस्माद्दत्तो मेभवता यतः। सतस्या वचनं श्रुत्वाराजादुःखितमानसः

बाढमित्यब्रवीद्वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित्।
प्रणम्याऽथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः॥ २६॥

ययौवनं सपत्नीकः कृत्वासमयमात्मवान्। संवत्सराणां चत्वारिंदश चैव महाबलः उवासतत्र भगवान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः। कदाचिद्वसतोऽरण्ये रावणोनाम राक्षसः

परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पुरीम्।

यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः ।
स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वम्भवतु चाऽक्षयम् ॥ ५१ ॥
स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापम्प्रणश्यति ।
इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुःपरिष्वज्य तु राघवम् ॥ ५२ ॥
सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत । रामोऽपिपालयामास राज्यन्धर्मपरायणः
अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबलः । विशेषाद्ब्राह्मणान्सर्वान्पूजयामास चेश्वरम्
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शङ्करम् । रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥ ५५॥
लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित्सुधीः ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ५६ ॥
नलश्चनिषधस्यासीत् नभास्तस्मादजायत । नभसःपुण्डरीकाक्षःक्षेमधन्वातुतत्सुतः
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ।
अहीनगुस्तस्य सुतो महस्वांस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ५८ ॥
तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु ताराधीशश्च तत्सुतः ।
ताराधीशाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत् ॥ ५६ ॥
श्रुतायुरभवत्तस्मादेतेचेक्ष्वाकुवंशजाः । सर्वे प्राधान्यतःप्रोक्ताःसमासेन द्विजोत्तमाः
य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवलोके महीयते ॥
इति श्रीकूर्म्ममहापुराण इक्ष्वाकुवंशवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ददृशुर्लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ ॥ ३२ ॥

ततः शोकाभिसन्तप्तौ बभूवतुररिन्दमौ । ततः कदाचित्कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः ॥ वानराणामभूत्सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः । सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनूमान्नाम वानरः ॥

वायुपुत्रो महातेजा रामस्याऽऽसीत्प्रियः सदा ।
स कृत्वा परमं धैर्यं रामाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

आनयिष्यामि तां सीतामित्युक्त्वा विचचार ह । महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्परः ॥ जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम् । तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम् ॥

अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिः समावृताम् ।
अश्रुपूर्णेक्षणां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम् ॥ ३८ ॥
राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणं चात्मसंस्थितम् ।
निवेदयित्वा चाऽऽत्मानं सीतायै रहसि प्रभुः ॥ ३९ ॥

असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम् । दृष्ट्वाऽङ्गुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम् ॥ मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फारितेक्षणा । समाश्वास्य तदा सीतां दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम् ॥

नयिष्ये त्वां महाबाहुरुक्त्वा रामं ययौ पुनः ।
निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान् ॥ ४२ ॥

तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः । ततः स रामो बलवान्सार्द्धं हनुमता स्वयम् ॥ लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिं चक्रे हि रक्षसः । कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः ॥ सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान्प्रभुः । सपत्नीकं हि ससुतं सभ्रातृकमरिन्दमः ॥

आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान् ।
सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम् ॥ ४६ ॥

स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघवः । तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शङ्करः ॥ प्रत्यक्षमेव भगवान्दत्तवान्वरमुत्तमम् । यत्त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः ॥ महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनङ्क्ष्यति । अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ ॥ दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः । यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी ॥

दुर्द्दमस्य सुतो धीमानन्धको नाम वीर्यवान् ।
अन्धकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ १७ ॥
कृतवीर्यःकृताग्निश्चकृतवर्मा च तत्सुतः । कृतौजाश्चचतुर्थोऽभूत्कार्त्तवीर्यस्तथार्जुनः
सहस्रबाहुर्द्युतिमान्धनुर्वेदविदाम्वरः । तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्द्दनः
तस्य पुत्रशतान्यासन्पञ्चतत्र महारथाः । कृतास्त्रा बलिनःशूराःधर्मात्मानोमनस्विनः
शूरश्च शूरसेनश्च कृष्णो धृष्णस्तथैवच । जयध्वजश्च बलवान्नारायणपरो नृपः ॥
शूरसेनादयः पूर्वे चत्वारः प्रथितौजसः । रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्तिस्म शङ्करम्
जयध्वजस्तु मतिमान्देवं नारायणं हरिम् । जगाम शरणं विष्णुं दैवतंधर्मतत्परः
तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ । ईश्वराराधनरतः पिताऽस्माकमिति श्रुतिः ॥
तानब्रवीन्महातेजा ह्येष धर्मः परो मम । विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो ये महीतले
राज्यं पालयिताऽवश्यम्भगवान्पुरुषोत्तमः ।
पूजनीयोऽजितो विष्णुः पालको जगतां हरिः ॥ २६ ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयं प्रभुः ।
तिस्रस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ॥ २७ ॥
सत्त्वात्माभगवान्विष्णुःसंस्थापयतिसर्वदा । सृजेद्ब्रह्मारजोमूर्त्तिःसंहरेत्तामसोहरः
तस्मान्महीपतीनान्तु राज्यम्पालयतामिदम् ॥
आराध्यो भगवान्विष्णुः केशवः केशिमर्द्दनः ॥ २८ ॥
निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्येमनस्विनः । प्रोचुःसंहारकोरुद्रः पूजनीयोमुमुक्षुभिः
अयं हि भगवान्रुद्रः सर्वं जगदिदं शिवः । तमोगुणं समाश्रित्यकालान्तेसंहरेत्प्रभुः
या सा घोरतमा मूर्त्तिरस्य तेजोमयी परा । संहरेद्विद्ययापूर्वं संसारं शूलभृत्तया ॥
ततस्तानब्रवीद्राजा विचिन्त्याऽसौ जयध्वजः ।
सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान्हरिः ॥ ३३ ॥
तमूचुर्भ्रातरोरुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः । मोचयेत्सत्त्वसंयुक्तः पूजयेत्सततं हरम्
अथाब्रवीद्राजपुत्रः प्रहसन्वै जयध्वजः । स्वधर्मोमुक्तये शुक्लो नान्यो मुनिभिरिष्यते

द्वाविंशोऽध्यायः

सोमवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ऐलः पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत् । तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजसः ॥
आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्चैव वीर्यवान् । शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः
आयुषस्तनया वीरा पञ्चैवासन्महौजसः । स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति नः श्रुतम्

नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥ ४ ॥
उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महाबलाः ।
यति (ध) र्ययातिः संयातिरायातिः पञ्चमोऽभवत् ॥ ५ ॥

तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः । देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः । यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ ७ ॥
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठाप्यजीजनत । सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्य ज्येष्ठं यदुमनिन्दितम्
पुरुमेव कनीयांसं पितुर्वचनपालकम् । दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्
दक्षिणापरयो राजा यदुं श्रेष्ठं न्ययोजयत् । प्रतीच्यामुत्तरायां च द्रुह्युं चानुमकल्पयत्
तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता । राजापि दारसहितो वनं प्राप महायशाः
यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः । सहस्रजित्तथा श्रेष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽजितो रघुः
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः । सुताः शतजितोऽप्यासंस्त्रयः परमधार्मिकाः
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः । हैहयस्याभवत्पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुतः ॥

तस्य पुत्रोऽभवद्विप्रा धर्मनेत्रः प्रतापवान् ।
धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु संजितस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १५ ॥

महिष्मान् संजितस्याभूद्भद्रश्रेण्यस्तदन्वयः । भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः

प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च । जयध्वजश्चकौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च
भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ।
ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् ॥५८॥
स्पृष्टमात्रेणतरसाचिक्षेपचननादच । सम्प्राप्यसा गदाऽस्योरो विदेहस्यशिलोपमम्
न दानवञ्चालयितुं शशाकान्तकसन्निभम् । दुद्रुवुस्तेभयग्रस्ता दृष्ट्वातस्यातिपौरुषम्
जयध्वजन्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम् ।
विष्णुञ्जयिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम् ॥ ६१ ॥
त्रातारं पुरुषंपूर्वं श्रीपतिम्पीतवाससम् । ततः प्रादुरभूच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥६२॥
आदेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहणात्तदा । जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वानारायणं नृपः
प्राहिणोद्वैविदेहायदानवेभ्यो यथाहरिः । सम्प्राप्यतस्यघोरस्य स्कन्धदेशंसुदर्शनम्
पृथिव्यांपातयामासशिरोऽद्रिशिखराकृति । तस्मिन्हतेदेवरिपौ शूराद्याभ्रातरोनृपाः
तद्विचक्रंपुराविष्णुस्तपसाराध्यशङ्करम् । यस्मादवापतस्मादसुराणांविनाशकम्
समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरञ्चाप्यपूजयन् । श्रुत्वाजगाम भगवाञ्जयध्वजपराक्रमम्
कार्त्तवीर्यसुतन्द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ।
तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः ॥ ६८ ॥
समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः । उवाच भगवन्घोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः
निपातितो मया सोऽथ विदेहो दानवेश्वरः ।
त्वद्वाक्याच्छिन्नसन्देहो विष्णुं सत्यपराक्रमम् ॥ ७० ॥
प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः । यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्
कथंकेन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः । कोऽयन्नारायणो देवः किं प्रभावश्चसुव्रत
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परंकौतूहलं हि मे । जयध्वजस्य वचनं श्रुत्वा शान्तो मुनिस्ततः
दृष्ट्वा हरौ परां भक्तिं विश्वामित्र उवाच ह ॥ ७३ ॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन्सर्वं यतो जगत् ॥ ७४ ॥

तथा च चन्दर्यां शक्तिकृपार्याद्धनां मम । आराधनपरायणौ सुरारमितौऽस्म
समग्र्यीद्रानपुत्र कर्णोमतिमताम्बर । धन्तु नोऽस्मज्जनक म धर्मं हृत्वानिति
धर्म पिता विमन कृष्णनाप्रधाद्वेष । प्रसाद्य कृष्णा हात्र प्रद्युम्नमनर्थं च नत् ॥
ननस्य नरशत्रुकृत्यच्छ दुःखमशानिव । गन्धामर्थं सर्मरथा समरौणा तन्धमन

तानप्रश्नन मुनया पमिष्टा यथायन ।

या पत्न्यामिमता पुन मा हि तस्य च दयना ॥ ४० ॥

विन्तु नारथिरन्तगृनिताद्ररन्नकजाम । विमग्नन्यनाऽपत्रिमनोऽन्यथाकृपा
करना स्थन विष्णुमनशतमपुरन्र । विशापामर्भिरान्योभ मन्यैर्यपिनाकधृक्
स्यानान्यनविष्णुनमरानां विशुन्कृत । गन्धराणामयानामावधानामनिकल्पन

विप्राधवगणा धान्या मिद्धाना भगवान् हरि ।

रमता शत्रुणा क्रम विपत्राणाञ्च पायना ॥ ४४ ॥

सर्वासां भगवान् यथा महात्म्यर्मिरालभत ।

मान्या त्याणामुमा गौरी तथा विष्णोर्णभान्करा ॥ ४५ ॥

गृहस्थानान्तमय स्युनस्य च ब्रह्मचारिणाम् । धन्नतमानामकस्याणर्नतानुमहावर
मुनाना गारानस्य कृष्माण्डनाधिनायक । सर्वेषामनयात्मा नैधन्य प्रजापति
इन्द्रेव मायाद्रध्ना स्वयं स्यान्मानन । तस्मात्प्रयन्नेनौनून विष्णुपादामनहति
एवन्रूपा नागस्य कृष्णा कृष्णो हरिर । अन्याधनपन शत्रु महर्षिमंहरधन
सत्यागम्याधन समुपुर्गमप्रमशोभनाम । पान्याञ्जभिरपृथ्व्याभिन्यासयांग्रिभूमण
तन कथाश्चदिन्द्रा विन्द्रानामनन्तर । मारथ सवमस्थानापुरा नपाममायर्यौ
दष्ट्वारगान्भीता सा युगान्तहुतापम । गन्धमादय मूयाम नान्यन्य निशो दश
तथाऽर्यरणाम धाम्नाश्ये निरमति न । तं यज्ञुर्त्रौधिनं त्वन्ये दुन्दुभमयविह्वला
नत मत ममयता कालराया मनाम्नत । शूरसेनान्य पञ्च राजानस्तु महावला
युग्यधुग्नतवशात गिरिकूटमभिसुद्वर । तान्सवान् स हि विप्रेन्द्राशूरान्प्रहस्रनिव
युयुद्धाय रनमरम्मा विद्रहन्चभिद्रुद्रुवु । शूरान्प्रसाहिणोर्द्रादृशुवस्तनस्तुवारुणम्

प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च । जयध्वजश्चकौवेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च
भक्षयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ।
ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् ॥५८॥
स्पृष्टमात्रेणतरसाचिक्षेपचननादच । सम्प्राप्यसा गदाऽस्योरो विदेहस्यशिलोपमम्
न दानवश्चालयितुं शशाकान्तकसन्निभम् । दुद्रुवुस्तेभयग्रस्ता दृष्ट्वातस्यातिपौरुषम्
जयध्वजन्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम् ।
विष्णुञ्जयिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम् ॥ ६१ ॥
त्रातारं पुरुषंपूर्वं श्रीपतिम्पीतवाससम् । ततः प्रादुरभूच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥६२॥
आदेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहणात्तदा । जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वानारायणं नृपः
प्राहिणोद्वैविदेहायदानवेभ्यो यथाहरिः । सम्प्राप्यतस्यघोरस्य स्कन्धदेशंसुदर्शनम्
पृथिव्यांपातयामासशिरोऽद्रिशिखराकृति । तस्मिन्हतेदेवरिपौ शूराद्याभ्रातरोनृपाः
तद्विचक्रंपुराविष्णुस्तपसाराध्यशङ्करम् । यस्मादवापतत्तस्मादसुराणांविनाशकम्
समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरञ्चाप्यपूजयन् । श्रुत्वाजगाम भगवाञ्जयध्वजपराक्रमम्
कार्त्तवीर्यसुतन्द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ।
तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः ॥ ६८ ॥
समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः । उवाच भगवन्घोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः
निपातितो मया सोऽथ विदेहो दानवेश्वरः ।
त्वद्वाक्याच्छिन्नसन्देहो विष्णुं सत्यपराक्रमम् ॥ ७० ॥
प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः । यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्
कथंकेन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः । कोऽयन्नारायणो देवः किं प्रभावश्चसुव्रत
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परंकौतूहलं हि मे । जयध्वजस्य वचनं श्रुत्वा शान्तो मुनिस्ततः
दृष्ट्वा हरौ परां भक्तिं विश्वामित्र उवाच ह ॥ ७३ ॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन्सर्वं यतो जगत् ॥ ७४ ॥

स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते । यमक्षरात्परतरात्परं प्राहुर्द्विजाश्रयम्
आनन्दं परमं व्योम स वै नारायणः स्मृतः । नित्योदितो निर्विकल्पो नित्यानन्दो निरञ्जनः
चतुर्व्यूहधरो विष्णुरव्यूहः प्रोच्यते स्वयम् । परमात्मा परं धाम परं व्योम परं पदम्
त्रिपादमक्षरं ब्रह्म तमाहुर्ब्रह्मवादिनः । स वासुदेवो विश्वात्मा योगात्मा पुरुषोत्तमः
यस्यांशसम्भवो ब्रह्मा रुद्रोऽपि परमेश्वरः । स्ववर्णाश्रमधर्मेण पुंसाऽयं पुरुषोत्तमः

अकामाद् भक्तभावेन समाराध्यो न चाऽन्यथा ।
एतावदुक्त्वा भगवान्विश्वामित्रो महातपाः ॥ ८० ॥

शूराद्यैः पूजितो विप्रो जगामाऽथ स्वमाश्रमम् । अथ शूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम्
यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमव्ययम् । तान्वसिष्ठस्तु भगवान्याजयामास धर्मवित्
गौतमोऽगस्त्यरत्रिश्च सर्वे रुद्रपरायणाः । विश्वामित्रस्तु भगवाञ्जयध्वजमरिन्दमम्

याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम् ।
तस्य यज्ञे महायोगी साक्षाद्देवः स्वयं हरिः ॥ ८४ ॥
आविरासीत्स भगवांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८५ ॥
जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रुद्रस्य परमां तनुम् ।
स्तुत्वैव मघवा बुद्ध्या यत्नेनाऽयजदच्युतम् ॥ ८६ ॥

य इमं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति

इति श्रीकूर्ममहापुराणे सोमवंशानुकीर्तने जयध्वजपराक्रमवर्णनं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

जयध्वजवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्तालजङ्घ इतिस्मृतः । शतंपुत्रास्तुतस्यासन्तालजङ्घाइतिस्मृताः

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः ।

वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्म्मिणः ॥ २ ॥

वृषोवंशकरस्तेषांतस्यपुत्रोऽभवन्मधुः । मधोःपुत्रशतन्त्वासीद्वृषणस्तस्यवंशभाक्

वीतिहोत्रसुतश्चापिविश्रुतोऽनन्तइत्यतः । दुर्ज्जयस्तस्यपुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः

-तस्यभार्य्यारूपवतीगुणैःसर्वैरलङ्कृता । पतिव्रताऽऽसीत्पतिनास्वधर्मपरिपालिका

स कदाचिन्महाराजः कालिन्दीतीरसंस्थिताम् ।

अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरश्रुतिम् ॥ ६ ॥

[ततः कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै । प्रोवाच सुचिरंकालं देवि! रन्तुं मयार्हसि

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम् । रेमे तेन चिरङ्कालं कामदेवमिवापरम् ॥

कालात्प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम् ।

गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्तीत्यब्रवीद्वचः ॥ ९ ॥

न ह्येतेनोपभोगेन भवतो राजसुन्दर !। प्रीतिः सञ्जायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुनः

तामब्रवीत्स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरम्पुरीम् ।

आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि ॥ ११ ॥

तमब्रवीत्सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते । नान्यथाप्सरसा तावद्रन्तव्यम्भवतापुनः

ओमित्युक्त्वाययौतूर्णंपुरींपरमशोभनाम् । गत्वापतिव्रतांपत्नीं दृष्ट्वाभीतोऽभवन्नृपः

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्य्या तस्य पतिव्रता । भीतं प्रसन्नयाप्राहवाचापीनपयोधरा

स्वामिन् किमत्रभवतोभीतिरद्यप्रवर्त्तते । तद्ब्रूहिमे यथातत्त्वंन राज्ञांकीर्त्तयेत्विदम्

स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते । समस्तान्पापवराणं प्राहुर्हाथवन्
मानन्दं परमं व्योम स वै नारायणः स्मृतः । नित्योदितो निर्विकल्पो नित्यानन्दो निरञ्जन
श्चतुर्व्यूहधरो विष्णुरव्यूहः प्रोच्यतेऽव्ययम् । परमात्मा परं धाम परं व्योम परात्परम्
त्रिपादमक्षरं ब्रह्म तमाहुर्ब्रह्मवादिनः । स वासुदेवो विश्वात्मा योगात्मा पुरुषोत्तम
स्त्वामाश्रयस्व यो ब्रह्मा रुद्रोऽपि परमेश्वरः । स्थापयामास धर्मेण पुंसाऽद्य पुरुषोत्तम

अकामात्तु मन्मार्गेण समाराध्यो न चान्यथा ।

एतावदुक्त्वा भगवान्विश्वामित्रो महातपाः ॥ ८० ॥

शुचौ देशे पूजितो विप्रो जगामाऽथ स्वमाश्रमम् । अथ दृष्ट्वा यदा देवं यज्ञेन महेश्वरम्
यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा ब्रह्मवादिनः । तस्यैवमिष्टमात्रं तु भगवान्ध्यापयामास धर्मवित्
गौतमोऽगस्त्यस्त्रिविधं सर्वरूपतनुं स्वा । विश्वामित्रस्तु भगवाञ्जयध्वजमरिन्दमम्

ग्राहयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम् ।

तस्य यज्ञे महायोगी साक्षाद्देवः स्वयं हरिः ॥ ८४ ॥

आविरासीत्स भगवांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८५ ॥

जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रुद्रस्य परमां तनुम् ।

इत्येवं सर्वदा बुद्ध्या यज्ञेनाऽयजदच्युतम् ॥ ८६ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति

इति श्रीकूर्ममहापुराणे सोमवंशानुकीर्तने जयध्वजपराक्रमवर्णनं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

जयध्वजवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्तालजङ्घइतिस्मृतः। शतंपुत्रास्तुतस्यासन्तालजङ्घाइतिस्मृताः

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः।

वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्म्मिणः॥ २॥

वृषोवंशकरस्तेषांतस्यपुत्रोऽभवन्मधुः। मधोःपुत्रशतन्त्वासीद्वृषणस्तस्यवंशभाक्

वीतिहोत्रसुतश्चापिविश्रुतोऽनन्तइत्यतः। दुर्ज्जयस्तस्यपुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः

तस्यभार्य्यारूपवतीगुणैःसर्वैरलङ्कृता। पतिव्रताऽऽसीत्पतिनास्वधर्मपरिपालिका

स कदाचिन्महाराजः कालिन्दीतीरसंस्थिताम्।

अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरश्रुतिम्॥ ६॥

[ततः कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै। प्रोवाच सुचिरंकालं देवि! रन्तुं मयार्हसि

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम्। रेमे तेन चिरङ्कालं कामदेवमिवापरम्॥

कालात्प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम्।

गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्तीत्यब्रवीद्वचः॥ ९॥

न ह्येतेनोपभोगेन भवतो राजसुन्दर!। प्रीतिः सञ्जायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुनः

तामब्रवीत्स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरम्पुरीम्।

आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि॥ ११॥

तमब्रवीत्सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते। नान्यथाप्सरसा तावद्रन्तव्यम्भवतापुनः

ओमित्युक्त्वाययौतूर्णंपुरींपरमशोभनाम्। गत्वापतिव्रतांपत्नीं दृष्ट्वाभीतोऽभवन्नृपः

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्य्या तस्य पतिव्रता। भीतं प्रसन्नयाप्राहवाचापीनपयोधरा

स्वामिन् किमत्रभवतोभीतिरद्यप्रवर्त्तते। तद्ब्रूहिमे यथातत्त्वंन राज्ञांकीर्त्तयेत्विदम्

स तस्या वाक्यमाकर्ण्य दृष्ट्वा तत्समागमम् ।

कोपेन विह्वलमतिर्भ्रान्तरूपा विवेद सा ॥ १९ ॥

स भगवांस्तत्र वार्तां गत्वा विशोधनम् । सोऽपि दृष्ट्वा सम्पूर्णमागत्य पति

तन स तथा धनिमातिरत्यपूर्वम् । गत्वा वन्याश्रमं पुण्यं दृष्ट्वाश्रममहामुनिर्

निशम्य वाक्यमनुशाखितमिति विधिगुणम् । जगाम हिमवत्पृष्ठं समुद्दिश्य महाय

नाऽऽरुह्य यत्र नगेन्द्रा गन्धर्वसमुत्तमम् ।

अत्रमाने धिया यो द्विजे मुनिर्दिव्यमाल्यधृ ॥ २० ॥

धरन् मालामविरतं तत्समाप्य सर्वदा । उपशीर्त ब्रह्मा सम्बाधवंशर्नि

कोऽन्तर कामुको राजा गन्धर्वाणां तेन हि । ददर्श सुमहद्धि मालामादाय मुनिं

विधिवन्न सम्मो मत्वा यदृच्छया कृपणो द्विजः ।

चातम नाम सर्वकालिनी दृष्टमालयान् ॥ २१ ॥

भक्त्याभावस्य कामदार्थितिनि । बन्धामवत्तगो पृथ्वी सर्वसमन्वितम्

आश्रमं हिमवत्पार्श्वमुपगम्याभावस्तु । चातमर्गोऽन्यं देवकृतमिति ध्रुवम् ॥

तत्र तथाऽन्वतया दृष्ट्वा न निद्राविषमम् । कामेनर्थिर्ि पारं मुनिर्ने निधमाल्या

तत्समस्तपूर्णतायाः सत्या सर्वसमावन ।

न पश्यति स्म ता अत्रा गिर अद्भुतानि प्रनिमवान ॥ २२ ॥

तथा गन्धर्वलोकमागम्य कामर्थिन । गन्धर्वमहासंघं यतो देवपराक्रमं ॥

स तत्र मानसं नाम सरस्वत्यादिविचयम् । अत्रे अद्भुतमिश्रित्य स्वयमाद्युतमावित

तस्य भाग्य तत्समाक्रान्तीमति गन्धमात् । दृष्ट्वानवयवाङ्गी सर्वं मालां स्त्रीपुन

स मानया तथा तथा मुनिनाभ्यस्य माहित ।

तम ज्ञानभमान्यान् नानानि मुनिना तया ॥ ००॥

त्र्यावशी गाजपय मनान वाक्यमब्रवीत् । किं कृतमभवता यावत् पूर्वगत्या तदा कृत

स तस्य स्वयमाद्र गन्या सत्समुदाहितम् । कण्वस्य आश्रमेव मालापहरणं तथा

शापं दास्यति ते कण्वो ममाऽपि भवतः प्रिया ॥ ३४ ॥

तयासकृन्महाराजःप्रोक्तोऽपिमदमोहितः । न च तच्छ्रुतवान्वाक्यंतत्रसंन्यस्तमानसः
ततोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम् । सुरौमशापिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा

तस्यां विरक्तचेतस्कः स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम् ।
धिङ्मामिति विनिश्चित्य तपः कर्त्तुं समारभत ॥ ३७ ॥

संवत्सरद्वादशकं कन्दमूलफलाशनः । भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः ॥
गत्वाकण्वाश्रमंभीत्यातस्मैसर्वं न्यवेदयत । वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम्
वीक्ष्यतंराजशार्दूलंप्रसन्नोभगवानृषिः । कर्त्तुकामो हि निर्दोषंतस्यात्रमिदमब्रवीत्

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषितां पुरीम् ।
आस्ते मोचयितुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः ॥ ४१ ॥
स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवद्गङ्गायां देवताः पितॄन् ।
दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किल्बिषान्मोक्ष्यसे क्षणात् ॥ ४२ ॥

प्रणम्य शिरसाकण्वमनुज्ञाप्यचदुर्जयः । वाराणस्यांहरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत्ततः
जगामस्वपुरींशुभ्रांपालयामासमेदिनीम् । याजयामासतंकण्वोयाचितोघृणयामुनिः
तस्य पुत्रोऽथ मतिमान्सुप्रतीक इति स्मृतः । बभूवजातमात्रंतंराजानमुपतस्थिरे
उर्वश्यांच महावीर्याःसप्तदेवसुतोपमाः । कन्यास्तजगृहिरे सर्वा गन्धर्वोदयिताद्विजाः
एषवः कथितः सम्यक् सहस्रजित उत्तमः । वंशः पापहरो नृणां क्रोष्टोरपिनिबोधत

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे राजवंशानुकीर्त्तनेसहस्रजिद्वंशवर्णनंनाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्याय.

यदुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

क्रोष्टोरेवाऽभवत्पुत्रो वृजवानिति विश्रुत ।
तस्य पुत्रोऽभवत्स्वाति कुशिकस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १ ॥
कुशिकादभवत्पुत्रो नाम्ना चित्ररथो बली । अथ चैत्ररथिर्लोके शशबिन्दुरिति स्मृत
तस्य पुत्र पृथुयशा राजाभूद्धर्मतत्पर । पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात्पृथुजयोऽभवत्
पृथुकीर्तिरभूत्तस्मात्पृथुदानस्ततोऽभवत् ।
पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत्पृथुसत्तम ॥ ४ ॥
उशनास्तस्य पुत्रोऽभूच्छितेपुस्तत्सुतोऽभवत् । तस्माद्रुक्मकवचपरावृत्तस्तत सुत
परावृत्सुतो जज्ञे ज्यामघो लोकविश्रुत । तस्माद्विदर्भः संजज्ञे विदर्भात्क्रथकैशिकौ
लोमपादस्तृतीयस्तु बभ्रुस्तस्यात्मजो नृप ।
धृतिस्तस्याऽभवत्पुत्र श्वेतस्तस्याप्यभूत्सुत ॥ ७ ॥
श्वेतस्य पुत्रो बलवान्नाम्ना विश्वसह स्मृत ।
तस्य पुत्रो महावीर्य प्रभावात्कौशिक स्मृत ॥ ८ ॥
अभूत्तस्य सुतो धीमान्सुमन्तस्तत्सुतोऽनल । अनलस्य सुतश्चेतिर्देवैरल्योऽभवत्सुत
तस्य प्रधानो धृतिमान्वपुष्मांस्तु सुतोऽभवत् ।
वपुष्मतो बृहन्मेधा श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १० ॥
तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महायश । अथ तस्याऽभवत्कुन्तिर्वृष्णिस्तस्याभवत्सुत
तस्मात्सरथनाम बभूव सुमहाबल । कदाचिन्मृगया यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्जितम्
दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुङ्गवाः । अन्वधावत संक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबल ॥
दुर्योधनोऽग्निसंकाश शूलासक्तमहाकर । राजा नरथो भीतो नातिदूरादवस्थितम्

अपश्यत्परमं स्थानं सरस्वत्याः सुगोपितम् ।
स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान्नृपः ॥ १५ ॥
ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षाद्देवीं सरस्वतीम् । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्रजित्
पपात दण्डवद्भूमौ त्वामहं शरणं गतः । नमस्यामि महादेवीं साक्षाद्देवीं सरस्वतीम्
वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम् । नमस्ये जगतां योनिं योगिनीं परमां कलाम्
हिरण्यगर्भसम्भूतां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ १६ ॥
पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम् । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः
हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती । समुद्यम्य तथा शूलं प्रविष्टो बलगर्वितः
त्रिलोकमातुर्हि स्थानं शशाङ्कादित्यसन्निभम् ।
तदन्तरे महद्भूतं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ २२ ॥
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तम्भुवि । गच्छेत्याह महाराजन स्थातव्यं त्वया पुनः
इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन्राक्षसो हतः । ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथः परम्
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरन्दरपुरोपमाम् । स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्होमैर्देवीं सरस्वतीम् । तस्य चासीद्दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः ।
तस्मात्करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत्ततः ॥ २७ ॥
ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः । मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात्कुरुरजायत
पुत्रद्वयमभूत्तस्य सुत्रामा चानुरेव च । अनोस्तु प्रियगोत्रोऽभूदंशुस्तस्य च रिक्थभाक्
अथांशोरन्धको नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् । महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदाम्वरः
स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः । शास्त्रं प्रवर्त्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम्
तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतानाञ्च शोभनम् ।
प्रवर्त्तते महच्छास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम् ॥ ३२ ॥
सात्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः । पुण्यश्लोको महाराजस्तेन चैतत्प्रवर्तितम्

सात्वतान्सत्वसम्पन्नान्कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
अन्धकं वै महाभोजं वृष्णिं देवावृधं नृपम् ॥ ३७ ॥

ज्येष्ठञ्च भजमानाख्यं धनुर्वेदविदांवरम् । तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः ॥
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभुः । तस्य बभ्रुरिति ख्यातः पुण्यश्लोकोऽभवन्नृपः
धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्त्वज्ञानरतः सदा । भजमानाः श्रियं दिव्यां भजमानाद्विजज्ञिरे

तेषां प्रधानौ विख्यातौ निमिः कृकण एव च ।
महाभोजकुले जाता भोजा वैमातृकास्तथा ॥ ३८ ॥

वृष्णेः सुमित्रो बलवाननमित्रः शिनिस्तथा । अनमित्रादभून्निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः

प्रसेनस्तु महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः ।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥ ४० ॥
सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत् ।
सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत्सुतः ॥ ४१ ॥
कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगन्धरः ।
माद्र्या वृष्णिः सुतो जज्ञे पृश्निर्वै यदुनन्दनः ॥ ४२ ॥
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकस्तु हि ।
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ॥ ४३ ॥

तस्यामजनयत्पुत्रमक्रूरं नामधार्मिकम् । उपमद्गुस्तथा मद्गुरन्ये च बहवः सुताः ॥
अक्रूरस्य स्मृतः पुत्रा देववानिति विश्रुतः । उपदेवश्च देवात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ
चित्रकस्याभवत्पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधाश्वकगवेक्षकौ
अन्धकस्य सुतायां तु लेभे चतुरः सुतान् । कुकुरं भजमानञ्च शमीकं बलबर्हिषम्

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत् ।
कपोतरोमा विख्यातस्तस्य पुत्रो विलोमकः ॥ ४८ ॥
तस्यासीत्तुम्बुरुसखा विद्वान्पुत्रस्तमः किल ।
तस्याप्यभवत्पुत्रस्तथाऽऽनकदुन्दुभिः ॥ ४९ ॥

स गोवर्द्धनमासाद्य तताप विपुलन्तपः । वरं तस्मै ददौ देवो ब्रह्मालोकमहेश्वरः ॥
वंशस्ते चाक्षयाकीर्त्तिर्ज्ञानयोगस्तथोत्तमः । गुरोरप्यधिकं विप्राःकामरूपित्वमेव च
स लब्ध्वा वरमव्यग्रोवरेण्याद्वृषवाहनम् । पूजयामासगानेनस्थाणुं त्रिदशपूजितम्
तस्यगानरतस्याथ भगवानम्बिकापतिः । कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि
तया ससङ्गतोराजागानयोगमनुत्तमम् । अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियांतांभ्रान्तलोचनाम्
तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नामशोभनम् ।
रूपलावण्यसम्पन्नां ह्रीमतीमितिकन्यकाम् ॥ ५६ ॥
ततस्तं जननीपुत्रंबाल्येवयसिशोभनम् । शिक्षयामासविधिवद्गानविद्याञ्चकन्यकाम्
कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद्गुरोः ।
उद्ववाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणान्तु मानसीम् ॥ ५७ ॥
तस्यामुत्पादयामास पञ्चपुत्राननुत्तमान् । वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान्
पुत्रैःपौत्रैः सपत्नीको राजागानविशारदः । पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम् ॥
ह्रीमतीञ्चापसर्वाङ्गीं श्रीमिवायतलोचनाम् । सुबाहुनामागन्धर्वस्तामादायययौपुरीम्
तस्यामप्यभवन्पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः । सुषेणवीरसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः ॥
अथासीदभिजित्पुत्रश्चन्दनोदकदुन्दुभिः । पुनर्वसुश्चाभिजितः सम्बभूवाहुकस्ततः
आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः । देवकस्यसुतावीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः
देववानुपदेवश्च सुदेवोदेवरक्षितः । तेषां स्वसारः सप्तासन्वसुदेवाय ता ददौ ॥ ६४
धृतदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता । श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता
देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत्सुमध्यमा । उग्रसेनस्यपुत्रोऽभून्न्यग्रोधःकंसएवच
सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च । भजमानादभूत्पुत्रः प्रख्यातोऽसौविदूरथः
तस्य सूरसमस्तस्मात्प्रतिक्षत्रश्च तत्सुतः ।
स्वयम्भोजस्ततस्तस्माद्धार्दीकः शत्रुतापनः ॥ ६८ ॥
कृतवर्माथ तत्पुत्रः शूरसेनः सुतोऽभवत् । वसुदेवोऽथ तत्पुत्रो नित्यं धर्मपरायणः
वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः । बभूवदेवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः ॥ ७०

रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना । असूत पत्नी सम्भूतं रामं ज्येष्ठं हलायुधम् ।
स एव परमात्मासौ वासुदेवो जगन्मयः । हलायुधः स्वयं साक्षाच्छेषः सङ्कर्षणः प्रभुः ।
भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषीं तनुम् । बभूव तस्यां देवक्यां रोहिण्यामपि माधवः ।
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी । नियोगाद्वासुदेवस्य यशोदातनयाऽभवत् ।
ये चान्ये वासुदेवस्य वासुदेवाग्रजाः सुताः । प्रागेव कंसस्तान्सर्वाञ्जघान मुनिसत्तमाः ।
सुषेणश्च तथोदायी भद्रसेनो महाबलः । ऋजुदासो भद्रदेवः कीर्तिमानपि पूर्वजः ।
हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणी वसुदेवतः । असूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम् ॥ ७१
जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्युतम् । असूत देवकी कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।

रेवती नाम रामस्य भार्याऽऽसीत्सुगुणान्विता ।
तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशठोल्मुकौ ॥ ७६ ॥

षोडशस्त्रीसहस्राणि कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः । बभूवुरात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रशः ।
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः । चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः साम्ब एव च ।
रुक्मिण्यां वासुदेवस्य महाबलपराक्रमाः । विशिष्टाः सर्वपुत्राणां संबभूवुरिमे सुताः ।

तान्दृष्ट्वा तनयान्वीरान्रौक्मिणेयाञ्जनार्दनात् ।
जाम्बवत्यब्रवीत्कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता ॥ ८३ ॥

मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टगुणवत्तमम् । सुरेशसम्मितं पुत्रं देहि दानवसूदन ॥
जाम्बवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथः स्वयं हरिः । समारेभे तपः कर्तुं तपोनिधिररिन्दमः ॥
तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथासौ देवकीसुतः । दृष्ट्वा लेभे सुतं रुद्रं तप्त्वा तीव्रं महत्तपः ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे यदुवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

यदुवंशकीर्त्तनेकृष्णतपश्चरणवर्णनम्

सूत उवाच

अथदेवो हृषीकेशो भगवान्पुरुषोत्तमः । ततापघोरं पुत्रार्थं निधानं तपसस्तपः ॥ १

स्वेच्छयाऽप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वसृक् ।

चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन्परमेश्वरम् ॥ २ ॥

जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम् । आश्रमंतूपमन्योर्वैमुनीन्द्रस्यमहात्मनः

पतत्त्रिराजमारूढः सुपर्णमतितेजसम् । शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्साङ्कितलक्षणः

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् । ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम्

सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम् । विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम् ।

आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः । ऋषिभिर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा ।

वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितश्चाग्निहोत्रिभिः ।

योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः ॥ ८ ॥

उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । नदीभिरभितोजुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः

सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः । प्रशान्तैः सत्यसङ्कल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः

भस्मावदातसर्वाङ्गैःरुद्रजाप्यपरायणैः । मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखालैः

सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः । तत्राऽऽश्रमवरेरम्ये सिद्धाश्रमविभूषि

गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाऽघनाशिनी ।

स तत्र वीक्ष्य विश्वात्मा तापसान्वीतकल्मषान् ॥ १३ ॥

प्रणामेनाथवचसा पूजयामास माधवः । तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम्

प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम् । स्तुवन्तिवैदिकैर्मन्त्रैःकृत्वाहृदिसनातनं

प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम् । अयं स भगवानेकः साक्षीनारायणः ।

आगच्छत्यधुना देवः प्रधानपुरुषः स्वयम्। अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्ता चैव रक्षकः
अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन्द्रष्टुमिहागतः।
एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः ॥ १८ ॥
अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः।
श्रुत्वा श्रुत्वा हरिस्तेषां वचांसि वचनातिगः ॥ १९ ॥
ययौ स तूर्णं गोविन्दः स्थानं तस्य महात्मनः। उपस्पृश्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादवः
चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्पणम्। नदीनां तीरसंस्थाने स्थापितानि मुनीश्वरैः
लिङ्गानि पूजयामास शम्भोरमिततेजसः। दृष्ट्वा दृष्ट्वा समायान्तं यत्र यत्र जनार्दनम्
पूजयाञ्चक्रिरे पुष्पैरक्षतैस्तन्निवासिनः। समीक्ष्य वासुदेवं तं शार्ङ्गशङ्खासिधारिणम्
तस्थिरे निश्चलाः सर्वे शुभाङ्गं तन्निवासिनः। यानि तत्राश्रमस्थानि मानसानि जनार्दनम्
दृष्ट्वा समाहितान्यासन्निश्चलान्यग्निपुरोगमम्। अथावगाह्य गङ्गायां कृत्वा देवर्षितर्पणम्
आदाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद् गृहम्।
दृष्ट्वा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्धूलितविग्रहम् ॥ २९ ॥
जटाचीरधरं शान्तं ननाम शिरसा मुनिम्। आलोक्य कृष्णमायान्तं पूजयामास तत्त्ववित्
आसने वासयामास योगिनां प्रथमातिथिम्। उवाच वचसा योनिं ज्ञानानां परमं पदम्
विष्णुमव्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेन संस्थितम्। स्वागतं ते हृषीकेश सफलानि तपांसि नः
यत्साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेहं विष्णुरागतः। त्वां न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपीह योगिनः
तादृशस्याथ भवतः किमागमनकारणम्। श्रुत्वोपमन्योस्तद्वाक्यं भगवान्देवकीसुतः
व्याजहार महायोगी प्रसन्नः प्रणिपत्य तम् ॥ ३१ ॥

कृष्ण उवाच

भगवन्द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम् ॥ ३२ ॥
सम्प्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्दर्शनोत्सुकः। कथं स भगवानीशो दृश्यो योगविदां वरः
मयाचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापतिम्। इत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वरः
भक्त्या चोग्रेण तपसा तत्कुरुष्वेह सुव्रत। इहेश्वरं देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ॥ ३०

ध्यायन्त्याराधयन्त्येनंयोगिनस्तापसाश्च ये । इहदेवःसपत्नीको भगवान्वृषभध्वजः
क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः परिवारितः । इहाश्रमे पुरारुद्रं तपस्तप्त्वा सुदारुणम्
लेभे महेश्वराद्योगं वसिष्ठो भगवानृषिः । इहैव भगवान्व्यासःकृष्णद्वैपायनःस्वयम्
दृष्ट्वा तं परमेशानं लब्धवान्ज्ञानमैश्वरम् । इहाश्रमपदे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्द्दिनः ॥
अविन्दन्पुत्रकान्रुद्रात्सूरयो भक्तिसंयुताः । इह देवा महादेवीं भवानीञ्च महेश्वरीम्
संस्तुवन्तो महादेवंनिर्भया निर्वृतिययुः । इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपताम्वरः
लब्धवान्परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम् । प्रवर्त्तयामाससतांकृत्वावै संहितांशुभाम्

इहैव संहितां दृष्ट्वा कामो यः शशिपायिनः ।
महादेवश्चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः ॥

द्वादशैव सहस्राणि श्लोकानांपुरुषोत्तम !। इह प्रवर्त्तिता पुण्याह्यष्टसाहस्त्रिकोत्तरा
(वायवीयोत्तरंनामपुराणं वेदसम्मतम्)। द्विजःपौराणिकींपुण्यां प्रसादेनद्विजोत्तमैः
(इहैव ख्यापितं शिष्यैर्वैशम्पायनभाषितम् ॥ ४३ ॥

याज्ञवल्क्यं महायोगी दृष्ट्वाऽत्रतपसा हरम् । चकारतन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम्
इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा पूर्वं महातपः । शुक्रो महेश्वरात्पुत्रोलब्धो योगविदाम्वरः
तस्मादिहैव देवेश तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्रम्भीमंकपर्द्दिनम्
एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः । व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाक्लिष्टकर्म्मणे
स तेन मुनिवर्येण व्याहृतो मधुसूदनः । तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत्प्रभुः ॥ ४८ ॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गोमुण्डो वल्कलसंयुतः । जजाप रुद्रमनिशं शिवैकाहितमानसः
ततो बहुतिथे काले सोमः सोमार्द्धभूषणः । अदृश्यत महादेवो व्योम्निदेव्यामहेश्वरः

किरीटिनं गदिनञ्चित्रमालं पिनाकिनं शूलिनं देवदेवम् ।
शार्दूलचर्माम्बरसम्वृताङ्गं देव्या महादेवमसौ ददर्श ॥ ५१ ॥
प्रभुम्पुराणं पुरुषं पुरस्तात्सनातनं योगिनमीशितारम् ।
अणोरणीयांसमनन्तशक्तिं प्राणेश्वरं शम्भुमसौ ददर्श ॥ ५२ ॥
परश्वधासक्तकरं त्रिनेत्रं नृसिंहचर्मावृतभस्मगात्रम् ।

समुद्गिरन्तं प्रणवं बृहन्तं सहस्रसूर्य्यप्रतिमं ददर्श ॥ ५३ ॥
न यस्य देवा न पितामहोऽपि नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न मृत्युः ।
प्रभावमद्यापि वदन्ति रुद्रं तमादिदेवं पुरतो ददर्श ॥ ५४ ॥
तदान्वपश्यद्गिरिशस्य वामे स्वात्मानमव्यक्तमनन्तरूपम् ।
स्तुवन्तमीशं बहुभिर्वचोभिः शङ्खासिचक्रार्पितहस्तमाद्यम् ॥ ५५ ॥
कृताञ्जलिं दक्षिणतः सुरेशं हंसाधिरूढं पुरुषं ददर्श ।
स्तुवानमीशस्य परं प्रभावं पितामहं लोकगुरुं दिविस्थम् ॥ ५६ ॥
गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पान्नन्दीश्वरादीनमितप्रभावान् ।
त्रिलोकभर्तुः पुरतोऽन्वपश्यत्कुमारमग्निप्रतिमं गणेशम् ॥ ५७ ॥
मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यं प्रचेतसं दक्षमथापि कण्वम् ।
पराशरं तत्परतो वसिष्ठं स्वायम्भुवञ्चापि मनुं ददर्श ॥ ५८ ॥
तुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधानं बद्धाञ्जलिर्विष्णुरुदारबुद्धिः ।
प्रणम्य देव्या गिरिशं सभक्त्या स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य ॥

कृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति ।
तपश्च सत्त्वञ्च रजस्तमश्च त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ६० ॥
त्वं ब्रह्मा हरिरथ रुद्र विश्वकर्ता संहर्ता दिनकरमण्डलाधिवासः ।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेदस्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ॥ ६१ ॥
साङ्ख्यास्त्वामगुणमथाहुरेकरूपं योगास्त्वं सततमुपासते हृदिस्थम् ।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमीड्यं त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ॥ ६२ ॥
त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेकं दत्त्वाऽसौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः ।
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्टं स्मृत्वा ते पदयुगलं भवत्प्रसादात् ॥ ६३ ॥
यस्याशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं ।
न त्वां योनिमनन्तमेकमचलं सत्यम्परं सर्वगम् ॥ ६४ ॥

स्थालम्प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदञ्जायते

नित्यं त्वाहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरंतं शिवम् ॥ ६५ ॥

ॐनमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे । महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः

नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने । नमस्तेवज्रहस्तायदिग्वस्त्रायकपर्द्दिने

नमोभैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे । नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरेतसे ॥ ६८॥

नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः ।

नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमोनमः ॥ ६६ ॥

नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने । नमो भैरववेषाय हराय च निषङ्गिणे ॥

नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे ।

नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः ॥ ७१ ॥

नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः । नरनारीशरीराय साङ्ख्ययोगप्रवर्त्तिने ॥

नमोभैरवनाथाय देवानुगतलिङ्गिने । कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः ॥ ७३ ॥

नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे । मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः ॥

नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमोनमः । योगिनेयोगगम्याय योगमायाय ते नमः

नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च । कपालिनेनमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतयेनमः

नमो नमोऽस्तु ते तुभ्यं भूय एव नमो नमः ।

मह्यं सर्व्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर ॥ ७७ ॥

सूत उवाच

एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधवः । पपातपादयोर्विप्रादेवदेव्योःसदण्डवत्

उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णं केशिनिषूदनम् ।

बभाषे मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ ७६ ॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष! तप्यते भवतातपः । त्वमेव दाता सर्वेषांकामानांकर्मणामिह

त्वं हि सा परमा मूर्त्तिर्मम नारायणाह्वया । न विना त्वां जगत्सर्वंविद्यतेपुरुषोत्तम

वेत्थनारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम् । महादेवं महायोगं स्वेन योगेन केशव ॥

श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन्वै वृषध्वजम् ।
उवाचालोक्य विश्वेशो देवीं च हिमशैलजाम् ॥ ८३ ॥
ज्ञातं हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शङ्कर । इच्छाम्यात्मसमं पुत्रं त्वद्भक्तं देहि शङ्कर ॥
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा प्रहृष्टमनसा हरः । देवीमालोक्य गिरिजां केशवं परिषस्वजे ॥
ततः सा जगतां माता शङ्करार्द्धशरीरिणी ।
व्याजहार हृषीकेशं देवी हिमगिरीन्द्रजा ॥ ८५ ॥
वत्स ज्ञातं मयाऽनन्त निश्चला सर्वदाऽच्युत । अनन्या ईश्वरे भक्तिरात्मन्यपि च केशव ॥
त्वं हि नारायणः साक्षात्सर्वात्मा पुरुषोत्तमः ।
प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं सञ्जातो देवकीसुतः ॥ ८८ ॥
पश्य त्वमात्मनात्मानमात्मानमम सम्भवम् । नावयोर्विद्यते भेद एकं पश्यन्ति सूरयः ॥
इमानि च वरानिष्टान्मत्तो गृह्णीष्व केशव । सर्वज्ञत्वं तथैश्वर्यं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम् ॥
ईश्वरे निश्चलां भक्तिमात्मन्यपि परं बलम् । एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेव्या जनार्दनः ॥
आदेशं शिरसा गृह्य देवोऽप्याह महेश्वरम् ।
प्रगृह्य कृष्णं भगवानथेशः करेण देव्या सह देवदेवः ॥
सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुरेशैर्जगाम कैलासगिरिं गिरीशः ॥ ९२ ॥
इति श्रीकूर्ममहापुराणे यदुवंशानुकीर्तने कृष्णतपश्चरणं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

लिङ्गोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

प्रविश्य मेरुशिखरं कैलासं कनकप्रभम्। रराम भगवान्सोमः केशवेन महेश्वरः॥
अपश्यंस्तेमहात्मानं कैलासगिरिवासिनः। पूजयाञ्चक्रिरे कृष्णं देवदेवमिवाच्युतम्
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कालमेघसमप्रभम्। किरीटिनं शार्ङ्गपाणिं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्
दीर्घबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमच्युतम्। दधानमुरसा मालां वैजयन्तीमनुत्तमाम्
भ्राजमानं श्रियादिव्यायुवानमतिकोमलम्। पद्माङ्घ्रिं पद्मनयनं सस्मितंसद्गतिप्रदम्
कदाचित्तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्द्धनः। भ्राजमानःश्रियाकृष्णश्चचार गिरिकन्दरम्

गन्धर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नशः।
सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वा देवास्तत्र जगन्मयम्॥ ७॥

दृष्ट्वाऽऽश्चर्यम्परंगत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः। मुमुचुःपुष्पवर्षाणितस्यमूर्ध्निमहात्मनः
गन्धर्वकन्यकादिव्यास्तद्वदप्सरसोवराः। दृष्ट्वा चकमिरे कृष्णं सुस्तुतंशुचिभूषणाः
काश्चिद्गायन्तिविविधंगानंगीतविशारदाः। सम्प्रेक्ष्यदेवकीसूनुंसुन्दरं काममोहिताः

काश्चिद्विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रतः।
सम्प्रेक्ष्य सस्मितं काश्चित्पपुस्तद्वनामृतम्॥ ११॥
काश्चिद्भूषणवर्याणि स्वाङ्गादादाय सादरम्।
भूषयाञ्चक्रिरे कृष्णं कन्या लोकविभूषणम्॥ १२॥

काश्चिद्भूषणवर्याणिसमादायतदङ्गतः। स्वात्मानंभूषयामासुःस्वात्मकैरपिमाधवम्
काचिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिता। चुचुम्ब वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगेक्षणा
प्रगृह्य काचिद्गोविन्दंकरेणभवनंस्वकम्। प्रापयामास लोकादिमायया तस्यमोहिता

तासां स भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः।

बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया ॥ १६ ॥
एव वै सुचिरं कालंदेवदेवपुरे हरिः । रेमे नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्
गते बहुतिथे काले द्वारवत्या निवासिनः । बभूवुर्विह्वला भीता गोविन्दविरहे जना
ततः सुपर्णो बलवान्पूर्वमेव विसर्जितः ।
स कृष्णं मार्गमाणस्तु हिमवन्तं ययौ गिरिम् ॥ १८ ॥
अदृष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम् । आजगामोपमन्युं तत्पुरीं द्वारवतीं पुन
तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणा । आजग्मुर्द्वारकां शुभ्रां भीषयन्त सहस्रश
स तान्सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रम । हत्वा युद्धेन महता रक्षति स्म पुरीं शुभाम्
एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषि । दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गत
तं दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्वे तत्र निवासिन । प्रोचुर्नारायणो नाथ कुत्रास्ते भगवान्हरि
स तानुवाच भगवान्कैलासशिखरे हरिः । रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाहमिहागत
तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततांवर । जगामाकाशगो विप्रा कैलासगिरिमुत्तमम्
ददर्श देवकीसूनुं भवने रत्नमण्डिते । वरासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम् ॥ २७ ॥
उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः । महादेवगणैः सिद्धैर्योगिभिः परिवारितम्
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ सुपर्णः शङ्करं शिवम् । निवेदयामास हरेः प्रवृत्तं द्वारकापुरे ॥ २८ ॥
ततः प्रणम्य शिरसा शङ्करं नीललोहितम् । आजगाम पुरीं कृष्णः सोऽनुज्ञातो हरेण तु
आरुह्य कश्यपसुतं स्त्रीगणैरभिपूजितः । वचोभिरमृतास्वादैर्मानितो मधुसूदन ॥ ३१ ॥
वीक्ष्य यान्तममित्रघ्नं गन्धर्वाप्सरसां वरा । अन्वगच्छन्महायोगं शङ्खचक्रगदाधरम्
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्वा एवाङ्गना हरिः ।
ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम् ॥ ३३ ॥
गते देवेऽसुररिपौ न कामिन्यो मुनीश्वरा । निशेव चन्द्ररहिता विनानेन चकाशिरे
श्रुत्वा पौरजना स्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम् । मण्डयाञ्चक्रिरे दिव्यां पुरीं द्वारवतीं शुभाम्
पताकाभिर्विशालाभि ध्वजैरत्नवहि कृते । मार्गदिभि पुरीं रम्यां भूषयाञ्चक्रिरे जना
अवाद्यन्त विविधान्वादित्रान्मधुरस्वनान् ।

शङ्खान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान्वितेनिरे ॥ ३७ ॥
प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरींद्वारवतींशुभाम् । अगायन्मधुरंगानं स्त्रियोयौवनशोभिताः
दृष्ट्वा ननृतुरीशानं स्थिताः प्रासादमूर्द्धसु । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि
प्रविश्य भगवान् कृष्णस्त्वाशीर्व्वादाभिवर्द्धितः ।
वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः ॥ ४० ॥
सुरम्ये मण्डपे शुभ्रेशङ्खाद्यैःपरिवारितः । आत्मजैरभितोमुख्यैः स्त्रीसहस्रैश्चसम्वृतः
तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्युतः । ॥ ४१ ॥
भ्राजते चोमया देवो यथा देव्या समन्वितः ॥ ४२ ॥
आजग्मुर्देवगन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमव्ययम । महर्षयः पूर्व्वजातामार्कण्डेयादयोद्विजाः
ततः स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेयं समागतम् ।
ननामोत्थाय शिरसा स्वासनञ्च ददौ हरिः ॥ ४४ ॥
सम्पूज्यतानृषिगणान्प्रणामेनसहानुगः । विसर्जयामासहरिर्दत्वा तदभिवाञ्छितान्
तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयंहरिः । स्नातः शुक्लाम्बरो भानुमुपतिष्ठनकृताञ्जलिः
जजाप जाप्यं विधिवत्प्रेक्षमाणो दिवाकरम् ।
तर्पयामास देवेशो देवान् पितृगणान्मुनीन् ॥ ४७ ॥
प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि । पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशम्भूतिभूषणम्
समाप्य नियमं सर्व्वं नियन्ता स स्वयंनृणाम् ।
भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥ ४६ ॥
कृत्वाऽऽत्मयोगं विप्रेन्द्रा! मार्कण्डेयेन चाऽच्युतः ।
कथाम्पौराणिकीं पुण्यां चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः ॥ ५० ॥
अथैतत्सर्व्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म्म महामुनिः ।
मार्कण्डेयो हसन्कृष्णं बभाषे मधुरं वचः ॥ ५१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्म्मभिः शुभैः ।

बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया ॥ १६ ॥
एवं वै सुचिरं कालं देवदेवपुरे हरिः । रेमे नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्
गते बहुतिथे काले द्वारवत्यां निवासिनः । बभूवुर्विह्वलाभीता गोविन्दविरहे जनाः
ततः सुपर्णो बलवान्पूर्वमेव विसर्जितः ।
स कृष्णं मार्गमाणस्तु हिमवन्तं ययौ गिरिम् ॥ १८ ॥
अदृष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम् । आजगामोपमन्युं तत्पुरीं द्वारवतीं पुनः
तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणाः । आजग्मुर्द्वारकां शुभ्रां भीषयन्तः सहस्रशः
स तान्सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रमः । हत्वा युद्धेन महता रक्षति स्म पुरीं शुभाम्
एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः । दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गतः
तं दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्वे तत्र निवासिनः । प्रोचुर्नारायणो नाथ कुत्रास्ते भगवान्हरिः
स तानुवाच भगवान्कैलासशिखरे हरिः । रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाहमिहागतः
तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततां वरः । जगामाकाशगो विप्राः कैलासं गिरिमुत्तमम्
ददर्श देवकीसूनुं भवने रत्नमण्डिते । वरासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम् ॥ २७ ॥
उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः । महादेवगणैः सिद्धैर्योगिभिः परिवारितम्
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ सुपर्णः शङ्करं शिवम् । निवेदयामास हरिं प्रवृत्तं द्वारकापुरे ॥ २८ ॥
ततः प्रणम्य शिरसा शङ्करं नीललोहितम् । आजगाम पुरीं कृष्णः सोऽनुज्ञातो हरेण तु
आरुह्य कश्यपसुतं स्त्रीगणैरभिपूजितः । वचोभिरमृतास्वादैर्मानितो मधुसूदनः ॥ ३१ ॥
वीक्ष्य यान्तममित्रघ्नं गन्धर्वाप्सरसां वराः । अन्वगच्छन्महायोगं शङ्खचक्रगदाधरम्
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्वा एवाङ्गना हरिः ।
ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम् ॥ ३३ ॥
गते देवेऽसुररिपौ न कामिन्यो मुनीश्वराः । निशेव चन्द्ररहिता विनाऽनेन चकाशिरे
श्रुत्वा पौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम् । मण्डयाञ्चक्रिरे दिव्यां पुरीं द्वारवतीं शुभाम्
पताकाभिर्विशालाभिर्ध्वजै रत्नैस्तथाहि हृते । प्राग्विदिभिः पुरीं रम्यां भूषयाञ्चक्रिरे जनाः
अवाद्यन्त विविधान्वादित्रा मधुरस्वनान् ।

एतदाख्याहि मे सर्वं प्रसादाद् द्विजसत्तम !॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणुष्वैकमना भूत्वा तीर्थात्तीर्थान्तरं महत्।
श्रुते यस्य प्रभावे तु मुच्यते वाचिकादघात् ॥ ५ ॥
वाचिकैर्मानसैर्वापि शारीरैश्च विशेषतः।
कीर्त्तनात्तस्य तीर्थस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ६ ॥

पञ्चक्रोशप्रमाणं तु तच्च तीर्थंमहीपते !। भुक्तिमुक्तिप्रदंदिव्यंप्राणिनांपापकर्मिणाम्
रेवाया दक्षिणेकूलेपर्वतोभृगुसञ्ज्ञितः। तस्यमूर्ध्नि च तत्तीर्थंस्थापितंचैवशम्भुना
शूलभेदेति विख्यातंत्रिपुलोकेपुभूपते। तत्रस्थिताश्चये वृक्षास्तीर्थाच्चैवचतुर्द्दिशम्
पतितानिलयंयान्ति रुद्रस्यनात्रसंशयः। मृतास्तत्रैवयेकेचिज्जन्तवो भुवि पक्षिणः
ते यान्तिपरमंलोकंतत्रतीर्थेनसंशयः। पातालान्निःसृता गङ्गाभोगवतीतिसञ्ज्ञिता

निष्क्रान्ता शूलभेदाच्च सर्वपापक्षयङ्करी।
या सा गीर्वाणनाम्न्यन्या वहेत्पुण्या महानदी ॥ १२ ॥
पतिता कुण्डमध्ये तु यत्र भिन्नं त्रिशूलिना।
शम्भुना च पुरा तात ! उत्पाद्य च सरस्वती ॥ १३ ॥
सा तत्र पतिता राजन्प्राचीनाघविमोचिनी।
भास्वत्याश्रितयं यत्र शिला गीर्वाणसञ्ज्ञिता ॥ १४ ॥

तत्र तीर्थे च तत्तीर्थं न भूतं न भविष्यति। केदारश्च प्रयागश्च कुरुक्षेत्रं गया तथा

अन्यानि च सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
पञ्च स्थानानि तीर्थानि पृथग्भूतानि यानि च ॥ १६ ॥
वक्ष्यामि च समासेन एकैकं च पृथक्पृथक्।
गया नाम्न्यां यथा पुण्या चक्रतीर्थं च तत्समम् ॥ १७ ॥

धर्मारण्ये यथा कूपं शूलभेदं च तत्समम्। ब्रह्मयूपं यथा पुण्यं देवनद्यास्तथैव च

यथा गयाशिरः पुण्यं सुराणां च यथा शिला।

यथा च पुष्करं स्थानं मार्कण्डहृद एव च ॥ १६ ॥

दत्त्वा पिण्डोदकं तत्र पितृणां च तथाक्षयम् । यस्तत्र कुरुते श्राद्धं तोयं पिबति नित्यशः
मुच्यते सर्वपापैस्तु उरगः कञ्चुकैरिव । अनिन्द्यान्पूजयेद्विप्रान्दम्भक्रोधविवर्जितान्
त्रयोदशादिने स्नात्वा त्रयोदशगुणं भवेत् । अभ्यर्चितं सुरं दृष्ट्वा गणनाथं गजाननं
सर्वे विघ्ना विनश्यन्ति दृष्ट्वा कम्बलक्षेत्रपम् । पूजयेत्परया भक्त्या शूलपाणिं महेश्वर

दक्षस्य पूर्वभागे तु उमा पूज्या प्रयत्नतः ।

मार्कण्डेशं ततो भक्त्या पूजयेद्गुहवासिनम् ॥ २४ ॥

मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्ब्रह्महत्यासमन्विते । गुहामध्ये प्रविष्टस्तु जपेन्मृत्युञ्जयं शुभ
नीलपर्वतजं पुण्यं पञ्चाशेन लभेत सः । निवसन्ति तत्र नित्यं त्वादित्यमरुतः सा
सर्वदेवमयस्थानं कोटिलिङ्गमनुत्तमम् । यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संक्षयम्

तथा पापानि नश्यन्ति शूलभेदस्य दर्शनात् ।

मध्यभो दृश्यतेऽद्यापि प्रत्ययो ह्यवनीपते ॥ २८ ॥

चित्कुलिङ्गालिङ्गम चैवस्वच्छे भानवोगतः । द्वितीयः प्रत्ययस्तत्र तैलबिन्दुसमन्वि
एष हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः । यः स्मरेच्छूलभेदं तु त्रिकालं नियमेव ■
मपुनर्भवे साक्षात्स महाम्बुमत्तरोत्तरः । नकरूपं चिन्तयामासपूर्वेऽह त्रिदशैरपि
गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदोषप्रमुक्तमम् ।
सर्वतीर्थमयं तीर्थं शूलभेदं जनेश्वर । श्रुते यस्य प्रभावे तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३३ ॥
शूलभेदं मया तात लेशात्कथितं तव । यः शृणोति नरो भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शूलभेदप्रशंसावर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

शूलभेदनामकथनेऽन्धकप्रशंसनवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एष एव पुरा प्रश्नः परिपृष्टो महेश्वरम् । राज्ञाचोत्तानपादेनऋषिदेवसमागमे ॥ १ ॥

उत्तानपाद उवाच

इदं तीर्थं महापुण्यं सर्वदेवमयं परम् । गुह्याद्गुह्यतरं स्थानं न दृष्टं न श्रुतं हर !॥

शूलभेदं कथं जातंकेनैवोत्पादितंपुरा । माहात्म्यंतस्यतीर्थस्यविस्तराच्छंसमेप्रभो

ईश्वर उवाच

आसीत्पुरा महावीर्योदानवो बलदर्पितः । मर्त्ये न तादृशःकश्चिद्विक्रमेण बलेन वा

सूनुर्ब्रह्मसुतस्याऽयमन्धकोनामदुर्मदः । निजस्थानेवसन्पापःकुर्वन्राज्यमकण्टकम्

हृष्टपुष्टो वसन्मर्त्ये स सुरैर्नाभिभूयते । भवनंतस्यपापस्य वह्नेरुपवनं यथा ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्धकः काले चिन्तयामासभारत । तोषयामि महादेवंयेनसानुग्रहो भवेत्

प्रार्थयामि वरंदिव्यं योमेमनसिवर्त्तते । परंसनिश्चयं कृत्वासोऽन्धको निर्गतोगृहात्

रेवातटं समासाद्य दानवस्तपसि स्थितः ।

उग्रं तपश्चचाराऽसौ दारुणं लोमहर्षणम् ॥ ६ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं स निराहारोऽभवत्ततः । द्वितीयं तु सहस्रं स न्यवसद्वारिभोजनः

तृतीयं तु सहस्रं स धूमपानरतोऽभवत् । चतुर्थं वर्षसाहस्रंयोगाभ्यासेन संस्थितः

कोऽपीह नेदृशं चक्रेतपःपरमदारुणम् । अस्थिचर्माऽवशेषोऽसौ यावत्तिष्ठतिभारत

तस्य मूर्ध्नि ततो राजन्धूमवर्त्तिर्विनिःसृता ।

देवलोकमतीत्याऽसौ कैलासं व्याप्य संस्थिता ॥ १२ ॥

तावद्देवसमीपस्था उमावचनमब्रवीत् । कोऽस्त्ययं मानुषेलोकेतपसोग्रेणसंस्थितः

चतुर्वर्षसहस्राणि व्यतीयः परमेश्वर !। न केनाऽपीदृशं तप्तं तपो दृष्टं श्रुतं तथा ॥

अयनांकुरये देव विमत्रनियमाऽन्विते । सर्वस्य दन्से शीघ्रं स्वमल्पेन तपसाविभो नाक्षराङ्गं करिष्येऽन्यथा महमहेश्वर । याचमोत्याऽत्रनेहो यद्दानघोभक्तवत्सल

ईश्वर उवाच

साधुसाधु महादेवि सुवन्लक्षणलक्षिणे । अहं तंनधिआमामिहिस्वगं दानवेश्वरम्

योगाभ्यासे स्थितो भद्रे ध्यायन्त परम पदम् ।
तत्रागच्छ मया सार्द्धं यत्र तप्यत्यसौ तप ॥ १६ ॥

उमया सहितो देवो गतस्तत्र महेश्वर । अन्धिपक्षांयशीनन्तु दृष्टो देवेन शम्भुना प्रयुवाच प्रसन्नोऽसौ देवदेवो महेश्वर । भोभो कष्ट इम भीमं दारुणंलोमहर्षणम् ईदृशश्च तपो घोरकस्माद्धम त्वया कृतम् । यत्दात्स्यास्यहवत्स यत्नोमनसिवर्तते

अन्धक उवाच

यदि तुष्टोऽसिमे देवयद्योयदि शङ्कर । सुरान्सर्वान्धिनेत्स्यामित्वत्प्रसादान्महेश्वर

ईश्वर उवाच

स्वप्नेऽपि त्रिदशा सर्वे न वाद्वध्या कदाचन ।
मनस्भाव्य न वक्तव्य मनसो यत्र रोचते ॥ २४ ॥
अन्य किमपि याचस्व यत्ते मनसि वर्तते ।
स्वर्गे वा यदि वा मर्त्ये पातालेषु च संस्थितान् ॥ २५ ॥
मर्त्येषु विविधान्भोगान्भोक्ष्यसि त्वं यथेप्सितान् ।
कुरु निष्कण्टक राज्य स्वग देवपतिर्यथा ॥ २६ ॥
देवस्य वचन श्रुत्वा सोऽन्धको विमना स्थित ।
वृथा क्लेशश्च मे जातो न किञ्चित्साधित मया ॥ २७ ॥
निश्वास परम मुक्त्वा निपपात धरातले ।
मूर्च्छितोयथावृक्षोनिरुच्छ्वासस्तदाभवत् ॥ २८ ॥

मूर्च्छापन्न ततो दृष्ट्वा देवी वचनमब्रवीत् । य कामकामयत्येष तमस्मै देहि शङ्कर

भक्तानुपेक्षमाणस्य सवाऽकीर्तिर्भविष्यति ॥ ३० ॥ –

ईश्वर उवाच

यदि दास्ये वरं देवि इच्छाभूतं कदाचन। ततो न मंस्यते विष्णुं न ब्रह्माणं न मामपि

उच्चत्वमाप्तो देवेशि! अन्यानपि सुरासुरान्॥ ३२॥

देव्युवाच

कमप्युपायमाश्रित्य उत्थापय महेश्वर!। विष्णुवर्जं सुरान्सर्वाञ्जयस्वेति वरं वद॥

ईश्वर उवाच

उपायः शोभनो देवि! यो मे मनसि वर्त्तते।

तमेवास्मै प्रदास्यामि यस्त्वया कथितो वरः॥ ३४॥

ततोऽमृतेन संसिक्तः स्वस्थोऽभूत्तत्क्षणादयम्।

तथा पुनर्नवो जातः सर्वाऽवयवशोभितः॥ ३५॥

शृणुष्वैकमनाभूत्वागृहाण वरमुत्तमम्। विष्णुवर्जंप्रदास्यामियत्तवाभिमतंप्रियम्

सर्वं च सफलं तुभ्यं मा धर्मस्तेऽन्यथा भवेत्।

ददामीति वरं तुभ्यं मन्यसे यदि चाऽसुर!॥ ३७॥

विष्णुवर्जं सुरान्सर्वाञ्जेष्यसि त्वं च मां विना॥ ३८॥

अन्धक उवाच

भवत्वेवमिति प्राह चक्रमास्थायकेवलम्। विष्णुवर्जं विजेष्येऽहंस्वबलेन महेश्वर!

कृतार्थोऽहं हि सञ्जात इत्युक्त्वा प्रणतिं गतः।

गच्छ देवो मया सार्द्धं कैलासशिखरं वरम्॥ ४०॥

वृषपुङ्गवमारुह्य देवोऽसावुमया सह। वरंदत्त्वा स तस्यैवंतत्रैवान्तरधीयत॥ ४१

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे अन्धकवरप्रदानवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

शचीहरणवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

स दानवोवरं लब्ध्वाजगामस्वपुरं प्रति । ददर्श स्वपुरंराजञ्छोभितविविधैर्वरैः
उद्यानैश्चैव विविधैः कदलीषण्डमण्डितैः । पनसैर्लकुचैश्चैवाम्रातैराम्रैश्च चम्पकैः
अशोकैर्नारिकेरैश्चमातुलिङ्गैः सदाडिमैः । नानावृक्षैश्चशोभाढ्य तडागैरुपशोभितम्
देवतायतनैर्दिव्यैर्ध्वजमालासुशोभितैः । वेदाध्ययननिर्घोषैर्मङ्गलाद्यैर्विनादितम् ॥

प्राविशद्भवने दिव्ये काञ्चने रुक्ममालिनि ।
अपश्यत्स सुतान्भार्याममात्यान्दासभृत्यकान् ॥ ५ ॥

ततो जयप्रदान्सर्वानितश्चेतश्च धावतः । हृष्टरोमा च प्रकुर्वाणाञ्जयन्तीभिरथार्के

केचित्तोरणमाबध्य केचित्पुष्पाण्यथाकिरन् ।
मातुलिङ्गकराश्चान्ये धावन्ति दानवं प्रति ॥ ७ ॥

पुरे जनाश्च दृश्यन्ते भाजनैरन्नपूरितैः । पूर्णहस्ताः प्रदृश्यन्ते तत्रैव बहवो जनाः
साक्षतैर्भाजनैस्तत्रशतसाहस्रयोषितः । मन्त्रान्पठन्ति विप्राश्चमङ्गलान्यपियोषितः

अमात्याश्चैव भृत्याश्च गजाश्चार्ढकियनि च ।
वर्धापयन्ति ते सर्वे ये केचित्पुरवासिनः ॥ १० ॥

दृष्ट्वा तुष्टोऽवसत्तत्र सचिवैः सह सोऽन्धकः । ददर्श सजगत्सर्वं तुरङ्गाश्चपदातिकान्

तथैव विविधान्कोशांस्तत्र काञ्चनपूरितान् ।
महिषीर्गा वृषांश्चैवापश्यच्छत्राण्यनेकधा ॥ १२ ॥

स एवमन्धकस्तत्र कियन्त कालमावसत् । दृष्ट्वा तुष्टोऽवसन्मर्त्ये स सुरैर्नाभ्यभूयत

वरं लब्धं तु तं ज्ञात्वा शङ्किताः स्वर्गवासिनः ।
एकीभूताश्च ते सर्वे वासवं शरणं गताः ॥ १४ ॥

शक्र उवाच

कथमागमनंवोऽत्र सर्वेषामपिनाकिनाम् ।
कस्माद्वो भयमुत्पन्नमागताःशरणं कथम ।
ततस्ते ह्यमराः सर्वे शक्रमेतद्वचोऽब्रुवन् ॥ १६ ॥

देवा ऊचुः

सुरनाथान्धकोनाम दैत्यः शम्भुवरोर्जितः । अजेयःसर्वदेवानांकि नुकार्यमतः परम्
तत्त्वं चिन्तय देवेश! क उपायो विधीयताम् ।
इत्थं वदन्ति ते देवाः शक्राग्रे मन्त्रणोद्यताः ॥ १८ ॥
मन्त्रयन्ति च यावद्वैतावच्चारमुखेरितम् । ज्ञात्वातत्र स दैत्योवंदानवोनिर्गतोगृहात्
एकाकी स्यन्दनाऽऽरूढ आयुधैर्बहुभिर्वृतः । दुर्गमं मेरुपृष्ठं स लीलयैव गतो नृप
स्वर्णप्राकारसंयुक्तं शोभितं विविधाश्रमैः ।
दुर्गमं शत्रुवर्गस्य तदा पार्थिवसत्तम !॥ २१ ॥
प्रविवेशाऽऽसुरस्तत्र लीलया स्वगृहे यथा । वृत्रहाभयमापन्नःस्वकीयं चासनंददौ
उपविष्टोऽन्धकस्तत्र शक्रस्यैवाऽऽसने शुभे ।
आस्थानं कलयामास सर्वतस्त्रिदशावृतम् ॥ २३ ॥

शक्र उवाच

किं तवाऽऽगमनं चाऽत्र किं कार्यं कथयस्व मे ।
यदस्मदीयं चित्तं हि तत्ते दास्यामि दानव ! ॥ २४ ॥

अन्धक उवाच

नाऽहं वै कामयेकोशंनगजांश्चसुरेश्वर !। स्वकीयंदर्शयस्वाऽद्यस्वर्गंशृङ्गारभूषितम्
ऐरावतं महानागं तं चैवोच्चैः श्रवोहयम् । उर्वश्यादीनि रत्नानि मम दर्शय गोपते
पारिजातकपुष्पाणि-वृक्षजातानिनेकशः ।
वादित्राणि च सर्वाणि दर्शयस्व शचीपते !॥ २७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शक्रश्चिन्तितवानिदम् ।

योऽसु निहन्ति पाप्मानं न मरामि कर्हिचित् ॥ २८ ॥
नास्ति यस्मात् कश्चित् स्वर्गलोकस्य दुःखितः ।
भयग्रस्तो दृढाचन्द्राद्दिव्याप्सरोगणः ॥ २९ ॥

रङ्गभूमावुपाविश्य कारयामास ताण्डवम् । उपविश्य सुरान्सर्वान्समभ्यर्च्य किं
उर्वश्याद्या अप्सरसो गीतवादित्रयोगेन । मरुत्तु पुरतस्तस्य समर्थाः पङ्क्तिशो
न व्यभ्राम्यत तथैव दृष्ट्वाप्सरसः तदा । शची प्रतिमरूपस्य रसकामनमरः

गृहीत्वा मम भार्यां स प्रस्थितः स्वपुरं प्रति ।
तत प्रवृत्ते युद्धमपरस्परं सुरैः सह ॥ ३३ ॥
तेन देवगणाः सर्वे ध्वस्ता पार्थिवसत्तम ।
महाग्रामे विविधैः शस्त्रैश्चक्रगदादिभिः ॥ ३४ ॥

सन्तापिता सुरा महाक्षत्रनीलान्तेऽस्मिन् । सर्वेऽपि सन्नाः सता महाग्राममृ
यथा सिंहो गजान्सर्वान्विजित्य विनश्यत्येवम् । तद्देवैर्देवराजिता सत्वपराक्रमुख

बालोऽधिपो यथाग्रामे हरेज्ज्ञान पादयेश्च तान् ।
स्वैरमाक्रम्य गृह्णाति कोशग्रासानि चाऽमरः ॥ ३७ ॥

गत ॥ पश्यत्यात्मान प्रज्ञामन्तापनेन च । गृहीत्वा भार्या समतोषैस्तानयोत्त

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
शूलभेदमाहात्म्ये शचीहरणवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

सब्रह्मदेवैर्विष्णोरुपस्थानमनुस्वलोकगमनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

गीर्वाणाश्च ततः सर्वे ब्रह्माणं शरणं गताः । गजैर्गिरिवराकारैर्हयैश्चैव गजोपमैः ॥
स्यन्दनैर्नगराकारैः सिंहशार्दूलयोजितैः । कच्छपैर्महिषैश्चान्यैर्मकरैश्च तथाऽपरे
ब्रह्मलोकमनुप्राप्ता देवाःशक्रपुरोगमाः । दृष्ट्वा पद्मोद्भवं देवं साष्टाङ्गं प्रणताः सुराः

देवा ऊचुः

जयदेव जगद्वन्द्य जय संसृतिकारक !। पद्मयोने सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताः ॥ ४॥
सोद्वेगं भाषितं श्रुत्वा देवानां भाविताऽऽत्मनाम् । मेघगंभीरयावाचादेवराजमुवाचह
किमत्राऽऽगमनं देवाः सर्वे गीर्वाणसत्तमाः । केनापमानिताःसर्वेशीघ्रंमेकथ्यतांस्वयम्

देवा ऊचुः

अन्धकाख्यो महादैत्यो बलवान्पद्मसम्भव ।
तेन देवगणाः सर्वे धनरत्नैर्वियोजिताः ॥ ७ ॥
हत्वा देवगणांस्तावदसिचक्रपरश्वधैः ।
गृहीत्वा शक्रभार्यां स दानवोऽपि गतो बलात् ॥ ८ ॥
देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मालोकपितामहः । चिन्तयामासराजेन्द्रवधार्थंदानवस्यह
अवध्यो दानवः पापः सर्वेषां वो दिवौकसाम् ।
स त्राता सर्वजगतां नान्यो विद्येत कुत्रचित् ॥ १० ॥
एवमुक्ताः सुराः सर्वे ब्रह्मणा तदनन्तरम् । ब्रह्माणं ते पुरस्कृत्य गतायत्र स केशवः
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्माद्याश्चक्रपाणिनम् ॥ ११ ॥

देवा ऊचुः

जय त्वं देवदेवेश लक्ष्म्या वक्षस्थलाऽऽश्रितः । असुरक्षय देवेश वयं ते शरणं गताः

स्तूयमानः सुरैः सर्वैर्ब्रह्माद्यैश्च जनार्दनः । संप्रहृष्टमना भूत्वा सुरानिदमुवाच ह

श्रीवासुदेव उवाच

स्वागतं देवविप्राणां सुप्रभाताऽद्य शर्वरी ।
किं कार्यं प्रोच्यतां शीघ्रं कस्य रुष्टा दिवौकसः ॥ १४ ॥
किं दुःखं कश्च सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ।
कथयन्तु महाभागाः कारणं यन्मनोगतम् ॥ १५ ॥
पराभवः कृतो येन सोऽद्य यातु यमालयम् । एवमुक्तास्तु कृष्णेन कश्यपाद्याः सुरसत्त
दर्शयन्तः स्वकान्देहाँल्लज्जमानाः शचीसुराः ।
हृतराज्या ह्यन्धकेन कृता निस्तेजसः प्रभो ॥ १७ ॥
पितेव पुत्रं परिरक्ष देव अहीन्द्रशायिन् सह पुत्रपौत्रैः ।
तथेति चोक्त्वा कमलासनेन सुरासुरैर्वन्दितपादपद्मः ॥ १८ ॥
शङ्खं चक्रं गदां चापं सङ्गृह्य परमेश्वरः । उत्थितो भोगपर्यङ्काच्छेषानां पुरतस्त

श्रीवासुदेव उवाच

पाताले यदि वा स्वर्गे नाके वा यदि तिष्ठति । हनिष्यामि महापापं येन सन्तापिताः सुर
स्वं स्थानं यान्तु गीर्वाणाः सन्तुष्टा भावितौजसः ।
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्माद्यास्ते महात्मनः ॥ २१ ॥
स्वयानैस्तु हरिं नत्वा हृदि तुष्टा दिवं ययुः ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे विष्णुप्रार्थनमनुगीर्वाणस्वर्गगमनवर्णनंनाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अन्धकवधतद्वरप्रदानवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

कस्मिन्स्थानेऽवसद् देव! सोऽन्धको दैत्यपुङ्गवः ।
सर्वान्देवांश्च निर्जित्य कस्मिन्स्थाने समास्थितः ॥ १ ॥

श्रीमहेश उवाच

प्रविष्टो दानवोयत्रकथयामिनराधिप !। पातालकोकमाश्रित्यकन्याविध्वंसतेतुसः
तत्र स्थितं तं विज्ञाय चापमादाय केशवः ।
व्यसृजद् बाणमाग्नेयं दह्यतामिति चिन्तयन् ॥ ३ ॥
दह्यमानोऽग्निनासोऽपिवारुणास्त्रंससन्दधे । वारुणास्त्रेण महताआग्नेयंशमितंतदा
ततोऽसौ चिन्तयामास केन बाणो विसर्जितः ।
कस्यैषा पौरुषी शक्तिः को यास्यति यमालयम् ॥ ५ ॥
ततोऽन्धको मृधेक्रुद्धोबाणमार्गेणनिर्गतः । सदृष्ट्वाबाणमार्गेणचापहस्तंजनार्द्दनम्

अन्धक उवाच

न शर्म लप्स्यसे ह्यद्य मया दृष्ट्याऽभिवीक्षितः ।
न शक्नोषि तथा गन्तुं नागः शार्दूलदर्शनात् ॥ ७ ॥
आगच्छति यथा भक्ष्यं मार्जारस्य च मूषिकः ।
न शक्नोषि तथा यातुं संस्थितस्त्वं ममाऽग्रतः ॥ ८ ॥
अहं त्वांप्रेषयिष्यामियममार्गेसुदारुणे । अहमन्वेषयिष्यामिकिलयास्यामितेगृहम्
उपनीतोऽसि कालेन संग्रामेमम केशव । येत्वयानिर्जिताः पूर्वं दानवाअप्यनेकशः
न भवन्ति पुमांसस्तेस्त्रियस्ताश्चैव केशव । परं न शस्त्रसंग्रामंकरिष्यामित्वयासह
वदतो दानवेन्द्रस्य न चुकोप स केशवः । अयुध्यमानं तं दृष्ट्वाचिन्तयामास ...

अन्धक उवाच

न तत्र सिद्ध्यते कार्यं देवं प्रति महेश्वरम् ॥ २६ ॥

श्रीभगवानुवाच

पुत्र त्वं शिखरं गत्वा धूनयस्व बलेन च ॥ ३० ॥
विधूते तत्र देवेशः कोपं कर्त्ता सुदारुणम् । कोपितःशङ्करोरौद्रं युद्धंदास्यतिदानव
विष्णुवाक्यादसौ पापो गतो यत्र महेश्वरः ।
कैलासशिखरं प्राप्य धुनोति स्म मुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥
धूनिते तत्र शिखरे कम्पितंभुवनत्रयम । निपेतुः शिखराग्राणिकम्पमानान्यनेकशः
चत्वारः सागराः क्षिप्रमेकीभूता महीपते । निपेतुरुल्कापाताश्चपादपा अप्यनेकशः
उमया सहितो देवो विस्मयंपरमंगतः । गाढमालिङ्ग्य गिरिजा देवं वचनमब्रवीत्
किमर्थं कम्पते शैलः किमर्थं कम्पतेधरा । किमर्थंकम्पते नागो मर्त्यःपातालमेवच
किं वा युगक्षयो देव तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ३६ ॥

ईश्वर उवाच

कस्यैषा दुर्मतिर्जाता क्षिप्तः सर्पमुखे करः ।
ललाटे च कृतं चर्म्म स यास्यति यमालयम् ॥ ३७ ॥
कैलासमाश्रितो येन सुप्तोऽहंयेनबोधितः । तं वधिष्येन सन्देहसम्मुखोयाभवेद्यदि
चिन्तयामास देवेशो ह्यन्धकोऽयं न संशयः ।
उपायं चिन्तयामास येनाऽसौ वध्यते क्षणात् ॥ ३६ ॥
आगताश्च सुराःसर्वे ब्रह्माद्याः वसुभिः सह । रथं देवमयं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम्
केचिद्देवाः स्थिताश्चक्रे केचित्तुण्डाग्रपार्श्वयोः ।
केचिन्नाभ्यां स्थिता देवाः केचिद्धुर्येषु संस्थिताः ॥ ४१ ॥
धुरीषु निश्चलाः केचित्केचिद्यूपेषु संस्थिताः ।
केचित्स्यन्दनसंस्तम्भाः केचित्स्यन्दनवेष्टकाः ॥ ४२ ॥
आमलसारकेऽन्येऽपि अन्येऽपि कलशे स्थिताः ।

रिपोर्भयङ्करं दिव्यं ध्वजमालाविशोभितम् ॥ ४३ ॥

रथं देवमयं कृत्वा तमारूढो जगद्गुरुः । निर्ययौ दानवो यत्र कोपाविष्टो महेश्वरः
तिष्ठ तिष्ठेत्युवाचाद्य च प्रयास्यसि दुर्मते ।। शरासनं करे गृह्य शरान्धिक्षेप दानवे

दानवेऽधिष्ठिते युद्धे शरैश्चिच्छेद सायकान् ।

शरासारेण तत्रैव सन्धकारं ह्यादितस्तदा ॥ ४४ ॥

न तत्र दृश्यते सूर्यो नाकाशं न च चन्द्रमाः । आग्नेयमस्त्रं व्यसृजद्दानवोऽपि रिपुं प्रति
दह्यमाना शराङ्गारैस्तत्रस्थाः सर्वदेवताः । रक्ष रक्ष महादेव दह्यमानास्तु दानवात्

ततो देवाधिदेवोऽसौ वारुणास्त्रमथोऽसृजत् ।

वारुणास्त्रेण निमिषादाग्नेयं वारितं तदा ॥ ४६ ॥

दानवेन ततो मुक्तं वायव्यास्त्रं रणाजिरे । वारुणं वायुना तत्र वायव्यास्त्रविनाशितम्
देवो व्यसर्जयत्सार्पं क्रोधाविष्टेन चेतसा । सार्पं नाशितवान् सर्पैस्त्वन्तकसंशयः
दानवेन ततो मुक्तं गरुडास्त्रं च लीलया । गारुडास्त्रं च तद्दृष्ट्वा सार्पं नैव व्यदृश्यत
ततो देवाधिदेवेशेन नारसिंहं विसर्जितम् । नारसिंहास्त्रवेगेन गारुडास्त्रं प्रणाशितम्
अस्त्रमस्त्रेण शाम्येत न बाध्येत परस्परम् । महद्युद्धमभूत्तत्र सुरासुरभयङ्करम् ॥
चक्रनाराचैर्भिन्दिपालैस्तोमरैः खड्गमुद्गरैः । अस्त्रैश्च शस्त्रैस्तथा भल्लैः कर्णिकारैश्च शोभनैः

एवं न शक्यते हन्तुं दानवो विविधायुधैः ।

गदा ज्वालाकरालाश्च खड्गनाराचतोमराः ॥ ५६ ॥

युगान्तेन विमुक्तास्तु समरे दानवं प्रति । न सस्पृशुस्तस्य गात्राणि वेगीडम्बुरिव

आयुधानि ततस्त्यक्त्वा बाहुयुद्धमुपस्थितौ ।

करं करेण संगृह्य प्रहरन्तौ स्वमुष्टिभिः ॥

रणप्रयोगैर्युध्यन्तौ युयुधाते शिवान्धकौ ॥ ५८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अन्धकं प्रति देवेशश्चिन्तयामास निग्रहम् ।

हनिष्यामि न सन्देहो दुष्टात्मानं न संशयः ॥ ५९ ॥

स शिवेन यदा क्षिप्तः पतितः पृथिवीतले । ऊर्ध्वबाहुरधोवक्त्रो दानवोनृपसत्तम
क्रोधाधिष्ठेनदेवेशःसंग्रामेदेवशत्रुणा । कक्षयोःकुहरेक्षिप्त्वाबन्धेनाऽऽक्रम्यपीडितः

निस्पन्दश्चाऽभवद्देवो मूर्च्छायुक्तो महेश्वरः ।
मूर्च्छापन्नं तु तं ज्ञात्वा चिन्तयामास दानवः ॥ ६२ ॥

हाहाकष्टं कृतं मेऽद्यदुष्कृतंपापकर्मणा । किंकरोमिकथंकर्मकस्मिन्स्थानेतुमोचये
गृहीत्वादेवमुत्सङ्गे गतः कैलासपर्वतम् । शय्यायांशङ्करंन्यस्यनिर्ययौदैत्यराट्ततः
शय्यायां पतितोदेवः प्रपेदे वेदनांततः । तावद्ददर्श चात्मानं स्वकीयभवनस्थितम्
पराभवः कृतोमह्यं कथं तेन दुरात्मना । क्रोधावेगसमाविष्टो निर्ययौ दानवम्प्रति

आयसीं लगुडीं गृह्य प्रभुर्भारसहस्रजाम् ।
दानवं च ततो दृष्ट्वा प्राक्षिपत्तस्य मूर्द्धनि ॥ ६७ ॥

खड्गेनताडयामास दानवः प्रहसन्रणे । देवेनाथस्मृतं चाऽस्त्रंकौच्छेराख्यंमहाहवे
दीप्यमानंसमुत्सृज्यहृदयेताडितःक्षणात् । ततः स ताडितस्तेन रुधिरोद्गारमुद्वमन्
पतितोऽधोमुखोभूत्वा ततः शूलेन भेदितः । पुनश्च देवदेवेन शूलेन छिद्लीकृतः ॥

शूलाग्रेऽसौ स्थितः पापो भ्रान्तवांश्चक्रवत्तदा ।
ये ये भूम्यां पतन्ति स्म तत्कायाद्रक्तबिन्दवः ॥ ७१ ॥

ते ते सर्वे समुत्तस्थुर्दानवाःशस्त्रपाणयः । व्याकुलस्तुततोदेवो दानवेन तरस्विना

देवेनाऽथ स्मृता दुर्गा चामुण्डा भीषणानना ।
आयाता भीषणाकारा नानायुधविराजिता ॥ ७३ ॥
महादंष्ट्रा महाकाया पिङ्गाक्षी लम्बकर्णिका ।
आदेशो दीयतां देव! को यास्यति यमालयम् ॥ ७४ ॥

ईश्वर उवाच

पिबास्य रुधिरं भद्रे यथेष्टं दानवस्य च । निपतद्रुधिरंभूमौदुर्गेगृह्णीष्व मा चिरम्
निहन्मि दानवंयावत्साहाय्यंकुरुसुन्दरि । एवमुक्ता तु सा दुर्गा पपौचरुधिरंततः
निहतादानवाःसर्वे देवेशेन सहस्रशः । अन्धकोऽपिचतान्दृष्ट्वा दानवाननिपातम्

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शूलभेदोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अन्धकं तु निहत्याथ देवदेवो महेश्वरः। उमया सहितो रुद्रः कैलासमगमन्नगम् ॥
आगताश्चततोदेवा ब्रह्माद्याश्चसवासवाः। हृष्टास्तुष्टाश्चतेसर्वंप्रणेमुःपार्वतीपतिम्

ईश्वर उवाच

उपाविशन्तु ते सर्वे ये केचन समागताः। निहतो दानवोह्येष गीर्वाणार्थे पितामह
रक्तेन तस्य मे शूलं निर्म्मलं नैव जायते। शुभव्रततपोजप्यरतो ब्रह्मन्मया हतः ॥
कर्तुमिच्छाम्यहं सम्यक्तीर्थयात्रां चतुर्मुख !।
आगच्छन्तु मया सार्द्धं ये यूयमिह सङ्गताः ॥ ५ ॥
इत्युक्त्वादेवदेवेशःप्रभासंप्रतिनिर्ययौ। प्रभासाद्यानितीर्थानि गङ्गासागरमध्यतः
अवगाह्यापिसर्वाणि नैर्मल्यंनाभवन्नृप !। नर्मदायांततो गत्वा देवोदेवैः समन्वितः
उत्तरं दक्षिणं कूलमवगाहत्प्रियव्रतः। गतस्तु दक्षिणे कूले पर्वते भृगुसञ्ज्ञितम् ॥
तत्र स्थित्वा महादेवो देवैः सह महीपते !।
भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा चिरं श्रान्तो निर्विण्णो निषसाद ह ॥ ६ ॥
मनोहारि यतः स्थानं सर्वेषां वै दिवौकसाम्।
तीर्थं विशिष्टं तन्मत्वा स्थितो देवो महेश्वरः ॥ १० ॥
गिरिं विव्याध शूलेन भिन्नं तेन रसातलम्।
निर्मलं चाऽभवच्छूलं न लेपो दृश्यते क्वचित् ॥ ११ ॥
देवैराह्वानितातत्र महापुण्याच भारती। पर्वतान्निःसृता तत्र महापुण्यासरस्वती
द्वितीयःसङ्गमस्तत्र यथा वेण्यांसितासितः। तत्रब्रह्मास्वयंदेवोब्रह्मेशंलिङ्गमुत्तमम्
संस्थापयामासपुण्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम्। तस्ययाम्येदिशोभागेस्वयंदेवोजनार्द्दनः

तिष्ठतेऽधसदातत्र विष्णुपादाग्रसंस्थिना ।अम्भसोनभवे मार्गं कुण्डमध्यस्थितस्य च
शूलाग्रेण कृता रेखा ततस्तोय वहेन्नृप ।। तत्तीर्थं च गत यत्र यत्र रेवा महानदी

जललिङ्ग महापुण्य धनतीर्थं नृपोत्तम ।।
शूलभेदे च दवेश स्नान कुर्याद्यथाविधि ॥ १७ ॥

आत्मानंमन्यतेशुद्ध न किञ्चित्कल्मषदृमम् । तस्यैवोत्तरकाष्ठायादेवदेवोजगद्गुरु

आत्मना देवदेवेश शूलपाणि प्रतिष्ठित ।
सर्वतीर्थेषु तत्तीर्थं सर्वदेवमय परम् ॥ १९ ॥

सर्वपापहर पुण्य सर्वदु खप्रमुत्तमम् । तत्र तीर्थे प्रतिष्ठाप्य देवदेव जगद्गुरु ॥

रक्षापालास्ततो मुक्त्वा शत चाष्टविनायकान् ।
क्षेत्रपाला शत साष्ट तद्रक्षन्ति प्रयत्नत ॥ २१ ॥
विघ्नास्तस्योपजायन्ते यस्तत्र स्थातुमिच्छति ।
केचित्कुटुम्बचिन्तासु व्यग्रा केचित्कृषीषु च ॥ २२ ॥

केचित्सभाप्रकुर्वन्तिकेचिद्द्रव्यार्जनेरता । परोक्षगादकुर्वन्तिकेऽपिहिंसारता सदा
परदाररता केचित्केचिद्वृत्तिविहिंसका । अन्ये केचिद्दरन्त्येव कथतीर्थेषु गम्यते
क्षुधया पीड्यते भार्या पुत्रभृत्यादयस्तदा । मोहजालेषु गोऽप्य ते एवं देवगणैनरा
पापाचाराश्रयेमर्त्या स्नान तत्र न जायते । सरक्षन्निचतत्तीर्थंदेवभृत्यगणा सदा
धन्या पुण्याश्रयेमर्त्यास्तेषां स्नानप्रजायते । सरस्वत्याभोगवत्याश्चैवयथाविशेषत

अय तु सङ्गम पुण्यो यथा वेण्या सितासित ।
दृष्ट्वा तीर्थं तु ते सर्वे गीर्वाणा हृष्टचेतस ॥ २८ ॥

देवस्य सन्निधौभूत्वा वर्णयामासुरुत्तमम् । इदं तीर्थं तु दवेश गयातीर्थेनते समम्
गुह्याद्गुह्यतमतीर्थ न भूत न भविष्यति । शूलपाणि समभ्यर्च्यइन्द्राद्यैरप्सरोगणै
यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्दिक्पालैर्लोकपैरपि । नृत्यगीतैस्तथा स्तोत्रै सर्वैश्चापि सुरासुरै
पूज्यमानो गणै सर्वै सिद्धैर्नागैर्महेश्वर । देवेन भेदित तत्र शूलाग्रेण नराधिप ॥

त्रिधा यत्रदृश्यतेऽद्यापि ह्यावर्त्त सुरपूजित ।

कुण्डत्रयं नरव्याघ्र! महत्कलकलान्वितम् ॥ ३३ ॥
सर्वपापक्षयकरं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् । तत्र तीर्थे तु यः स्नाति उपवासपरायणः ॥
दीक्षामन्त्रविहीनोऽपि मुच्यते चाब्दिकादघात् ।
ये पुनर्विधिवत्स्नान्ति मन्त्रैः पञ्चभिरेव च ॥ ३५ ॥
वेदोक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः सहिरण्यघटैः शुभैः । अक्षरैर्दशभिश्चैव षड्भिर्वा त्रिभिरेव वा
पृथग्भूतैर्द्विजातीनां तीर्थे कार्यं नराधिप !।
ब्रह्मक्षत्रविशां चाऽपि स्त्रीशूद्राणां तथैव च ॥ ३७ ॥
पुरुषाणां त्रयीं ध्यात्वा स्नानं कुर्याद्यथाविधि ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण ये पिबन्ति जलं नराः ॥ ३८ ॥
ते गच्छन्ति परंलोकं यत्र देवोमहेश्वरः । केदारे च यथा पीतं रुद्रकुण्डे तथैव च ॥
पञ्चरेफसमायुक्तं क्षकारं सुरपूजितम् । ॐकारेण समायुक्तमेतद्वेद्यं प्रकीर्तितम् ॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं विधियुक्तो जितेन्द्रियः । तिलमिश्रेणतोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः
कुलानां तारयेद्विंशं दशपूर्वान्दशापरान् । गयादिपञ्चस्थानेषु यः श्राद्धं कुरुते नरः
स तत्र फलमाप्नोति शूलभेदे न संशयः ।
यस्तत्र विधिना युक्तो दद्याद्दानानि भक्तितः ॥ ४३ ॥
तदक्षयं फलंतत्र सुकृतं दुष्कृतं तथा । गयाशिरो यथा पुण्यं पितृकार्येषु सर्वदा
शूलभेदं तथा पुण्यं स्नानादानादितर्पणैः ।
भक्त्या ददाति यस्तत्र काञ्चनं गां महीं तिलान् ॥ ४५ ॥
आसनोपानहौ शय्यां वराश्वान्क्षत्रियस्तथा ।
वस्त्रयुग्मं च धान्यं च गृहं पूर्णं प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥
स योक्त्रं लाङ्गलं दद्यात्कृष्टां चैव वसुन्धराम् ।
दानान्येतानि यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ४७ ॥
श्रोत्रिये कुलसम्पन्ने शुचिष्मति जितेन्द्रिये ।
श्रुताध्ययनसम्पन्ने [illegible]

त्रयोदशाद स्वैश्चैव त्रयोदशगुणं भवत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शूलभेदोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णननाम
कोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्याय

पात्रापात्रपरीक्षादानादिनियमवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

द्विजाश्च कीदृशा पूज्या मनुष्या कादृशा स्मृता ।
श्राद्ध पैतादिके कार्ये दाने चैव विशारत ॥ १ ॥
यदि श्रद्धा भवद्वियोगात्श्राद्धादिके विधौ ।
एतदाख्याहि मे देव कस्य दाने न हीयते ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच

यथाकाष्ठमयोहस्ती यथाचर्ममयोमृग । ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्तेनामधारका
यथा षण्ढोऽफल स्त्रिषु यथा गौगवि चाफला ।
यथाचान्ऽफल दान तथा विप्रोऽनृचोऽफल ॥ ४ ॥
यथाऽनृणेष्वीनमुप्त्वावपनान्लभते फलम् । तथाऽनृचेदविदस्यान्दाता लभत फलम्
रोगी हीनाऽतिरिक्ताङ्ग काण पौनभवस्तथा ।
अवकीर्णी श्यावदन्त सर्वाशी वृषलीपति ॥ ६ ॥
मित्रध्रुक्पिशुन सोमविक्रयीपरनिन्दक । पितृमातृगुरुत्यागीनित्यब्राह्मणनिन्दक
शूद्रान मन्त्रसयुक्त यो विप्रो भक्षयेत्तप ।
सोऽस्पृश्य कमभाण्डाय स्पृष्ट्वा स्नान समाचरेत् ॥ ८ ॥

कुनखीवृषली स्तेयी वाद्रुधुष्यःकुण्डगोलकौ। महादानरतोयश्च यश्चात्महननेरतः
भृतकाध्यापकः क्लीवः कन्यादूष्यभिशस्तकः।
एते विप्राः सदा त्याज्याः परिभाव्य प्रयत्नतः ॥ १० ॥
प्रतिग्रहं गृहीत्वा तु वाणिज्यं यस्तु कारयेत्।
तस्य दानं न दातव्यं वृथा भवति तस्य तत् ॥ ११ ॥
श्रुताऽध्ययनसम्पन्ना ये द्विजावृत्तनत्परा। तेषां प्रदीयते दानं सर्वमक्षयतामव्रजेत्
दरिद्रान्भरभूपालमासमृद्धान्कदाचन। व्याधितस्यौषधंपथ्यं नीरुजस्यकिमौषधैः

उत्तानपाद उवाच

कीदृशोऽथ विधिस्तत्र तीर्थश्राद्धस्य का क्रिया।
दानं च दीयते यद्वत्तन्ममाख्याहि शङ्कर !॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

श्राद्धं कृत्वा गृहे भक्त्या शुचिश्चाऽपि जितेन्द्रियः।
गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य भोज्य ग्रामान्तके ततः ॥ १५ ॥
राग्यतः प्रव्रजेतावद्यावत्सीमांनलङ्घयेत्। शूलभेदंततोगत्वास्नानं कुर्याद्यथाविधि
पञ्चस्थानेषु च श्राद्धं हव्यकव्यादिभिः क्रमात्।
पिण्डदानञ्च यः कुर्यात्पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ १७ ॥
पितरस्तस्य तृप्यन्ति द्वादशाब्दानिपञ्च च। अक्षतैर्बदरैर्बिल्वैरिङ्गुदैर्मधुसर्पिषा ॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोति तीर्थेऽस्मिन्नाऽत्र संशयः।
उपानहौ च यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः ॥ १९ ॥
सोऽपि स्वर्गमवाप्नोति हयारूढो न संशयः।
शय्यामश्वं च यो दद्याच्छिबिकां वा विशेषतः ॥ २० ॥
गच्छेद्विमानमारूढः सोऽप्सरोवृन्दवेष्टितः। उत्तमंयोगृहंदद्यात्सधान्यसमन्वितम्
स्वेच्छयामेवसेल्लोकेकाञ्चनेभवनेहिसः। तिलधेनुञ्चयो दद्यात्सवत्सांवस्त्रसंप्लुताम्
नाकपृष्ठेवसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम्। गृहे वा यदि वाऽरण्येतीर्थवर्त्मनिवानृप

तोयमन्नं च यो दद्याच्छिवलोके स मोदते । सर्वदानानि दीयन्ते तेषां फलमवाप्य
उदकं चान्नदानं च दद्यादनशमेव च । अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति

कन्यादानं तु यः कुर्याद्ब्राह्मं वा य समुद्धरेत् ।
तस्य वासो भवेत्तत्र यत्राऽहमिति नान्यथा ॥ २६ ॥

उत्तानपाद उवाच

कन्यादानं कथं स्यादिहकर्तव्यं धार्मिकैः सदा ।
परिग्रहो यथा योग्य कन्योद्वाहस्तथैव च ॥ २७ ॥
अन्यं पृच्छामि देवेश कस्य कन्या न दीयते ।
दातव्यं कुत्र तद्ब्रूहि कस्मै दत्तमथाऽक्षयम् ॥ २८ ॥
उत्तमं मध्यमं वाऽपि कनीयः स्यात्कथं विभो ।
राजसं तामसं वाऽपि निःश्रेयसमथाऽपि वा ॥ २९ ॥

ईश्वर उवाच

सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते ।
यो दद्यात्परया भक्त्याऽभिगम्य तनयां निजाम् ॥ ३० ॥
कुलीनायसुरूपाय गुणज्ञागमवादिने । सुलग्ने सुमुहूर्ते च दद्यात्कन्यामलङ्कृताम्
सभ्यान्नागाश्च वासांसि योऽत्र दद्यात्स्वशक्तितः ।
तस्य वासो भवेत्तत्र पदं यत्र निरामयम् ॥ ३२ ॥
येनाऽत्रदुहिता दत्ता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । तेनसर्वमिदं दत्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्
यः कन्यार्थं ततो लब्ध्वा भिक्षते चैव तद्धनम् ।
स भवेत्कर्मचण्डालः कामुकोऽसौ भवेन्मृतः ॥ ३४ ॥
गृहेऽपि तस्य योऽश्नीयाज्जिह्वालौल्यात्कथञ्चन ।
चान्द्रायणेन शुद्ध्येत तप्तकृच्छ्रेण वा पुनः ॥ ३५ ॥

उत्तानपाद उवाच

वित्तं न विद्यते यस्य कन्यैवास्ति च यद्गृहे । कथमोद्वाहनं तस्य तनयायाः प्रकुर्वीत यदि

ईश्वर उवाच

अचिन्तेनैव कर्त्तव्यं कन्योद्वहनकं नृप !। कन्यानाम समुच्चार्य न दोषाय कदाचन॥

अभिगम्योत्तमं दानं यच्च दानमयाचितम्।
भविष्यति युगस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते ॥ ३८ ॥
अभिगम्योत्तमं दानं स्मृतमाहूय मध्यमम्।
याच्यमानं कनीयः स्याद्देहिदेहीति चाधमम् ॥ ३९ ॥
यथैवाऽश्माऽश्मना बद्धो निक्षिप्तो वारिमध्यतः।
द्वावेतौ निधनं यातस्तद्वदज्ञमपात्रके ॥ ४० ॥

असमर्थे ततो दानं न प्रदेयं कदाचन। दातारं नयतेऽधस्तादात्मानञ्च विशेषतः॥

समर्थस्तारयेद् द्वौ तु काष्ठं शुष्कं यथा जले।
यथा नौश्च तथा विद्वान्प्रापयेदपरं तटम् ॥ ४२ ॥
आहिताग्निश्च गृह्णाति यः शूद्राणां प्रतिग्रहम्।
इह जन्मनि शूद्रोऽसौ मृतः श्वा चोपजायते ॥ ४३ ॥

वृथा क्लेशश्च जायेत ब्राह्मणे ह्यग्निहोत्रिणि। असत्प्रतिग्रहंकुर्वन्गुरुंतीचस्यगर्हितम्

अभोज्यः स भवेन्मर्त्यो दह्यते कारिणाऽग्निना।
कटकारो भवेत्पश्चात्सप्तजन्म न संशयः ४:
लज्जादाक्षिण्यलोभाच्च यद्दानं चोपरोधजम्।
भृत्येभ्यश्च तु यद्दानं तद्वृथा निष्फलं भवेत् ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे शूलभेदमाहात्म्ये पात्रापात्रपरीक्षादानादिनिर्णयवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दानधर्मप्रशंसनवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

कस्मिन् तस्मिन् दिने शम्भो श्राद्धं दानं तथेश्वर ।
याचा तत्र प्रकर्तव्या तिथौ यस्यां वदाऽऽशु तत् ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

पितृतीर्थंयथापुण्यं सर्वकामिकमुत्तमम् । इदं तीर्थंतथापुण्यं अमावस्यादिनर्पणे विशेषेण ॥ कुर्वीत श्राद्धं सर्वयुगादिषु । मन्वन्तरादयोवत्स श्रूयन्तां च चतुर्दश अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशीकार्तिकस्यच । तृतीया चैत्रमासस्यतथाभाद्रपदस्य च

आषाढस्यैव दशमी माघस्यैव तु सप्तमी ।
श्रावणस्याऽष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढस्य पूर्णिमा ॥ ५ ॥
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता ।
कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा ॥ ६ ॥

मन्वन्तरादयश्चैत अनन्तफलदाः स्मृता । अयनेचोत्तरे राजन्दक्षिणे श्राद्धमाचरेत्

कार्त्तिकी च तथा माघी वैशाखस्य तृतीयिका ।
पौर्णमासी च चैत्रस्य ज्येष्ठस्य च विशेषत ॥ ८ ॥

अष्टकासु च सङ्क्रान्तौ व्यतीपाते तथैव च । श्राद्धकाला इमेसर्वैदत्तमेष्वक्षयस्मृतम्
मधुमासे सितेपक्ष एकादश्यामुपोषित । निशि जागरणं कुर्याद्विष्णुपादसमीपत

धूपदीपादिनैवेद्यैः स्रङ्मालागुरुचन्दनैः ।
अथा कुर्वन्ति ये विष्णु पठेयुः प्रातनीं कथाम् ॥ ११ ॥
ऋग्यजुः साममन्त्रोक्त सूक्तं जपति यो द्विज ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १२ ॥

प्रातः श्राद्धं प्रकुर्वीत द्विजान्सम्पूज्य यत्नतः ।
दानं दद्याद्यथाशक्ति गोहिरण्याम्बरादिकम् ॥ १३ ॥
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् । श्राद्धदस्तुव्रजेत्तत्रयत्रदेवो जनार्द्दनः
त्रयोदश्यां ततो गच्छेद् गुहावासिनि लिङ्गके ।
दृष्ट्वा मार्कण्डमीशानं मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १५ ॥

उत्तानपाद उवाच

गुहामध्ये महादेव लिङ्गं परमशोभितम् । येन प्रतिष्ठितं देव! तन्ममाख्यातुमर्हसि

ईश्वर उवाच

त्रिषु लोकेषु विख्यातो मार्कण्डेयो मुनीश्वरः ।
दिव्यं वर्ष सहस्रं स तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १७ ॥
गुहामध्यं प्रविष्टोऽसौ योगाभ्यासमुपाश्रितः ।
लिङ्गं तु स्थापितं तेन मार्कण्डेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ १८ ॥
तत्र स्नात्वा च यो भक्त्या सोपवासो जितेन्द्रियः ।
तत्र जागरणं कुर्वन्दद्याद्दीपं प्रयत्नतः ॥ १९ ॥
देवस्यस्नपनंकुर्यादमृतैःपञ्चभिस्तथा । यथाशक्त्यासमालभ्य पूजांकुर्याद्यथाविधि
स्वशाखोत्पन्नमन्त्रैश्च जपंकुर्युर्द्विजातयः । सावित्र्यष्टसहस्रन्तुशताष्टकमथापि वा
एतत्कृत्वा नृपश्रेष्ठ! जन्मनः फलमाप्नुयात् ।
चतुर्दश्यां तु वै स्नात्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ २२ ॥
पात्रं परीक्ष्य दातव्यमात्मनः श्रेयइच्छता ।
पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्दान्यसंशयम् ॥ २३ ॥
दाता स गच्छते तत्र यत्र भोगाः सनातनाः ।
गुहामध्ये प्रविष्टस्तु लोटयेच्चैव शक्तितः ॥ २४ ॥
नीले गिरौ हि यत्पुण्यं तत्समस्तं लभन्ति ते ।
शूलभेदे तु यः कुर्याच्छ्राद्धं पर्वणि पर्वणि ॥ २५ ॥

विशेषाच्चैत्रमासान्ते तस्य पुण्यफलं शृणु । केदारे चैव यत्पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे
सितासिते तु यत्पुण्यमन्यतीर्थे विशेषतः । अर्बुदे विघ्ने पुण्ये पुण्ये वामरपथं
गयादिसर्वतीर्थानां फलमाप्नोति मानवः । विधिमन्त्रसमायुक्तस्तर्पयेत्पितृदेवता

कुलानां तारयेद्विद्वान् दशपूर्वान्दशापरान् ।
दक्षिणस्यां ततो मूर्त्तौ शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ २९ ॥
न्यासं कृत्वा तु पूर्वोक्तं प्रदद्यादष्टपुष्पिकाम् ।
शास्त्रोक्तैरष्टभिः पुष्पैर्मानसैः शृणु तद्यथा ॥ ३० ॥
वारिजं सौम्यमाग्नेयं वायव्यं पार्थिवं पुनः ।
वानस्पत्यं भवेत्षष्ठं प्राजापत्यं तु सप्तमम् ॥ ३१ ॥

अष्टमं शिवपुष्पं स्यादेषां शृणु विनिर्णयम् । वारिजं सलिलं ज्ञेयं सौम्यं मधुघृतपयः

आग्नेयं धूपदीपाद्यं वायव्यं चन्दनादिकम् ।
पार्थिवं कन्दमूलाद्यं वानस्पत्यं फलात्मकम् ॥ ३३ ॥

प्राजापत्यं तु पाद्याद्यं शिवपुष्पं तु वासना । अहिंसाप्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः
तृतीयं तु दयापुष्पं क्षमापुष्पं चतुर्थकम् । ध्यानपुष्पं परं पुष्पं ज्ञानपुष्पं तु सप्तमम्

सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेभिस्तुष्यन्ति देवता ।
भक्त्या तपस्विनः पूज्या ज्ञानिनश्च नराधिप ॥ ३६ ॥

छत्रमावरणं दद्यादुपानद्युगलं तथा । तेन पूजितमात्रेण पूजिताः पुरवासिनः ॥
स्वर्गलोके वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् । शूलपाणेस्तु भक्त्या वै ज्ञात्वा कुर्वन्ति ये नराः
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्यक्षकर्दमकुङ्कुमैः । समालभेत देवेशं श्रीखण्डागुरुचन्दनैः ॥३९॥
नानाविधैश्च ये पुष्पैरर्चां कुर्वन्ति शूलिनः । निशिजागरणं कुर्युर्दीपदानप्रयत्नतः

धूपनैवेद्यकं दद्यात्पञ्चपौराणिकीं कथाम् ।
तत्र स्थाने स्थिता भक्त्या जपं कुर्वन्ति ये नराः ॥ ४१ ॥

श्रीसूक्तं पौरुषं सूक्तं पावमानं वृषाकपिम् । वेदोक्तैश्चैव मन्त्रैश्च रौद्रीं चा बहुरूपिणीम्
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या पूजयित्वा प्रणम्य च । नानाविधैर्महाभागे शिवलोके महीयते

अग्निमीत्यादिजाप्यानि ऋग्वेदी जपते तु यः।
रुद्रान्पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं च शुक्रियम् ॥ ४४ ॥
इषेत्वादिकमन्त्रौघं ज्योतिर्ब्राह्मणमेव च।
गायत्र्यं चै मधु चैव मण्डलब्राह्मणानि च ॥ ४५ ॥
एताञ्जप्यांस्तु यो भक्त्या यजुर्वेदीजपेद्यदि। देवव्रतं वामदेव्यं पुरुषर्भमेव च ॥
बृहद्रथन्तरञ्चैव यो जपेद्भक्तितत्परः। स प्रयाति नरः स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥
पादशौचं तथाऽभ्यङ्गं कुरुते योऽत्र भक्तितः।
गोदाने चैव यत्पुण्यं लभते नाऽत्र संशयः ॥ ४८ ॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्रमधुनापायसेनच। एकस्मिन्भोजितेविप्रेकोटिर्भवतिभोजिता
सुवर्णं रजतं वस्त्रं दद्याद्भक्त्या द्विजोत्तमे।
तर्प्पितास्तेन देवाः स्युर्मनुष्याः पितरस्तथा ॥ ५० ॥
चन्द्रसूर्यग्रहे भक्त्या स्नानं कुर्वन्ति ये नराः। देवार्चनञ्चयेकुर्युर्जपंहोमं विशेषतः
दद्याद्दानं यथाशक्ति ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ५१ ॥
अश्वं रथं गजं यानं तुलापुरुषमेव च। शकटं यः प्रदद्याद्वा सप्तधान्यप्रपूरितम् ॥५२
सयोक्त्रं लाङ्गलं दद्याद्युवानौ तु धुरन्धरौ।
गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम् ॥ ५३ ॥
अपात्रे विदुषा किञ्चिन्न देयं भूतिमिच्छता।
यतोऽसौ सर्वभूतानि दधाति धरणी किल ॥ ५४ ॥
ततो विप्राय सा देया सर्वसस्यौघमालिनी।
अथाऽन्यच्छृणु राजेन्द्र! गोदानस्य तु यत्फलम् ॥ ५५ ॥
यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योन्यां प्रदृश्यते।
तावद्गौ पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ ५६ ॥
येन केनाप्युपायेन ब्राह्मणे तां समर्पयेत्। पृथ्वी दत्ता भवेत्तेन सशैलवनकानना ॥
तारयेन्नियतं दत्ता कुलानामेकविंशतिम्।

रौप्यखुरीं कांस्यदोहां सवत्सां च पयस्विनीम् ॥ ५८ ॥
ये प्रयच्छन्ति कृतिनो ग्रस्ते सूर्ये निशाकरे ।
तेषां सङ्ख्या न जानामि पुण्यस्याब्दशतैरपि ॥ ५९ ॥
सवस्याऽपि हि दानस्य सङ्ख्याऽस्तीह नराधिप ।
चन्द्रसूर्योपरागे च दानसङ्ख्या न विद्यते ॥ ६० ॥
चन्द्रगौर्वं स्वर्तराजन्त्यर्थतीर्थानितग्रहि । तत्रपर्यविजानीयां नाऽत्रकार्याविचारणा
पुनः स्वृत्वा तु तत्तीर्थं च कुर्यान्मज्जनं नरः ।
अथवा म्रियते योऽत्र रुद्रस्याऽनुचरो भवेत् ॥ ६२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शूलभेदे दानधर्मप्रशंसावर्णननामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ऋक्षशृङ्गचरितेदीर्घतपोमुन्याख्यानवर्णनम्

ईश्वर उवाच
अन्यदाख्यानकं वक्ष्ये पुरावृत्तं नराधिप । सकुटुम्बोगतः स्वर्गं मुनिर्दीर्घमहातपाः
उत्तानपाद उवाच
कथं नाकं गतो विप्र सकुटुम्बो महामुने । कौतुकं परमं देव कथयस्वमम प्रभो
ईश्वर उवाच
चित्रसेनइति ख्यातः काशीराजः पुराऽभवत् ।
शूरो दाता सुधर्मात्मा सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥
सा पुरी जनसङ्कीर्णा नानारत्नोपशोभिता ।
[illegible] ॥ ४ ॥

शरच्चन्द्रप्रतीकाशा विद्वज्जनविभूषिता । इन्द्रयष्टिसमाकीर्णा गोपगोकुलसम्वृता
बहुध्वजसमाकीर्णा वेदध्वनिनिनादिता । वणिग्जनैर्बहुविधैः क्रयविक्रयशालिनी

यन्त्राऽऽदानैः प्रतोलीभिरुच्चैश्चान्यैः सुशोभिता ।
देवतायतनैर्दिव्यैराश्रमैर्गहनैर्युता ॥ ७ ॥

नानापुष्पफलै रम्या कदलीखण्डमण्डिता । पनसैर्वकुलैस्तालैरशोकैराम्रकैस्तथा
राजवृक्षकपित्थैश्च दाडिमैरुपशोभिता । वेदाध्ययननिर्घोषैः पवित्रीकृतमङ्गला ॥
तस्याउत्तरदिग्भागेआश्रमोऽभूत्सुशोभनः । तन्मन्दारवनंनाम त्रिषुलोकेषुविश्रुतम्
बहुमन्दारसंयुक्तं तेन मन्दारकं विदुः । विप्रो दीर्घतपानाम सर्वदा तत्र तिष्ठति ॥

तपस्तपति सोऽत्यर्थं तेन दीर्घतपाः स्मृतः ।
स तिष्ठति सपत्नीकः ससुतः सस्नुषः तथा ॥ १२ ॥

शुश्रूषन्ति सदातस्यपुत्राः पञ्च प्रयत्नतः । तस्यपुत्रःकनीयांस्तुऋक्षशृङ्गोमहातपाः

वेदाऽध्ययनसम्पन्नो ब्रह्मचारी गुणान्वितः ।
योगाभ्यासरतो नित्यं कन्दमूलफलाशनः ॥ १४ ॥

तिष्ठतेमृगरूपेण मृगयूथचरस्तदा । दिनान्ते च दिनान्ते च मातापित्रोः समीपगः
अभिवादयते नित्यं भक्तिमान्मुनिपुत्रकः । पुनर्गच्छति तत्रैव कानने गिरिगह्वरे ॥
क्रीडन्व्यालमृगैः सार्द्धं प्रत्यहं स मुनेः सुतः । कदाचिद्दैवयोगेनऋक्षशृङ्गो ममारसः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शूलभेदमाहात्म्ये ऋक्षशृङ्गचरित्रे दीर्घतपोमुन्याख्यानवर्णनं
नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अथावत्सहितःसर्वैःसराजाराजपुत्रकैः । वृन्दास्फोटोऽभवत्तेषांशीघ्रंजग्मुर्दिशोदश
एकमार्गगतो राजा चित्रसेनोमहीपतिः । एकाकीसगतस्तत्रयत्रयत्र च ते मृगाः

प्रविष्टोऽसौ ततो दुर्गं काननं गिरिगह्वरम् ।
वल्लीगुल्मसमाकीर्णं स्थितो यत्र न लक्ष्यते ॥ १५ ॥
अदृश्यांस्तु मृगान्मत्वा दिशो राजा व्यलोकयत् ।
कां दिशं नु गमिष्यामि क मे सैन्यसमागमः ॥ १६ ॥

एवंकष्टं गतो राजाचित्रसेनोनराधिपः । वृक्षच्छायांसमाश्रित्य विश्राममकरोन्नृपः
क्षुत्तृषार्त्तोभ्रमन्दुर्गेकाननेगिरिगह्वरे । ततोऽपश्यत्सरो दिव्यंपद्मिनीखण्डमण्डितम्

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
ततो दृष्ट्वा स राजेन्द्रः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ १९ ॥

कमलानिगृहीत्वातुततःस्नानंसमाचरत् ।तर्पयित्वापितॄन्देवान्मनुष्यांश्चयथाविधि
आच्छाद्यशतपत्रैश्च पूजयामासशङ्करम् । ययौ पानीयममलं यथावत्स समाहितः
उत्तीर्य सलिलात्तीरे दृष्ट्वा वृक्षं समीपगम् । उत्तरीयमधः कृत्वोपविष्टो धरणीतले

चिन्तयन्नुपविष्टोऽसौ किमद्य प्रकरोम्यहम् ।
तत्राऽऽसीनो ददर्शाऽथ वनोद्देशे मृगान्बहून् ॥ २३ ॥
केचित्पूर्वमुखास्तत्र चाऽपरे दक्षिणामुखाः ।
वारुण्यभिमुखाः केचित्केचित्कौवेरदिङ्मुखाः ॥ २४ ॥
केचिन्निद्रापराः केचिदूर्ध्वकर्णाः स्थिताः परे ।
मृगमध्ये स्थितो योगी ऋक्षशृङ्गो महातपाः ॥ २५ ॥

मृगान्दृष्ट्वा ततोराजाआहारार्थमचिन्तयत् । हत्वातेषुमृगंकञ्चिद्भक्षयामियदृच्छया

स्वस्थावस्थो भविष्यामि मृगमांसस्य भक्षणात् ।
काशीं प्रति गमिष्यामि मार्गमन्विष्य यत्नतः ॥ २७ ॥

विचिन्त्यैवं ततो राजा वृक्षमूलमुपाश्रितः । चापंगृह्यकराग्रेण स शरं सन्दधे ततः
विचिक्षेप शरं तत्र यत्र ते बहवो मृगाः । तेषांमध्येस वैविद्ध ऋक्षशृङ्गोमहातपाः

जग्मुस्त्रस्तास्तु ते सर्व शब्द कृत्वा घनौकस ।
स ऋषि पतितस्तत्र कृष्णकृष्णति चाब्रवीत् ॥ ३० ॥
हाहा कष्ट कृत तेन येनाहवातितोऽधुना । कस्यैषा दुर्मतिर्जाता पापबुद्धेममोपरि
मृगमध्ये स्थितश्चाऽह न कश्चिदुपरोधये ।
ता वाच मानुषीं श्रुत्वा स राजा विस्मयान्वित ॥ ३२ ॥
शाघ्र गत्वा ततोऽपश्यद्ब्राह्मण ब्रह्मतेजसा ।
हाहा कष्ट कृत मेऽद्य येनाऽस्मौ घातितो द्विज ॥ ३३ ॥

चित्रसेन उवाच

अकामाद्घातितस्त्व तु मृगभ्रान्त्या मयाऽनघ ।
गृहीत्वा धनुदारुणि स्थतनु दाहयाम्यहम् ॥ ३४ ॥
दुष्टाह्वमन्तु यत्किञ्चिन समन्तब्रह्मया । अन्यथा ब्रह्महत्याया शुद्धिर्मेनभविष्यति

ऋष्यशृङ्ग उवाच

न ते सिद्धिभये काचिन्मयि पञ्चत्वमागत ।
बहवो हत्या भविष्यन्ति विनाशे मम साम्प्रतम् ॥ ३६ ॥
जनना मे पिता वृद्धो भ्रातरश्चतपस्विन । भ्रातृजायामरिष्यन्तिमयिपञ्चत्वमागत
एताहत्या भविष्यन्ति कथशुद्धिभवत्तव । उपाय कथयिष्यामि त कर्तुंयदिमन्यसे

चित्रसेन उवाच

उपाय कथ्यतामेऽद्य यस्ते मनसि वसते । करिष्ये तमहमवं यत्नेनापि महामुने

ऋष्यशृङ्ग उवाच

पृच्छामि त्वा कथ को वा कुतस्त्वमिह चाऽऽगत ।
ब्रह्मक्षत्रविशा मध्ये को भवानुत शूद्रज ॥ ४० ॥

चित्रसेन उवाच

नाह शूद्रोऽस्मि भोस्तात न वैश्यो ब्राह्मणो न वा ।
न चान्त्यजोऽस्मि विप्रेन्द्र क्षत्रियोऽस्मि महामुने ॥ ४१ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सर्वसत्त्वहिते रतः । अकामात्पातकंजातं कथंशुद्धिर्भविष्यति ॥

ऋक्षशृङ्ग उवाच

मांगृहीत्वाऽऽश्रमंगच्छयत्रतौपितरौमम । आवेदयस्वचात्मानंपुत्रघातिनमातुरम्

तद्दृष्ट्वामांकरिष्यन्तिकारुण्यंचतवोपरि । उपायंकथयिष्यन्तियेनशान्तिर्भविष्यति

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रसेनो नृपोत्तम !।
स्कन्धे कृत्वा तु तं विप्रं जगामाऽऽश्रमसन्निधौ ॥ ४५ ॥
न शक्नोति यदा वोढुं विश्राम्यति पुनः पुनः ।
तावत्पश्यति तं विप्रं मूर्च्छितं विकलेन्द्रियम् ॥ ४६ ॥

मुमोच चित्रसेनस्तं छायायां वटभूरुहः । वस्त्रंचतुर्गुणं कृत्वा चक्रे वातं मुहुर्मुहुः

पश्यतस्तस्यराजेन्द्रऋक्षशृङ्गोमहातपाः । पञ्चत्वमगमच्छीघ्रं ध्यानयोगेनयोगवित्

दाहयामास तं विप्रं विधिदृष्टेन कर्मणा । स्नानंकृत्वासशोकार्त्तो विललापमुहुर्मुहुः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शूलभेदमाहात्म्ये ऋक्षशृङ्गस्वर्गगमनवर्णनं नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दीर्घतपसःस्वर्गारोहणवर्णनम्

ईश्वर उवाच

ततश्चानन्तरं राजाजगामोद्वेगमुत्तमम् । कथं यामि गृहं त्वद्य वाराणस्यामहंपुनः

ब्रह्महत्यासमाविष्टो जुहोम्यग्नौ कलेवरम् ।
अथवा तस्य वाक्येन तं गच्छाम्याश्रमम्प्रति ॥ २ ॥

कथयामियथावृत्तंगत्वातस्यमहामुनेः । एवंसञ्चिन्त्यराजासौजगामाश्रमसन्निधौ

ऋक्षशृङ्गस्य वाक्यानि गृहीत्वा स नृपोत्तमः ।
दृष्टिमार्गे स्थितस्तस्य महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ४ ॥

दीर्घतपा उवाच

आगच्छस्वागतंतेऽस्तुआसनेऽत्रोपविश्यताम् । अर्घंदास्यहंयेनमधुपर्कंसविष्टरम्

चित्रसेन उवाच

अर्घस्यास्य न योग्योऽहं महर्षे ! नाऽस्मि भाषणे ।
मृगमध्यस्थितो विप्रस्तव पुत्रो मया हतः ॥ ६ ॥
पुत्रघ्नंविद्धिमांविप्र तीव्रदण्डेन दण्डय । मृगभ्रान्त्याहतोविप्रऋक्षशृङ्गोमहातपा
इति मत्वामुनिश्रेष्ठकुरुष्वेत्थं यथोचितम् । मातातद्वचनंश्रुत्वागृहाभ्यन्तरविह्वला
हा हताऽस्मीत्युवाचेदं पपात धरणीतले ।
विललाप सुदुःखार्ता पुत्रशोकेन पीडिता ॥ ९ ॥
हा हता पुत्रपुत्रेति करुणं कुररीयथा । विललापाऽऽतुरामाता क्वगतोमांविहायवै
मुखं दर्शय चात्मीयं मातरं मा हि मानय ॥ १० ॥
श्रुताध्ययनसम्पन्नं जपहोमपरायणम् ।
आगतं त्वां गृहद्वारे कदा द्रक्ष्यामि पुत्रक !॥ ११ ॥
लोकोक्त्या श्रूयतेचैतच्चन्दनं किलशीतलम् । पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्द्रमादपिशीतलः
किं चन्दनेन पीयूषबिन्दुना किं किमिन्दुना ॥ १३ ॥
पुत्रगात्रपरिष्वङ्गपात्रं गात्रं भवेद्यदि । ॥ १४ ॥
परिष्वजितुमिच्छामि त्वामहं पुत्र सुप्रिय !।
पञ्चत्वमनुयास्यामि त्वद्विहीनाच दुःखिता ॥ १५ ॥
एवंविलपतीदीना पुत्रशोकेनपीडिता । मूर्च्छिता विह्वला दीना निपपात महीतले
भार्यां च पतितांदृष्ट्वा पुत्रशोकेनपीडिताम् । शुकोपममुनिस्तत्र चित्रसेनाय भूभृते

दीर्घतपा उवाच

याहि याहि महापाप! मा मुखं दर्शयस्व मे ।

किं त्वया घातितो विप्रो ह्यकामाच्च सुतो मम ॥ १८ ॥
ब्रह्महत्या भविष्यन्तिबह्वयस्तेवसुधाधिप !। सकुटुम्बस्यमेत्वंहिमृत्युरेवउपस्थितः
एवमुक्त्वाततोविप्रोविचिन्त्यच पुनःपुनः। परित्यज्यतदाक्रोधंमुनिमावाञ्जगादह
दीर्घतपा उवाच
उद्वेगंत्यजभो वत्स!दुरुक्तं गदितो मया। पुत्रशोकाभिभूतेन दुःखतप्तेन मानद
किं करोति नरः प्राज्ञः प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः।
प्रागेव हि मनुष्याणां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥ २२ ॥
अनेनैव विधानेन पञ्चत्वं विहितं मम। हत्यास्तव भविष्यन्ति पूर्वमुक्ता न संशयः
ब्रह्मक्षत्रविशां मध्येशूद्रचण्डालजातिषु। कस्त्वं कथयसत्यंमेकस्माच्चनिहतोद्विजः
चित्रसेन उवाच
विज्ञापयामि विप्रर्षे! क्षन्तव्यं ते ममोपरि।
नाऽहं विप्रोऽस्मि वै तात ! न वैश्यो न च शूद्रजः ॥ २५ ॥
न व्याधश्चान्त्यजातो वा क्षत्रियोऽहं महामुने !।
काशीराजो मृगान्हन्तुमागतो वनमुत्तमम् ॥ २६ ॥
भ्रान्त्यानिपातितोह्येषमृगरूपधरोमुनिः। इदानींतवपादान्तेसंश्रितःपातकान्वितः
किं कर्त्तव्यं मया विप्र! उपायं कथयस्व मे ॥ २८ ॥
दीर्घतपा उवाच
ब्रह्महत्या न शक्येताप्येका निस्तरितुं प्रभो !।
दशैका च कथं शक्यास्ताः शृणुष्व नरेश्वर !॥ २९ ॥
चत्वारो मे सुताराजन्सभार्यामातृपूर्वकाः। मयासहनजीवन्तिमृक्षशृङ्गस्यकारणे
उपायं शोभनंतातकथयिष्येशृणुष्वतम्। शक्नोषि यदि तंकर्तुं सुखोपायं नरेश्वर
सकुटुम्बं समस्तं मां दाहयित्वाऽनलेनृप। अस्थीनिनर्मदातोये शूलभेदेविनिक्षिप
नर्मदादक्षिणे कूले शूलभेदं हि विश्रुतम्। सर्वपापहरं तीर्थं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम्।
शुचिर्भूत्वा ममाऽस्थीनि तत्र तीर्थे विनिक्षिप।

बहुद्रुमलताकीर्णं बहुपुष्पोपशोभितम् । ऋक्षसिंहसमाकीर्णं नानाव्रतधरैः शुभैः

एकपादास्थिताःकेचिदपरे सूर्यदृष्टयः ।
एकाङ्गुष्ठस्थिताः केचिदूर्ध्वबाहुस्थिताः परे ॥ ५० ॥
द्विनैकभोजनाः केचित्केचित्कन्दफलाशनाः ।
त्रिरात्रभोजनाः केचित्पराकव्रतिनोऽपरे ॥ ५१ ॥
चान्द्रायणरताः केचित्केचित्पक्षोपवासिनः ।
मासोपवासिनः केचित्केचिदृत्वन्तपारणाः ॥ ५२ ॥
योगाभ्यासरताः केचित्केचिद्ध्यायन्ति तत्पदम् ।
शीर्णपर्णाशिनःकेचित्केचिच्च कटुकाशनाः ॥ ५३ ॥
शैवालभोजनाःकेचित्केचिन्मारुतभोजनाः ।
गार्हस्थ्ये च स्थिताःकेचित्केचिच्चैवाऽग्निहोत्रिणः ॥ ५४ ॥

एवंविधान्द्विजान्दृष्ट्वाजानुभ्यामवनिं गतः । प्रणम्यशिरसाराजन्राजावचनमब्रवीत्

चित्रसेन उवाच

कस्मिन्देशे च तत्तीर्थं सत्यं कथयत द्विजाः ।
येनाभिवाञ्छिता सिद्धिः सफला मे भविष्यति ॥ ५६ ॥

ऋषय ऊचुः

धन्वन्तरशतंगच्छ भृगुतुङ्गस्यमूर्द्धनि । कुण्डंद्रक्ष्यसितत्पूर्णंविस्तीर्णंपयसाशिवम्
तेषां तद्वचनंश्रुत्वागतःकुण्डस्यसन्निधौ । दृष्ट्वाचैवतुतत्तीर्थं भ्रान्तिर्जातान्नृपस्य वै
ततोविस्मयमापन्नश्चिन्तयन्वैमुहुर्मुहुः । आकाशस्थंददर्शाऽसौ सामिषं कुररं नृप
भ्रममाणंगृहीताहिंवध्यमानं निरामिषैः । परस्परंचयुयुधुःसर्वेऽप्यामिषकाङ्क्षया
हतश्चञ्चुप्रहारेण स ततः पतितोऽम्भसि । शूलेनशूलिनायत्र भूभागो भेदितः पुरा

तत्तीर्थस्य प्रभावेण स सद्यः पुरुषोऽभवत् ।
विमानस्थं ददर्शाऽसौ पुमांसं दिव्यरूपिणम् ॥ ६२ ॥

गन्धर्वाऽप्सरसोयक्षास्तंयान्तं तुष्टुवुर्दिवि । अप्सरोगीयमानेतु गतेसूर्यस्य मूर्द्धनि

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशीराजमोक्षवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

माहात्म्यं तीर्थगंदृष्ट्वाचित्रसेनोनरेश्वरः । किंचकारक्वा वासं किमाहारो बभूवह

ईश्वर उवाच

भृगुतुङ्गं समारुह्य ऐशानीं दिशमाश्रितः । तपश्चचारविपुलं कुण्डे तत्र नृपोत्तमः

सर्वान्देवान्हृदि ध्यात्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
चिक्षिक्षेप यदात्मानं प्रत्यक्षौ रुद्रकेशवौ ।
करे गृहीत्वा राजानं रुद्रो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच

प्राणत्यागं महाराज! मा काले त्वं कृथा वृथा ।
अद्याप्यसि युवा त्वं वै न युक्तं मरणं तव ॥ ४ ॥
स्वस्थानं गच्छ शीघ्र त्वं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
कुरु निष्कण्टकं राज्यं नाके शक्र इवापरः ॥ ५ ॥

चित्रसेन उवाच

न राज्यं कामये देव ! न पुत्रान्न च बान्धवान् ।
न भार्यां न च कोशं च न गजान्न तुरङ्गमान् ॥ ६ ॥

मुञ्चमुञ्च महादेव मा विघ्नःक्रियतां मम । स्वर्गप्राप्तिर्ममाऽद्यैवत्वत्प्रसादान्महेश्वर

ईश्वर उवाच

यस्याऽग्रतो भवेद् ब्रह्मा विष्णुःशम्भुस्तथैव च ।
स्वर्गेण तस्य किं कार्यं स गतः किं करिष्यसि ॥ ८ ॥

तुष्टावयंत्रयोदेवा वृणीष्व वरमुत्तमम् । यथेप्सितं महाराज सत्यमेतदसंशयम् ॥

चित्रसेन उवाच

यदि तुष्टास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । अद्यप्रभृतियुष्माभिः स्थातव्यमिहसर्वदा
गयाशिरो यथापुण्यं कृतं युष्माभिरेव च । तथैवेदं प्रकर्त्तव्यं शूलभेदं च पावनम्
यत्रयत्रस्थिता यूयं तत्रतत्रवसाम्यहम् । गणानां चैवसर्वेषामाधिपत्यमवाप्नुमे

ईश्वर उवाच

अद्यप्रभृति तिष्ठामः शूलभेदे नरेश्वर । त्रिकालं हि त्रयोदेवाः कलांशेन वसामहे ॥

नन्दिसञ्ज्ञो गणाधीशो भविष्यति भवान्भुवम् ।
मत्समीपे तु भवतः भाद्री पूजा भविष्यति ॥ १७ ॥
प्रक्षिप्य तानि चास्थीनि यत्र दीर्घतपा ययौ ।
मकुटस्थो विमानस्य स्वर्गलस्य तथा कुरु ॥ १० ॥
एव देवा वरं दत्त्वा चित्रसेनाय पार्थिव ।
कुण्डमूर्द्धनि याम्यायांत्रयो देवास्तदा स्थिताः ॥ १६ ॥

परस्परं वदन्त्येव पुण्यनाथमिदं परम् । यथाहि गयाशिरः पुण्यं पूर्वमेव पठ्यते ॥

तथा रेवातटे पुण्यं शूलभेदं न संशयः ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच

न्न तीर्थं तथा पुण्यं यथा पुण्यं गयाशिरः । सकृत्पिण्डोदकेनैवनरोनिमलतामव्रजेत्

एकं गयाशिरोमुक्त्वा सर्वतीर्थानि भूपते ।
शूलभेदस्य तीर्थस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १६ ॥

कुण्डमुर्दीच्याधाम्यायांदशहस्तप्रमाणतः । रौद्रवारुणकाष्ठायांप्रमाणंचैकविंशति
एतत्प्रमाणं तत्तीर्थं पिण्डदानादि कर्मसु । नाधमनिरता दातुं लभन्ते दानमत्र हि
विष्णुस्तु पितृरूपेण ब्रह्मरूपीपितामहः । प्रपितामहोरुद्रोऽभूदेवंत्रिपुरुषाः स्थिताः

कदा पश्यति तीर्थं वै कदा नस्तारयिष्यति ।
इति प्रतीक्षां कुर्वन्ति पुत्राणां सततं नृप ।
शूलभेदे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा शूलधरं सकृत् ॥ २३ ॥

नापुत्रो नाधनो रोगी सप्तजन्मसुजायते । एकविंशतिपितुःपक्षेमातुश्चैवैकविंशतिम्
भार्यापक्षे दशैवेह कुलान्येतानि तारयेत् । शूलभेदवनेराजञ्छाकमूलफलैरपि ॥
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवतिभोजिता ।
पञ्चस्थानेषु यः श्राद्धं कुरुते भक्तिमान्नरः ॥ २६ ॥
कुलानिप्रेतभूतानि सर्वाण्यपि हि तारयेत् । द्विजदेवप्रसादेन पितॄणांच प्रसादतः
श्राद्धदो निवसेत्तत्र यत्रदेवो महेश्वरः । स्युरात्मघातिनोयेच गोब्राह्मणहनाश्च ये
दंष्ट्रिभिर्जलपाते च विद्युत्पातेषु ये मृताः ।
न येषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ २९ ॥
तत्र तीर्थे तु यस्तेषां श्राद्धंकुर्वीत भक्तितः । मोक्षावाप्तिर्भवेत्तेषांयुगमेकंन संशयः
अज्ञानाद्यत्कृतं पापं बालभावाच्च यत्कृतम् । तत्सर्वंनाशयेत्पापंस्नानमात्रेण भूपते
रजकेन यथा धौतं वस्त्रं भवतिनिर्मलम् । तथापापोऽपितत्तीर्थेस्नातोभवतिनिर्मलः
संन्यासं कुरुते योऽत्र तीर्थे विधिसमन्वितम् ।
ध्यायन्नित्यं महादेवं स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ३३ ॥
क्रीडित्वा स यथाकामं स्वेच्छया शिवमन्दिरे ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जायतेऽसौ शुभे कुले ॥ ३४ ॥
रूपवान्सुभगश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ।
राजा वा राजपुत्रो वा धर्माचारसमन्वितः ॥ ३५ ॥
एतत्ते कथितं राजंस्तीर्थस्य फलमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा मानवो नित्यं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ३६ ॥
य इदंश्रावयेन्नित्यमाख्यानं द्विजपुङ्गवान् । श्राद्धेदेवकुलेवाऽपि पठेत्पर्वणि पर्वणि
गीर्वाणास्तस्य तुष्यन्ति मनुष्याः पितृभिः सह ।
पठतां शृण्वतां चैव नश्यते सर्वपातकम् ॥ ३८ ॥
लिखित्वा तीर्थमाहात्म्यं ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ।
जातिस्मरत्वं लभते प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥ ३९ ॥

रुद्रलोके वसेत्तावद्यावदक्षरमन्वितम् ॥ ४० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे रेवाखण्डे शूलभेदमाहात्म्ये काशीराजमोक्षगमनवर्णननाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गङ्गावतरण याधवाक्योपदेशकथनपूर्वकदानादिफलवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

अन्यच्च श्रोतुमिच्छामि केन गङ्गाऽवतारिता ।
रुद्रशीर्षे स्थिता देवी पुण्या कथमिहाऽऽगता ॥ १ ॥
पुण्यादेवशिलानाम तस्यामाहात्म्यमुत्तमम् । एतदाख्याहिमेसर्वंमसंशयदिशङ्क

ईश्वर उवाच

शृणुष्वैकमना भूत्वा यथागङ्गाऽवतारिता । दृवैः सर्वैर्महाभागाःसर्वलोकहितार्थं
अस्ति विन्ध्यो नगोनाम याम्याशायां महापते ।
गीर्वाणास्तु गता सर्वे तस्य मूर्ध्नि नरेश्वर ॥ ४ ॥
सत्रयाचानिताःगङ्गा ब्रह्माद्यैरखिलैः सुरैः । अभ्यर्थ्येश जगन्नाथ देवदेव जगद्गुरुम्
जटामध्यस्थिता गङ्गा मोचयस्वेति भूतले ।
भास्वन्ती सा ततो मुक्ता रुद्रेण शिरसा भुवि ॥ ६ ॥
तत्र स्थाने महापुण्या देवैरुत्पादिता स्वयम् ।
ततो दयनदी जाता सा हिताय नृणां भुवि ॥ ७ ॥
वसन्ति ये तटे तस्याः स्नानं कुर्वन्ति भक्तितः ।
पिबन्ति च जलं नित्यं न ते यान्ति यमालयम् ॥ ८ ॥
यत्र सा पतिता कुण्डे शूलभेदे नराधिप ।

देवनद्याः प्रतीच्यां तु तत्र प्राची सरस्वती ॥ ६ ॥
याम्यायां शूलभेदस्य तत्रतीर्थमनुत्तमम् । तत्रदेवशिलापुण्यास्वयं देवेन निर्मिता
तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या तर्पयेत्पितृदेवताः ।
पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ११ ॥
तत्रस्नात्वा तु योभक्त्या ब्राह्मणान्भोजयेन्नृप ।
स्वल्पान्नेनापि दत्तेन तस्य वाऽन्तो न विद्यते ॥ १२ ॥

उत्तानपाद उवाच

कानि दानानि दत्तानि शस्तानि धरणीतले ।
यानि दत्त्वा नरो भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥
देवशिलाया माहात्म्यंस्नानदानादिजंफलम् । व्रतोपवासनियमैर्यत्प्राप्यंतद्वदस्वमे

ईश्वर उवाच

आसीत्पुरामहावीर्यश्चेदिनाथोमहाबलः । वीरसेनइतिख्यातोमण्डलाधिपतिर्नृप
राष्ट्रेतस्यरिपुर्नास्तिनव्याधिर्नचतस्कराः । न चाधर्मोऽभवत्तत्रधर्म एवहिसर्वदा
सदा मुदान्वितो राजा सभार्यो बहुपुत्रकः ।
एकासीद्दुहिता तस्य सुरूपा गिरिजा यथा ॥ १७ ॥
इष्टा सा पितृमातृभ्यां बन्धुवर्गजनस्य च । कृतंचैवाहिकंकर्मकालेप्राप्तेयथाविधि
अनन्तरं चेदिपतिर्द्वादशाब्दमखेस्थितः । ततस्तस्यास्तु योभर्त्तासमृत्युवशमागतः
विधवां तां सुतां दृष्ट्वा राजा शोकसमन्वितः ।
उवाच वचनं तत्र स्वभार्यां दुःखपीडिताम् ॥ २० ॥
प्रिये दुःखमिदं जातं यावज्जीवं सुदुःसहम् । नैषारक्षयितुं शक्या रूपयौवनगर्विता
दूषयेत्कुलंकाऽपिकथंरक्ष्याहिबालिका । नोपायोविद्यतेकाऽपिभानुमत्याश्चरक्षणे
परस्परं विवदतोः श्रुत्वा तत्कन्यकाऽब्रवीत् ॥ २२ ॥

भानुमत्युवाच

न लज्जामि तवाग्रेऽहं जल्पन्ती तात ! कर्हिचित् ।

सत्य नोत्पद्यते दोषो मदर्थे तु नराधिप ॥ २३ ॥
अद्यप्रभृत्यहं तात धारयिष्ये न मूर्द्धजान्। स्थूलवस्त्रपटार्द्धं तु धारयिष्यामि वै गृहे
करिष्यामि व्रतान्याशु पुराणविहितानि च।
आत्मानं शोषयिष्यामि शोषयिष्ये जनार्दनम् ॥ २५ ॥
ममैषा वर्तते बुद्धिर्यदि स्यात्तात मन्यसे। भानुमत्याश्च श्रुत्वा राजा(सो)हर्षितोऽभवत्
तीर्थयात्रां समुद्दिश्य कोशं दत्त्वा सुपुष्कलम्।
विसृज्य पुरवान्वृद्धान्कृत्वा तस्याः सुरक्षणे ॥ २७ ॥
पुरवान्त्साधुधर्मांश्चापि ब्राह्मणान् स पुरोहितान्।
दासीदासान्पदातींश्च ह्यस्याः सरक्षणक्षमान् ॥ २८ ॥
तत पितुर्मतेनैव गङ्गातीरमनामती। अवगाह्य तटे तु गङ्गाया स नराधिप ॥
नित्यं सम्पूज्य महिम्नागन्धमाल्यादिभूषणैः।
द्वादशाब्दानि सा तीरे गङ्गाया समवस्थिता ॥ ३० ॥
त्यक्त्वा गङ्गां तदा राज्ञी गता काष्ठां तु दक्षिणाम्।
प्राप्ता सा सचिवैः सार्द्धं यत्र रेवा महानदी ॥ ३१ ॥
समा पञ्च स्थितानप्रओङ्कारेऽमरकण्टके। उदग्याम्येपुनीर्थेषुतीर्थात्तीर्थंजगामसा
स्नात्वा स्नात्वाऽऽपूज्यविप्रान्भक्तिपूर्वमतन्द्रिता।
वारुणीं सा दिशं गत्वा देवनद्याश्च सङ्गमे ॥ ३३ ॥
ददर्शाश्रमपुण्यं मुनिमण्डले समाकुलम्। दृष्ट्वा मुनिसमूहं सा प्रणिपत्येदमब्रवीत्
माहात्म्यमस्य तीर्थस्य नाम चैवाऽस्य कीदृशम्।
कथयन्तु महाभागाः प्रसादः क्रियतां मम ॥ ३५ ॥

ऋषय ऊचुः

यत्रतीर्थं तु विख्यातं यत्र दत्तं पुरा हरे। महेश्वरेण तुष्टेन देवदेवेन शूलिना ॥
अत्रतीर्थेतुयः स्नात्वातर्पयेत्पितृदेवताः। अनिवर्तिकागतिस्तस्यजायतेनात्रसंशयः
द्वितीयेऽह्नितत्तोगच्छेच्छूलभेदेतपस्विनि। पूर्वोक्तेनविधानेनस्नानंकुर्याद्यथाविधि

जन्मत्रयकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः। जलेन तिलमात्रेण प्रदद्यादञ्जलित्रयम् ॥
तृप्यन्ति पितरस्तस्य द्वादशाब्दान्यसंशयम्।
यः श्राद्धं कुरुते भक्त्या श्रोत्रियैर्ब्राह्मणैर्नृप ॥ ४० ॥
वार्धुष्याद्यास्तु वर्ज्यन्ते पितृणां दत्तमक्षयम्।
अपरेऽह्नि ततो गच्छेत्पुण्यां देवशिलां शुभाम् ॥ ४१ ॥
वीक्ष्यते जाह्नवीपुण्यादेवैरुत्पादिता पुरा। स्नात्वा तत्र जलं दद्यात्तिलमिश्रं नराधिप
सकृत्पिण्डप्रदानेन मुच्यते ब्रह्महत्यया।
एकादश्यामुपोषित्वा पक्षयोरुभयोरपि ॥ ४३ ॥
क्षपाजागरणं कुर्यात्पठेत्पौराणिकीं कथाम्। विष्णुपूजां प्रकुर्वीत पुष्पधूपनिवेदनैः
प्रभाते भोजयेद्विप्रान्दानं दद्यात्स्वशक्तितः।
चतुर्थेऽह्नि ततो गच्छेद्यत्र प्राची सरस्वती ॥ ४५ ॥
ब्रह्मदेहाद् विनिष्क्रान्ता पावनार्थं शरीरिणाम्।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ४६
श्राद्धं कृत्वा यथान्यायमनिन्द्यान्भोजयेद् द्विजान्।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति द्वादशाब्दान्यसंशयम् ॥ ४७ ॥
सर्वदेवमयं स्थानं सर्वतीर्थमयं तथा। देवकोटिसमाकीर्णं कोटिलिङ्गोत्तमोत्तमम्
त्रिरात्रं कुरुते योऽत्र शुचिः स्नात्वा जितेन्द्रियः।
पक्षं मासं च षण्मासमब्दमेकं कदाचन ॥ ४९ ॥
न तस्य सम्भवो मर्त्ये तस्य वासो भवेद्दिवि।
नियमस्थो विमुच्येत त्रिजन्मजनिताद्घात् ॥ ५० ॥
विना पुंसा तु या नारी द्वादशाब्दं शुचिव्रता। तिष्ठते साऽक्षयं कालं रुद्रलोके महीयते
मुनीनां वचनं श्रुत्वा मुदा परमया ययौ। ततोऽवगाह्य तत्तीर्थमहर्निशमतन्द्रिता
दृष्ट्वा तीर्थप्रभावं तु पुनर्वचनमब्रवीत्। श्रूयतां वचनं मेऽद्य ब्राह्मणाः सपुरोहिताः
न त्यजामीदृशं स्थानं यावज्जीवमहर्निशम्।

भर्तुःपितुश्च तथा मातुः कथयध्वमिदं वचः ॥ ५८ ॥
त्वत्कन्या शूलभेदस्था नियता व्रतचारिणी ।
एवमुक्त्वा स्थिता सा तु तत्र भानुमती नृप ॥ ५९ ॥
एकान्तरोपवासस्था शनैर्मासोपवासिता
देवशिलास्थिता नित्यं दध्यौ सा चक्रपाणिनम् ॥ ५६ ॥
अहर्निशं दहेद् धूपं चन्दनञ्च सदीपकम् ।
पादशौचं स्वयं कृत्वा स्वयं भोजयते द्विजान् ॥
द्वादशाब्दानि सा राज्ञी सुव्रता तत्र सस्थिता ॥ ५७ ॥

ईश्वर उवाच

अन्यद्देवशिलायास्तु माहात्म्यंशृणुभूपते । कथयामिमहाबाहोसेतिहासंपुरातनम् कश्चिद्वनेचरोव्याधः शबरः सह भार्यया । दुर्भिक्षपीडितस्तत्र आमिषार्थं वनंगतः

नापश्यत्पक्षिणस्तत्र न मृगाश्च फलानि च ।
सरस्ततो ददर्शाऽथ पद्मिनीखण्डमण्डितम् ॥ ६० ॥
दृष्ट्वा सरोवरं तत्र शबरी वाक्यमब्रवीत् ।
कुमुदानि गृहाण त्वं क्रियताम्याहारसिद्धये ॥ ६१ ॥

देवस्य पूजनार्थं शूलभेदस्य यत्नतः । विक्रयो भवितातत्र धर्मशीलो जनो यत्र भार्याया वचनं श्रुत्वा जग्राह कुमुदानि सः । उत्तीर्णस्तुतटे यावद्दृष्ट्वाश्रीवृक्षमग्रतः श्रीफलानिगृहीत्वा तु सुपक्वानिविशेषतः । शूलभेदं स सम्प्राप्तोददर्श सुबहूञ्जनान् चैत्रमासेसितेपक्षेएकादश्यानराधिप । तस्मिन्नहनिनारीयुर्बालावृद्धास्त्रयाश्रिय मण्डपं ददृशे तयस्तत्र देवशिलोपरि । घण्टा सम्बेष्टितदिव्य ध्वजमाल्यैरुपशोभितम्

आययश्चाऽऽगतास्तत्र ये चाऽऽश्रमनिवासिनः ।
सोपवासाः सनियमाः सर्वे साग्निपरिग्रहाः ॥ ६७ ॥

देवनद्यास्तटेरम्ये मुनिसङ्घैः समाकुले । आगच्छद्भिर्द्विजैः पथेऽष्ठ मार्गस्तत्र न लभ्यते दृष्ट्वाजनपदंतत्रतांभार्यां शबरोऽब्रवीत् । गच्छपृच्छस्व कमपिकिमत्रस्नानकारणम्

पर्वाणि यानि श्रूयन्ते किंस्वित्सूर्येन्दुसम्प्लवः ।
अयनं किं भवेदद्य किं वाऽक्षयतृतीयका ॥ ७० ॥

ततः स्वभर्तुर्वचनाच्छबरी प्रस्थितातदा । पप्रच्छनारींदृष्ट्वाऽग्रेदत्त्वाग्रे कमले शुभे

तिथिरद्यैव का प्रोक्ता किं पर्व कथयस्व मे ।
किमयं स्नाति लोकोऽयं किं वा स्नानस्य कारणम् ॥ ७२ ॥

नार्युवाच

अद्य चैकादशीपुण्या सर्वपापक्षयङ्करी । उपोषिता सकृद्येन नाकप्राप्तिं करोतिसा

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वाशबरी शबराय वै । कथयामासचान्यस्त्रीवाक्यं नृपसत्तम

अद्य त्वेकादशीपुण्या बालवृद्धैरुपोषिता । मदनैकादशीनाम सर्वपापक्षयङ्करी ॥

नियता श्रूयते तत्र राजपुत्री सुशोभना ।
व्रतस्था नियताहारा नाम्ना भानुमती सती ॥ ७६ ॥
नैतया सदृशी काचित्त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
दृश्यते सा वरारोहा ह्यवतीर्णा महीतले ॥ ७७ ॥
भार्याया वचनं श्रुत्वा शबरस्तां जगाद ह ।
कमलानि यथालाभं दत्त्वा भुङ्क्ष्व हि सत्वरम् ॥ ७८ ॥

ममैवावर्त्ततेबुद्धिर्नभोक्तव्यंमयाध्रुवम् । न मयोपार्जितंभद्रे ! पापबुद्धयाशुभंकचित्

शबर्युवाच

न पूर्वं तु मया भुक्तं कस्मिश्चैवतुवासरे । भुक्तशेषंमयाभुक्तंयावत्कालंस्मराम्यहम्

भार्यया निश्चयं ज्ञात्वा स्नानं कर्तुं जगाम ह ।
अर्धोत्तरीयवस्त्रेण स्नानं कृत्वा तु भक्तितः ॥ ८१ ॥
सर्वान्देवान्नमस्कृत्य गतो देवशिलां प्रति ।
तस्थौ स शङ्कमानोऽपि नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ८२ ॥
यस्यास्तु कुमुदे दत्ते तया राज्यै निवेदितम् ।
तद्दृष्ट्वा पद्मयुगलं तां दासीं सदाऽब्रवीत्तदा ॥ ८३ ॥

तु न पद्मद्वयं लब्धं कथ्यतामग्रतो मम । शीघ्रं तत्रैव गत्वाथ पद्मानानय पापरान्

धान्येन वसुना वाऽपि कमलानि समानय ।
भानुमत्या वचः श्रुत्वा गता सा शबरं प्रति ॥ ८५ ॥
श्रीफलानि च पुष्पाणि बहून्यन्यानि देहि ॥ ८६ ॥

शबर्युवाच

श्रीफलानि सपुष्पाणि दास्यामि च विशेषतः ।
न लोभो न स्पृहा मेऽस्ति गत्वा राज्ञीं निवेदय ॥ ८७ ॥

तया च सत्वरं गत्वा यथावृत्तनिवेदितम् । शबर्युक्तं पुरस्तस्याः सविस्तरवचः

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा राज्ञी तत्र स्वयं गता ।
उवाच शबरीं प्रीत्या देहि पद्मानि मूल्यतः ॥ ८८ ॥

शबर्युवाच

न मूल्यं कामयेऽदेवि फलपुष्पसमुद्भवम् । श्रीफलानि च पुष्पाणि यथेष्टं मम गृह्यताम्

अथा कुरु यथान्याय वासुदेवे जगत्पतौ ।

राज्ञ्युवाच

विना मूल्यं न गृह्णामि कमलानि तवाऽधुना ।
धान्यस्य खारिकामेकां ददामि प्रतिगृह्यताम् ॥ ९१ ॥

दशाविंशत्यथत्रिंशच्चत्वारिंशद्याऽपि वा । गृहाण वा खारिशतं दुर्भिक्षमोक्षिसुतर

चतुरन्नतुरगं च मन्यते यदभीप्सितम् । तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि कमलार्थं मनशय

शबर्युवाच

नाहारं चिन्तयाम्यद्य मुक्त्वा देव वरानने । देवकार्यं विना भद्रे नान्यत्र बुद्धिः प्रवर्तते

राज्ञ्युवाच

न च याऽत्र परित्यज्य सर्वं सर्वप्रतिष्ठितम् । तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन मम मार्गप्रतिगृह्यताम्

तपस्विनो महाभागा येऽत्रारण्यनिवासिनः ।
गृहस्थधारिते सर्वे याचन्तेऽप्यतन्द्रिताः ॥ ९६ ॥

शबरयुवाच

निषेधश्च कृतः पूर्वं सर्व्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् । सत्येनतपते सूर्यःसत्येन ज्वलतेऽनलः

सत्येन तिष्ठत्युदधिर्वायुः सत्येन वाति हि ।
सत्येन पच्यते सस्यं गावः क्षीरं स्रवन्ति च ॥ ९९ ॥
सत्याधारमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं सत्येन पालयेत् ॥ १०० ॥
देवकार्यं नु मे मुक्त्वा नाऽन्या बुद्धिः प्रवर्त्तते ।
गृहाण राज्ञि! पुष्पाणि कुरु पूजां गदाभृतः ॥ १०१ ॥
श्रूयते त्रिजयावर्यैस्तु न दोषो विद्यते क्वचित् ।
कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पाक्षता दधि ॥
मांसं शय्याऽऽसनं धानाः प्रत्याख्येया न वारि च ॥ १०२ ॥

राज्युवाच

रामोपहृतं पुष्पमारण्यं पुष्पमेव च । क्रीतं प्रतिग्रहे लब्धं पुष्पमेवं चतुर्विधम् ॥
तमं पुष्पमारण्यं गृहीतं स्वयमेव च । मध्यमं फलमारामे त्वधमं क्रीतमेव च ॥
प्रतिग्रहेण यल्लब्धं निष्फलं तद्विदुर्बुधाः ॥ १०४ ॥

पुरोहित उवाच

हाणराज्ञि! पुष्पाणिकुरुपूजां गदाभृतः । उपकारःप्रकर्त्तव्योऽव्यपदेशेन कर्हिचित्

ईश्वर उवाच

श्रीफलानि सपद्मानि दत्तानि शबरेण तु ।
गृहीत्वा तानि राज्ञी सा पूजाञ्चक्रे सुशोभनाम् ॥ १०६ ॥

पाजागरणञ्चक्रेश्रुत्वापौराणिकींकथाम् । शबरस्तुततोभार्यामिदं वचनमब्रवीत्

दीपार्थं गृह्यतां स्नेहो यथालाभेन सुन्दरि !।
कृत्वां दीपं ततस्तौ तु कृत्वा पूजां हरेः शुभाम् ॥ १०८ ॥

क्रतुर्जागरंरात्रौध्यायन्तो धरणीधरम् । ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकं जनम्

स्नाति ये शूलभेदे तु देवनद्यास्तथाऽपरे । सरस्वत्या नरा केचिन्मार्कण्डस्यह्रदेऽपरे
चक्रतीर्थं गताश्चान्ये स्नानं केचिद्विधानतः ।
शुध्यन्ते जनाः सर्वे स्नात्वा देवशिलोपरि ॥ १११ ॥
श्राद्धं चक्रुः प्रयत्नेन श्रद्धयापूतचेतसा । तान्दृष्ट्वा शबरो विप्रैः पिण्डांश्चक्रे प्रयत्नतः
भानुमत्या तथा भर्त्तुः पिण्डनिर्वपणं कृतम् ।
अनिन्द्या भोजिता विप्रा दम्भमात्सर्यवर्जिताः ॥ ११३ ॥
हविष्यान्नैस्तथा भक्ष्यैः शर्करामधुसर्पिषा । पायसेनतु मध्येन कृताभ्नेन विशेषतः
भोजयित्वा तथा राज्ञी ददौ दानं यथाविधि ।
पादुकोपानहौ छत्रं शय्या गोवृषमेव च ॥ ११५ ॥
विविधानि च दानानि हेमरत्नमयानि च । चक्रतीर्थे महाराजकपिलायां प्रयच्छति
पृथ्वी तेन भवेद्दत्ता सशैलवनकानना ॥ ११६ ॥
उत्तानपाद उवाच
यानि यानि च दानानि शस्तानि जगतीपते ।
तानि सर्वाणि देवेश कथयस्व प्रसादतः ॥ ११७ ॥
ईश्वर उवाच
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् । भूमिदः स्वर्गमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः
गृहदो रोगरहितो रूप्यदो रूपवान्भवेत् । वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्वसायुज्यमश्वदः
वृषदस्तु श्रियम्पुष्टां गोदाता च त्रिविष्टपम् । यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ।
वार्यन्नपृथिवीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ १२१ ॥
सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते । येनयेन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ॥
तेनतेन सभावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितम् । दृष्ट्वा दानानि सर्वाणि राज्ञी दत्तानि यानि च
उवाच शबरो भार्यां यत्तच्छृणु नरेश्वर । पुराणं पठितं भद्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥
श्रुतञ्च तन्मया सर्वं दानधर्मफलं शुभम् । पूर्वजन्मार्जितं पापं स्नानदानव्रतादिभिः

शरीरं दुस्त्यजं मुक्त्वा लभते गतिमुत्तमाम् ।
संसारसागरार्द्धीतः सत्यं भद्रे! वदामि ते ॥ १२६ ॥
अनेकानि च पापानि कृतानि बहुशो मया ।
घातिता जन्तवो भद्रे निर्दग्धाः पर्वताः सदा ॥ १२७ ॥
तेन पापेन दग्धोऽहं दारिद्र्यं न निवर्त्तते ।
तीर्थावगाहनं पूर्वं पापेन न कृतं मया ॥ १२८ ॥
तेनाऽहं दुःखितो भद्रे !दारिद्र्यमनिवर्त्तकम् ।
मातुर्गृहं प्रयाहि त्वं त्यज स्नेहं ममोपरि ॥
नगशृङ्गं समारुह्य मोक्तुमिच्छाम्यहं तनुम् ॥ १२९ ॥

शबर्युवाच

मात्रा पित्रा न मे कार्यं नाऽपि स्वजनबान्धवैः ।
या गतिस्तव जीवेश! सा ममापि भविष्यति ॥ १३० ॥
न स्त्रीणामीदृशो धर्मो विना भर्त्रा स्वजीवितम् ।
श्रूयन्ते बहवो दोषा धर्मशास्त्रेष्वनेकधा ॥ १३१ ॥
पारणं कुरुभोजेन्द्रव्रतंयेननन्श्यति । यत्तेऽभिवाञ्छितं किञ्चिद्विष्णवेकर्त्तुमर्हसि
भार्याया वचनं श्रुत्वा मुमुदे शबरस्ततः ।
गृहीत्वा श्रीफलं शीघ्रं होमं कृत्वा यथाविधि ॥ १३३ ॥
सर्वदेवान्नमस्कृत्य भुक्तोऽपि च तया सह ।
चैत्र्यां तु विषुवं ज्ञात्वा तस्थौ तत्र दिनत्रयम् ॥ १३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सगङ्गावतरणव्याधवाक्योपदेशकथनपूर्वकंदानादिफलवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

व्याघ्रसङ्गमभवनवर्णनम्

ईश्वर उवाच

भानुमतीद्विजान्भोज्य बुभुजे भुक्तशेषकम् । भुक्त्वा सुखमास्थाय तदनपरिणाम्य

त्रयोदश्यां ततो गत्वा मदनारव्यतिथौ तदा ।

मार्कण्डस्य ह्रदे स्नात्वाऽऽनर्च्य देवं गुहाशयम् ॥ २ ॥

कृतोपवासनियमा स्नापयित्वा महेश्वरम् । पञ्चामृतसुगन्धेन धूपदीपनिवेद्यनैः

आचयद्विविधैः पुष्पैर्नैवेद्यैश्च सुशोभितैः ।

क्षपाजागरणं कृत्वा श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥ ४ ॥

नृत्यगीतैस्तथा स्तोत्रैर्ध्यात्वा देवमहेश्वरम् । अन्नविस्तारितसर्वं देवस्याऽग्रे यथाविधि

चातुर्वर्ण्यसुता सर्वे भोजिता अपरिच्छदा ।

चतुर्दश्यां दिनं यावत्सम्पूज्य वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥

शङ्खवादित्रभेरीभिः पटहध्वनिनादितम् । क्षपाजागरणं कृत्वा प्रभूतजनसङ्कुलम्

नृत्यगीतैस्तथा स्तोत्रैः प्रेरिता सा निशा तदा ।

प्रभाते भोजिता विप्रा पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ ८ ॥

दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः शक्त्या विभवानुसारतः ।

भक्षयित्वा महापुण्ये सुगन्धैर्मदनेन च ॥ ९ ॥

विचित्रैः सूक्ष्मवस्त्रैश्च देवं सम्पूज्य वेष्टितम् । चन्द्रामलम्यमानैश्च बहुदीपसमुच्चयैः

पक्वान्नैर्विविधैर्भक्ष्यैः सुवृत्तैर्मोदकादिभिः । यतस्ते ब्राह्मणाः सर्वे वेदाध्ययनतत्पराः

तत एव कात्यायनक पञ्चकं नाम नामतः ।

आदित्यस्य दिनं त्वत्र तिथिः पञ्चदशी तथा ॥ १२ ॥

त्वाष्ट्रमेव न नक्षत्रं सङ्क्रान्तिर्विषुवतथा ।

व्यतीपातस्तथा योगः करणं विष्टिरेव च ॥ १३ ॥

पद्मकंनाम पर्वैतदयनादिष्वनुगुणम्। अत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाऽक्षयम् ॥

ते द्विजा भानुमत्याऽथ शूलभेदं गताः सह।

ददृशुः शबरं कुण्डे भार्यया सह संस्थितम् ॥ १५ ॥

ऐशानीं स दिशंगत्वा पर्वते भृगुमूर्द्धनि। पतितुं च समारूढोभार्यायासहपार्थिव

भानुमत्युवाच

तिष्ठतिष्ठ महासत्त्व शृणुष्वचवचनंमम। किमर्थंत्यजसि प्राणानद्यापित्वयुवाभवान्

कः सन्तापः क उद्वेगः किं दुःखं व्याधिरेव च।

शिशुः संदृश्यसेऽद्याऽपि कारणं कथ्यतामिदम् ॥ १८ ॥

शबर उवाच

कारणं नास्ति मे किञ्चिन्न दुःखं किञ्चिदेव तु।

संसारभयभीतोऽहं नान्याः बुद्धिः प्रवर्त्तते ॥ १६ ॥

दुःखेनलभ्यतेयस्मान्मानुष्यंजन्मभाग्यतः। मानुष्यंजन्मचासाद्ययोनधर्मंसमाचरेत्

स गच्छेन्निरयं घोरमात्मद्रोहेण सुन्दरि ॥

तस्मात्पतितुमिच्छामि तीर्थेऽस्मिन्पापनाशने ॥ २१ ॥

राज्युवाच

अद्यापि वर्त्तते कालो धर्मस्योपार्जनेतव। कृतापकृतकर्माचे व्रतदानैर्विशुद्ध्यति ॥

अहं दास्यामि धान्यं वा वासांसि द्रविणं बहु।

नित्यमाचर धर्मं त्वं ध्यायन्नित्यं महेश्वरम् ॥ २३ ॥

शबर उवाच

नैवाहं कामये वित्तं न धान्यं वस्त्रमेव च।

यो यस्यैवान्नमश्नाति स तस्याऽश्नाति किल्बिषम् ॥ २४ ॥

राज्युवाच

कन्दमूलफलाहारो भ्रमित्वा भैक्ष्यमुत्तमम्। अवगाह्यसुतीर्थानि सर्वपापैःप्रमुच्यते

ततो विमुक्तपापस्तु यत्किञ्चित्कुरुते शुचि ।
कर्मणा तेन पूतस्त्व सद्गति प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ २८ ॥

शबर उवाच

अन्नमद्यमयात्यक्तप्राणेभ्योऽपिमहत्तरम् । सत्य न लोपयेद्देविनिश्चितात्रमतिर्मम
प्रसाद क्रियतादेवि क्षमस्वाऽद्य जनै सह । मर्योत्तरीयवस्त्रेणमयम्यात्मानमुधत

भार्यया सहितो व्याधो हरि ध्यात्वा पपात ह ।
नगाग्रात्पतितो यावद्गतजीवो नराधिप ॥ २९ ॥
चूर्णीभूतौ हि तौ दृष्ट्वा कुण्डस्योपरि भूमिप ।
त्रिमुहूर्ते गते काले शबरो भार्यया सह ॥ ३० ॥
दिव्य विमानमारूढो गतश्चानुत्तमा गतिम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्या सहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे व्याधस्वर्गगमनवर्णननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय

शूलभेदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

अथातो देवदेवेश भानुमत्यकरोच्च किम् । एत मे सशयदेव कथयस्व प्रसादत ॥ १

ईश्वर उवाच

चिन्तयित्वा मुहूर्त सा गता कुण्डस्य सन्निधौ ।
दृष्ट्वा कुण्डस्य माहात्म्य राज्ञा हर्षेण पूरिता ॥ २ ॥
विप्रान्बहून्समाहूय पूजयामास त क्षणात् ।

दत्त्वा तु विधिवद्दानं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मज !॥ ३ ॥

निश्चयंपरमंकृत्वास्थिताशान्तेनचेतसा । ततःसम्पूज्यविधिवत्पितृन्देवान्नराधिप

क्षपयित्वापक्षमेकंमधुमासस्यसास्थिता ।अमावास्यांततोराज्ञीगतापर्वतसन्निधौ

नगश्टङ्गंसमारुह्यकृत्वामुकुलितौ करौ । विज्ञाप्य ब्राह्मणान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत्

मम माता पिता भ्राता ये चान्ये सखिबान्धवाः ।
क्षमापयित्वा सर्वांस्तान्वचनं मम कथ्यताम् ॥ ७ ॥
त्वत्पुत्री शूलभेदे तु तपः कृत्वा स्वशक्तितः ।
विसृज्य चैव साऽऽत्मानं तस्मिंस्तीर्थे दिवं ययौ ॥ ८ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सन्देशंकथयिष्यामस्त्वयोक्तंशोभनव्रते ।मातापितृभ्यांसुश्रोणिमातेभूऽदत्रसंशयः

ततोविसृज्यताँल्लोकान्स्थिताःपर्वतमूर्द्धनि ।अथोत्तरीयवस्त्रेणगाढंबद्ध्वापुनःपुनः

ततश्चिक्षेप साऽऽत्मानमेकचित्ता नराधिप !।
नगार्द्धे पतिता यावत्तावद्दृष्टाः सुराङ्गनाः ॥ ११ ॥
भोभो वत्से महाभागे! भानुमत्यतितापसि ।
दिव्यं विमानमारुह्य कैलासम्प्रतिगम्यताम् ॥ १२ ॥
ततः सा पश्यतां तेषां जनानां त्रिदिवं गता ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते कथितः सर्वः शूलभेदस्यविस्तरः । यःश्रुतःशङ्करात्पूर्वमृषिदेवसमागमे ॥

यइदं पठतेभक्त्यातीर्थेदेवकुलेऽपिवा । स मुच्यते महापापादपिजन्मशतार्जितात्

ब्रह्महाच सुरापीच स्तेयी च गुरुतल्पगः । गोघातीस्त्रीविघातीचदेवब्रह्मस्वहारकः

स्वामिद्रोही मित्रघाती तथा विश्वासघातकः ।
परन्यासापहारी च परनिक्षेपलोपकः ॥ १७ ॥
रसभेदी तुलाभेदी तथा वार्द्धुषिकस्तु यः ।
यः कन्याविघ्नकर्त्ता च तथा विक्रयकारकः ॥ १८ ॥

परभार्यां भ्रातृभार्यां गां स्नुषामन्यस्त्रियं तथा । अभिगामी परद्रोहीतथाधर्मप्रदूषक
मुच्यन्ते सर्वं पर्वते शूलभेदप्रभावत ॥ २० ॥
य इदं श्रावयेच्छ्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां नृप । मुदं प्रयान्ति संहृष्टा पितरस्तस्य सर्वदा
यश्चेदं शृणुयाद्भक्त्या पठ्यमानं नरोत्तमः ।
स मुक्त सर्वपापेभ्य सर्वकल्याणभाग्भवेत् ॥ २२ ॥
इदं यशस्यमायुष्यमिदं पावनमुत्तमम् । पठतां शृण्वतां नृणामायु कीर्तिश्रियं वर्द्ध
इति कथितमिदं ॥ शूलभेदस्य पुण्य महिम न हि मनुष्यैः श्रूयते यत्सपापैः ।
मदनरिपुतडित्या याम्यकूलस्थितस्य प्रकटदुरितवल्लीकण्ठच्छेदशूलस्वरूपम् ॥२
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्
रेवाखण्डे शूलभेदतीर्थमाहात्म्यवर्णननामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५८ ॥

शूलभेदमाहात्म्यं समाप्तम्

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत पुष्करिणीं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
श्रुते यस्या प्रभावे तु सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ १ ॥
रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । यत्राऽस्ते सर्वदा देवो वेदमूर्तिर्दिवाक
कुरुक्षेत्रं यथा पुण्यं सार्वकामिकमुत्तमम् । इदं तीर्थं तथा पुण्यं सर्वकामफलप्रद
कुरुक्षेत्रे यथा वृद्धिर्दानस्य जगतीपते । पुष्करिण्यां तथा नाऽत्र पर्वते नाऽत्रसंश
यवमेकं तु यो दद्यात्सौवर्णं मस्तके नृप ।

पुष्करिण्यां तथा स्थानं यथा स्थानं नरे स्मृतम् ॥ ५ ॥
सूर्यग्रहे तु यः स्नात्वा दद्याद्दानं यथाविधि ।
हस्त्यश्वरथरत्नादि गृहं गाश्च युगन्धरान् ॥ ६ ॥
सुवर्णंरजतं वाऽपि ब्राह्मणेभ्योददाति यः । त्रयोदशदिनं यावत्त्रयोदशगुणम्भवेत्
तिलमिश्रेण तोयेन तर्प्पयेत्पितृदेवताः । द्वादशाब्दे भवेत्प्रीतिस्तत्र तीर्थे महीपते!
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिषा । श्राद्धदो लभते स्वर्गं पितृणां दत्तमक्षयम्
अक्षतैर्यवदूर्वैर्बिल्वैरिङ्गुदैर्वा तिलैः सह । अक्षयं फलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थे न संशयः
तत्र स्नात्वा तु यो देवं पूजयेच्च दिवाकरम् ।
आदित्यहृदयं जप्त्वा पुनरादित्यमर्चयेत् ॥
स गच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि वन्दितम् ॥ ११ ॥
ऋचमेकां जपेद्यस्तु यजुर्वासामएव च । स समग्रस्य वेदस्य फलमाप्नोति वै नृप
यस्त्र्यक्षरं जपेन्मन्त्रं ध्यायमानो दिवाकरम् ।
आदित्यहृदयं जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥
यस्तत्र विधिवत्प्राणांस्त्यजते नृपसत्तम ।
स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ १४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भूयोऽन्यद् प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम्। सर्वदुःखहरं पार्थ सर्वविघ्नविनाशनम्
आयुःश्रीवर्धनं नित्यपुत्रदं स्वर्गदं शिवम्। यस्य तीर्थस्य चाऽन्यानि तीर्थानि कुरुनन्दन
नालभन्त श्रियं नाके मर्त्ये पातालगोचरे।
कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा नैमिषं पुष्करं तथा ॥ ३ ॥
वाराणसी च केदारं प्रयागं रुद्रनन्दनम्। महाकालं सहस्राक्षं शुक्लतीर्थं नृपोत्तम
रवितीर्थस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
रवितीर्थे हि यद्वृत्तं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ ५ ॥
स्नेहात्ते कथयिष्यामि वार्धक्येनातिपीडितः। श्रुण्वन्तु ब्राह्मणाः सर्वे ततोऽमित्रघ्न महोजसः
श्रुतं मे रुद्रसान्निध्ये नन्दिस्कन्दगणैः सह।
पार्वत्या पृष्ट शम्भुश्च रवितीर्थस्य यत्फलम् ॥ ७ ॥
शम्भुना च यदाख्यातं गिरिजायाः ससम्भ्रमम्।
तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीतं श्रुतं मया ॥ ८ ॥
ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन पाण्डव। दुर्भिक्षोपहता विप्रा नर्मदां तु समाश्रिताः
उद्दालको वशिष्ठश्च माण्डव्यो गौतमस्तथा।
याज्ञवल्क्योऽथ गर्गश्च शाण्डिल्यो गालवस्तथा ॥ १० ॥
नाचिकेतो विभाण्डश्च वालखिल्यादयस्तथा।
शातातपश्च शङ्खश्च जैमिनिर्गोभिलस्तथा ॥ ११ ॥
[illegible] । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन नर्मदायाः समन्ततः

जम्बीरैरङ्गुनैःकुब्जैःशर्मकेशरकिंशुकैः । तस्मिंस्तीर्थेमहापुण्ये सुगन्धिकुसुमाकुले
पुन्नागनारिकेलैश्च खदिरैः कल्पपादपैः । अनेकश्वापदाकीर्णं मृगमार्जारसङ्कुलम् ॥
ऋक्षहस्तिसमाकीर्णं चित्रकैश्चोपशोभितम् । प्रविष्टाऋषयः सर्वे वनेपुष्पसमाकुले

वनान्ते च स्त्रियो दृष्ट्वा रक्ता रक्ताम्बरान्विताः ।
रक्तमाल्यानुशोभाढ्या रक्तचन्दनचर्चिताः ॥ १७ ॥
रक्ताभरणसंयुक्ताः पाशहस्ताभयावहाः ।
तासां समीपगा दृष्टाः कृष्णजीमूतसन्निभाः ॥ १८ ॥
महाकाया भीमवक्त्राः पाशहस्ता भयावहाः ।
अनावृष्ट्युपमा दृष्टा आतुराः पिङ्गलोचनाः ॥ १९ ॥
दीर्घजिह्वा करालास्या तीक्ष्णदंष्ट्रा दुरासदा ।
वृद्धानारी कुरुश्रेष्ठ दृष्टाऽन्या ऋषिपुङ्गवैः ॥ २० ॥
ततः समीपगा वृद्धा तस्य वृन्दस्य भारत !।
स्वाध्यायनिरता विप्रा दृष्टास्तैः पापकर्मभिः ॥ २१ ॥
ऊचुस्ते तु समूहेन ब्राह्मणांस्तपसि स्थितान् ।
अस्माकं स्वामिनः सर्वे तिष्ठन्ते तीर्थमध्यतः ॥
ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ २२ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषांसर्वेचैवत्वरान्विताः । जग्मुस्तेनर्मदाकक्षंदृष्ट्वारेवांद्विजोत्तमाः

ततः केचित्स्तुवन्त्यन्ये जय देवि! नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥
नमोऽस्तु ते सिद्धगणैर्निषेविते! नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रमङ्गले !।
नमोऽस्तु ते विप्रसहस्रसेविते! नमोऽस्तु रुद्राङ्गसमुद्भवे! वरे !॥ २५ ॥
नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने! नमोऽस्तु ते देवि! वरप्रदे! शिवे !।
नमामि ते शीतजले! सुखप्रदे! सरिद्वरे! पापहरे! विचित्रिते !॥ २६ ॥
अनेकभूतौघसुसेविताङ्गे !गन्धर्वयक्षोरगपाविताङ्गे !।
महागजौघैर्महिषैर्वराहैरापीयसे ऽम्महोर्मिमाले !॥ २७ ॥

नमामि ते सर्ववरे' सुखप्रदे' विमोचयास्मानवपाशबद्धान् ॥ २८ ॥
भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्या यावत्तवाम्भो नहि संश्रयन्ति ।
स्पृष्ट्वा करैश्चन्द्रमसो रवेश्चेत्तद्देवि दद्यात्परम परम पद तु ॥ २६ ॥
अनेकसंसारभयार्दितानां पापैरनेकैरभिवेष्टितानाम् ।
गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे' द्वन्द्वैरनेकैरभिसम्वृतानाम् ॥ ३० ॥
नद्यश्च पूता विमला भवन्ति त्वां देवि' संप्राप्य न संशयोऽत्र ।
तु सासुराणामभय ददासि शिवैरनेकैरभिपूजिताऽसि ॥ ३१ ॥
विण्मूत्रदेहाश्च निमग्नदेहा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु म या ।
महाघन्ध्वस्तनरङ्गभङ्ग जल न यावत्तव संस्पृशति ॥ ३२ ॥
म्लेच्छा पुलिन्दास्तथ यातुधाना पिबन्ति येऽम्भस्तवदेवि' पुण्यम् ।
तेऽपि प्रमुच्यन्ति भयाच्च घोरात्किमत्र विप्रा भवपाशभीता ॥ ३३ ॥
सरांसि नद्य क्षयमभ्युपेता घोरे युगेऽस्मिन्कलिनावसृष्टे ।
त्व भ्राजसे देवि जलौघपूर्णा दिवीव नक्षत्रपथे च गङ्गा ॥ ३४ ॥
तव प्रसादाद्वरदे विशिष्टे काले यथेम परिपालयित्वा ।
यास्याम मोक्षं तव सुप्रसादाद्वयं यथा त्वं कुरु न प्रसादम् ॥ ३५ ॥
त्वामाश्रिता ये शरण गताश्च गतिस्त्वमम्ब पितेव सुतान् ।
त्वत्पालिता यावदिम सुघोर काल त्वनावृष्टिहत क्षिपाम ॥ ३६ ॥
एवस्तुता तदा देवी नर्मदा सरिता वरा । प्रत्यक्षा सा परामर्षिद्विजब्राह्मणानां युधिष्ठि

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पठन्ति स्तोत्रमिद नरेन्द्र' शृण्वन्ति भक्त्या परया प्रशान्ता ।
ते यान्ति रुद्रं वृषसंयुतेन यानेन दिव्याम्बरभूषिताङ्गा ॥ ३८ ॥
ये स्तोत्रमेतत्सतत जपन्ति स्नात्वा च तोयेन तु नर्मदाया ।
तस्योऽन्तकाले सरिदुत्तमेयं गति विशुद्धामचिराद्ददाति ॥ ३६ ॥
प्रात समुत्थाय तथा शयानो य कीर्तयेतानुदिन स्तवेन्द्रम् ।

देहक्षयं स्वे सलिले ददाति समाश्रयं तस्य महानुभाव !॥ ४० ॥
पापैर्विमुक्ता दिवि मोदमानाः सम्भोगिनश्चैव तु नान्यथा च ॥ ४१ ॥
प्रसादान्नर्मदादेव्याःस्रोत्रेणाऽनेनभारत। जलेनाप्यायितान्विप्रान्दक्षिणापथवाहिनी
अमृतत्वं तु यो दद्यि योगिभिर्यन्नगम्यते। दुर्लभं यत्सुरैःसर्वैर्मत्प्रसादाल्लभिष्यथ
इति ते ब्राह्मणाराजल्लब्ध्वा वरमनुत्तमम्। गमिष्यन्तःप्रीतचित्तादद्दृशुश्चित्रमद्भुतम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दृष्टास्तैः पुरुषाःपार्थनर्मदातटसंस्थिताः। स्नानदेवार्चनासक्ताःपञ्चएवमहाबलाः
ते दृष्टा ब्राह्मणैः सर्व्वैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। सम्पृष्टास्तैर्महाराज यथा तदवधारय॥

विप्रा ऊचुः

वनान्ते स्त्रीयुगं दृष्ट्वा महारौद्रं भयावहम्। वृद्धाश्चपुरुषास्तत्रपाशहस्ताभयावहाः
दुर्धर्षा दुर्निरीक्ष्याश्च इतश्चेतश्च,चञ्चलाः। व्याहरन्तःशुभांवाचं न तत्रगतिरस्तिवै
अपरस्परयोः सर्वे निरीक्षन्तः पुनः पुनः।
तैस्तु तद्वचनं प्रोक्तं तत्सर्वं कथ्यतामिति ॥ ४६ ॥
अस्माकं पुरुषाः पञ्च तिष्ठन्ति तत्र सत्तमाः।
ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ ५० ॥
अथ ते पुरुषाः पञ्च श्रुत्वा वाक्यमिदं शुभम्।
परस्परं निरीक्षन्तो वदन्ति च पुनः पुनः ॥ ५१ ॥
क्व ते कस्य कुतो याताः किमुक्तं तैर्भयावहैः ॥ ५२ ॥

पुरुषा ऊचुः

तीर्थावगाहनंसर्वैः पूर्वदक्षिणपश्चिमैः। उत्तरैश्चकृतंभवत्या न पापं तैर्व्यपोहितम्
निष्पापाश्चाथ सञ्जातास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे वह्निकालोपमा द्विजाः ॥ ५४ ॥
पातकानि च घोराणि यान्यचिन्त्यानि देहिनाम्।
पापिष्टेन तु चैकेन गुरुदारा निषेविता ॥ ५५ ॥

हतघाऽन्येनमित्रस्वेसुवर्णंच घनन्तथा । ब्रह्महत्यामहारौद्रास्तलाघाऽन्येनपातकम्

सुरापानं ■ धान्यस्य सन्नातं धाप्यकामेन ।

गोवध्या धाप्यकामेन कृता येन पापिना ॥ ५७ ॥

अकामतोऽपि सर्वेषां पातकानि नराधिप ।

ब्राह्मणानां तु ते श्रुत्वा वाक्यं तद्विस्मयान्विताः ॥ ५८ ॥

सद्यपनदाजातापापिष्ठागनस्ल्मश । तीर्थस्याऽस्यप्रभावेणमर्मदाया प्रभावत

। अघिपातकाना तु प्रवेशाधाऽवजायते । दर्शसक्षियनेमर्येदापिष्ठाधपरस्परम्

चिरमानु स्मृतस्तेन्तु चिचिन्त्य हृदये हरिम् ।

स्नात्वा रेवाजले पुण्ये तर्पिता पितृदेवता ॥ ६१ ॥

नत्वा तु भास्करं देवं हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ।

प्रदक्षिणं तु त ततस्त्वा ज्वलन्तं जातवेदसम् ॥ ६२ ॥

पतिता पाण्डवश्रेष्ठ पापोद्विग्ना महीपते ।

सात्त्विकीं वासनां कृत्वा त्यक्त्वा रजस्तमस्तथा ॥ ६३ ॥

इत ते पावके सर्वंघायाउत्तरे तटे । विप्रानस्थास्तदाहृष्टाब्राह्मणेस्तैयुधिष्ठिर

आश्चयमतुलं दृष्टमृषिभिनमदातटे । तदाप्रभृति ते सर्वे रागद्वेषविवर्जिता ॥६५॥

रविलीर्थं द्विजाःपूणा सेवन्ते मोक्षकाङ्क्षया ।

तीर्थस्याऽस्य च यत्पुण्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ६६ ॥

पीडितो वृद्धभावेन भक्त्या प्रीतो नरेश्वर ।

उद्देशं कथयिष्यामि द्विकोशाभ्यन्तरे स्थितं ॥ ६७ ॥

कुरुक्षेत्र यथा पुण्य रवितीर्थं यत मत । ईश्वरेण पुराख्यातं षण्मुखस्य नराधिप

श्रुतं रुद्राच्च ते सर्वैरह तत्र समीपग ।

ईश्वर उवाच

रातण्डग्रहणे प्राप्ते ये मजन्ति षडानन । रवितीर्थे कुरुक्षेत्रे तुल्यमेतत्फलं लभेत् ॥

स्नाने दाने तथा जप्ये होमे चैव विशेषतः ।

कुरुक्षेत्रे समं पुण्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्रनर्मदा । रवितीर्थेविशेषेण रेवा पुण्यफलप्रदा
षष्ठ्यां सूर्यदिने भक्त्या व्यतीपाते च वैधृतौ ।
सङ्क्रान्तौ ग्रहणेऽमायां ये व्रजन्ति जितेन्द्रियाः ॥ ७२ ॥
कामक्रोधैर्विमुक्ताश्चरागद्वेषैस्तथैवच । उपोष्यपरया भक्त्या देवस्याऽग्रेनराधिप
रात्रौजागरणं कृत्वा दीपंदेवस्यबोधयेत् । कथां वै वैष्णवींपार्थ वेदाभ्यसनमेवच
ऋग्वेदं वा यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् । ऋचमेकां जपेद्यस्तु स वेदफलमाप्नुयात्
गायत्र्या च चतुर्वेदफलमाप्नोति मानवः । प्रभाते पूजयेद्विप्रानन्नदानहिरण्यतः ॥
भूमिदानेन वस्त्रेण अन्नदानेन शक्तितः । छत्रोपानहशय्यादि गृहदानेनपाण्डव! ॥
ग्रामधूर्वहदानेन गजकन्याहयेन च । विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयं भवेत् ॥ ७८॥
शत्रुश्च मित्रतां याति विषं चैवाऽमृतं भवेत् ।
ग्रहा भवन्ति सुप्रीताः प्रीतस्तस्य दिवाकरः ॥ ७६ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातंरवितीर्थफलंनृप । ये शृण्वन्ति नराभक्त्या रवितीर्थफलंशुभम्
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता रविलोके वसन्ति हि । गोदानेनचयत्पुण्यं यत्पुण्यंभृगुदर्शने
केदार उदकं पीत्वा तत्पुण्यं जायते नृणाम् ।
अब्दमश्वत्थसेवायां तिलपात्रप्रदो भवेत् ॥ ८२ ॥
तत्फलं समवाप्नोति आदित्येश्वरकीर्त्तनात् ।
श्रुते यस्य प्रभावे न जायते यन्नृपात्मज !॥ ८३ ॥
तत्सर्वंकथयिष्यामिभक्त्यातव महीपते । पापानिचप्रलीयन्तेभिन्नपात्रेयथाजलम्
तीर्थस्याऽभिमुखोनित्यंजायतेनाऽत्रसंशयः । गुह्याद्गुह्यतरंतीर्थंकथितंतवपाण्डव
पापिष्ठानां कृतघ्नानां स्वामिमित्रावघातिनाम् ।
तीर्थाऽख्यानं शुभं तेषां गोपितव्यं सदा बुधैः ॥ ८६ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

करोडीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्नराजेन्द्रकरोडीश्वरमुत्तमम् । यत्र वै निहतास्तात दानवाःसपदानुगाः
इन्द्रादिदेवैः संहृष्टैः सततं जयबुद्धिभिः । तेषां ये पुत्रपौत्राश्च पूर्ववैरमनुस्मरम् ॥

क्रुद्धैर्देवसमूहैश्च दानवा निहता रणे ।
तेषां शिरांसि संगृह्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३ ॥
निक्षिप्य नर्मदातोये बन्धुभावमनुस्मरम् ।
तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे स्थापयित्वा उमापतिम् ॥ ४ ॥

इन्द्रेणसहिताःसर्वेऽपूजयँल्लोकसिद्धये । हृष्टचित्ताःसुराःसर्वे जग्मुराकाशमण्डलम्

दानवानां महाभाग सूदिता कोटिरुत्तमा ।
तदाप्रभृति तत्तीर्थं करोडीति महीतले ॥ ६ ॥
विख्यातं तु तदा लोके पापघ्नं पाण्डुनन्दन ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुभौ पक्षौ च भक्तितः ।
उपोष्य शूलिनश्चाग्रे रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ ७ ॥

सत्कथापाठसंयुक्तो वेदाध्यनसंयुतः । प्रभाते विमले प्राप्ते पूजयेत्त्रिदशेश्वरम् ॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य श्रीखण्डेन च गुण्ठयेत् । शस्तैः पल्लवपुष्पैश्च पूजयेत्तु प्रयत्नतः
वहुरूपंजपन्मन्त्रंदक्षिणाशांव्यवस्थितः । यथोक्तेन विधानेन नाभिमात्रेजलेक्षिपेत्

तिलाञ्जलिं तु प्रेताय दक्षिणाशामुपस्थितः ।
श्राद्धं तत्रैव विप्राय कारयेद्विजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥

विषमैरग्रजातैश्च वेदाध्ययनतत्परैः । गोहिरण्येन सम्पूज्य ताम्बूलैर्भोजनैस्तथा ॥

भूषणैःपादुकाभिश्च ब्राह्मणान्पाण्डुनन्दन ।

अर्ककोटिगुणं तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यः कश्चित्त्यजेद्देहं विधानतः ।
तस्य भवति यत्पुण्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ १४ ॥
यावद्रोमाणि तिष्ठन्ति मर्त्यस्य नर्मदाजले ।
तावद्वसति धर्मात्मा शिवलोके सुदुर्लभे ॥ १५ ॥
ततः कालाच्च्युतस्तस्मादिह मानुषतां गतः ।
कोटीध्वजति धीमाञ्जायते राजपूजितः ॥ १६ ॥

…र्वधर्मसमायुक्तो मेधावी धीरपुत्रकः । जीवमानो वसुधापृष्ठे दीर्घायुर्मानवो भवेत्
…न्मानि तर्पयेत्तत्र गत्वा नृपोत्तम ॥ करोटीश्वरमभ्यर्च्य प्राप्नोति परमां गतिम्
…दश्यते रुद्रादिदेवैः स्तुतस्तथा । पितृदेवैस्तथा सर्वैः स्थापितस्त्रिदशेश्वर

रेवाया उत्तरे कूले लोकानां हितकाम्यया ।
मातृभिर्मुनिभिर्युक्तः प्रासादे कारयेत्तु च ॥ २० ॥

…स्मिंस्तीर्थे नरश्रेष्ठ गच्छन्ति समवाप्नुयात् । स्नात्वोपोषितनित्यं रुद्राक्षपाणेश्वरं…

ब्राह्मणाः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिश्च भक्तितः ।
तेऽपि यान्ति नरा लोके शाङ्करे सुरपूजिते ॥ २२ ॥
यः शृणोति सदा भक्त्या माहात्म्यं तीर्थजं नृप ।
तस्य पापं प्रणश्येत सप्तजन्मान्तरं च यत् ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे रेवाखण्डे
करोटीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र! कुमारेश्वरमुत्तमम्। प्रसिद्धं सर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरसन्निधौ

षण्मुखेन पुरा तात! सर्वपातकनाशनम्।
आराध्य परया भक्त्या सिद्धिः प्राप्ता नराधिप! ॥ २ ॥
देवसैन्याधिपो जातः सर्वशत्रुनिबर्हणः।
उग्रतेजा महात्माऽसौ सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ ३ ॥

तदाप्रभृतितत्तीर्थसञ्जातं नर्मदातटे। तत्रतीर्थे तु यो गत्वा एकचित्तो जितेन्द्रियः

कार्त्तिकस्य चतुर्दश्यामष्टम्यांचविशेषतः। स्नापयेद्गिरिजानाथंदधिदुग्धेनसर्पिषा

गीतं तत्रप्रकर्त्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि। ब्राह्मणैःश्रोत्रियैःपार्थषट्कर्मनिरतैःशुभैः

यत्किञ्चिद्दीयते तत्र अक्षयं पाण्डुनन्दन। सर्वतीर्थमयंतीर्थं निर्मितं शिखिना नृप

एतत्तेसर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजं फलम्। कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्यते पाण्डुनन्दन!

मृतः स्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥



चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । सर्वपापनाशायअगस्त्येश्वरमुत्तमम्
तत्रस्नात्वा नरोराजन्मुच्यते ब्रह्महत्यया । कार्त्तिकस्यतुमासस्यकृष्णपक्षेचतुर्दशी
घृतेन स्नापयेत्तु देवं समाधिस्थो जितेन्द्रिय ।
एकविंशतिकुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात् ॥ ३ ॥
धन चोपानहौ छत्र दद्याच्च घृतकम्बलम् । भोजन चैव सर्वेषामवं कोटिगुण भवेत्
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम चतु षष्टितमोऽध्याय ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

आनन्देश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र आनन्देश्वरमुत्तमम् । रुद्रस्य परमानन्दो यत्रजातो युधिष्ठिर
तत्तीर्थं कथयिष्यामि सर्वपापक्षय करम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आनन्दश्चैव सञ्जातो रुद्रस्य द्विजसत्तम । कथयतामेवतत्सर्वंसङ्क्षेपात्सहबान्धवै

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ आनन्देश्वरमुत्तमम् । दानवानांवधं कृत्वा देवदेवोमहेश्वर ॥

पूजितो दैवतैः सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नगैः । आनन्दसंयुतो देवो ननर्त वृषवाहनः ॥
भैरवं रूपमास्थाय गौर्याधार्धाङ्गसंस्थितः । भूतवेतालकङ्कालैर्भैरवैर्भैरवो वृतः ॥
ननर्त नर्मदातीरे दक्षिणे पाण्डुनन्दन ! । तुष्टैस्तद्गणैः सर्वैः स्थापितः कमलासनः
तदाप्रभृति तत्तीर्थमानन्देश्वरमुच्यते । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां नराधिप
विधिवच्चार्चयेद्देवं सुगन्धेन विलेपयेत् । ब्राह्मणान्पूजयेत्तत्र यथाशक्त्या युधिष्ठिर
गोदानं तत्र कर्त्तव्यं वस्त्रदानं शुभावहम् । वसन्तस्य त्रयोदश्यां श्राद्धं तत्रैव कारयेत्
इङ्गुदैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतैश्च जलेन वा । प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमानन्देश्वर उत्तमे ॥ १०॥
आनन्दिता भवेयुस्ते यावदाभूतसम्प्लवम् । सन्ततेर्वै न विच्छेदः सप्तजन्मसु जायते
आनन्दो हि भवेत्तेषां प्रतिजन्मनि भारत ॥ ११ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे काशीति माहात्म्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
आनन्देश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! मातृतीर्थमनुत्तमम् । सङ्गमस्य समीपस्थं नर्मदादक्षिणे तटे
मातरस्तत्र राजेन्द्र! सञ्जाता नर्मदा तटे । उमार्द्धनारिर्देवेशो व्यालयज्ञोपवीतधृक्
उवाच योगिनीवृन्दं कष्टं कष्टमहो हर । अजेयाः सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥
तीर्थमत्र विधानेन प्रख्यातं वसुधातले ।
एवं भवतु योगिन्य इत्युक्त्वाऽन्तरधाच्छिवः ॥ ४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या नवम्यां नियतः शुचिः ।

उपोष्य परया भक्त्या पूजयेन्मातृगोचरम् ॥ ५ ॥

तस्यस्तु मातर प्रीताप्रीतोऽयं नृपवाहन । वन्ध्यायामृतवत्सायाअपुत्रायायुधिष्ठिर
स्नापनं चारभेत्तत्र मन्त्रशास्त्रविदुत्तम । सहिरण्येन कुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वित
स्नापयेत्पुत्रकामाया कारुण्यपात्रेण देशिक ।

पुत्रं सा लभते नारी वीर्यवन्त गुणान्वितम् ॥ ८ ॥

योयं काममभिध्यायेत्तत मलभते नृप । मातृतीर्थात्परंतीर्थं न भूत न भविष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षट्षष्टितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

लुङ्केश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं तात' जन्मध्ये व्यवस्थितम् ।

लुङ्केश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ १ ॥

इदंतीर्थं महापुण्यं नानाश्चर्यं महीतले । अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यशृणुष्वकिरणुभारत
आसींत्पुरामहापार्थो दानशीलस्तपस्विन । लालुकृष्ट इतिख्यात शुनोभ्रमपुत्रस्य च
गङ्गातटे समाश्रित्य चचार विपुलं तप ॥

अधोमुखोऽपि संस्थित्याऽपिबद् धूममहर्निशम् ॥ ४ ॥

ततश्चानन्तरं देवस्त्रिपुरेश्वमयामाह । दृष्ट्वा स पार्वती तत्र तु तपस्युग्रेव्यवस्थितम्
परमपरग महादेव धूमाशी तिष्ठते नर । प्रसीद त्वं तुष्ट्याऽधरेहि वीर्यं वरं विभो'

ईश्वर उवाच

यदुक्तं वचनं देवि' मनस्यगोचन प्रिये । स्वकार्यं च सदाचिन्त्यं परकार्यं विवर्जयेत्

मूर्खस्त्रीबालशत्रूणां यश्छन्देनाऽनुवर्त्तते । व्यसने पतते घोरे सत्यमेतद्धुदीरितम्

देव्युवाच

भार्यायाऽभ्यर्थितो भर्त्ता कारणं बहु भाषते ।
लघुत्वं याति सा नारी एवं शास्त्रेषु पठ्यते ॥ ६ ॥
प्राणत्यागं करिष्यामि यदि मां त्वं न मन्यसे ।
पार्वत्या प्रेरितो देवो गतोऽसौ दानवं प्रति ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

किमर्थं पिबसेधूमं किमर्थंतप्यसेतपः । किं दुःखंकिनुसन्तापोवदकार्यमभीप्सितम्
युवा त्वं दृश्यसेऽद्यापिवर्षविंशतिरेवच । तदाचक्ष्व हि मे सर्वं तपसः कारणंमहत्

दानव उवाच

अचला दीयतां भक्तिर्मम स्थैर्य्यं तवोपरि । अपरं वर्षसाहस्रं निर्विघ्नं मेगतंविभो
दिवसानां सहस्रे द्वे पूर्णे त्वत्तपसा मम ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

याचयाऽभीप्सितंकार्यंतुष्टोऽहं तव सुव्रत । देवस्यवचनंश्रुत्वाचिन्तयामासदानवः
किं नाकं याचयाम्यद्य किमद्य सकलां महीम् ।
एवं सञ्चिन्तयामास कामबाणेन पीडितः ॥ १६ ॥

दानव उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दास्यसि मे प्रभो ।
संग्रामैस्तु न तुष्टोऽहं बलं नास्तीति किञ्च न ॥ १७ ॥
यस्य मूर्द्धन्यहंदेवपाणिनासमुपस्पृशे । देवदानवगन्धर्वोभस्मसाद्यातु तत्क्षणात्

ईश्वर उवाच

यत्त्वया चिन्तितं किञ्चित्तत्सर्वं सफलं तव । उत्तिष्ठ गच्छशीघ्रंत्वंभवनंप्रतिदानव

दानव उवाच

स्थीयतां देवदेवेश! यावज्ज्ञास्यामि ते वरम् ।

नारद उवाच

देवदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। सर्वेषामेव देवेशो हरते ध्रुवमापदम् ॥
असंभाव्यं न वक्तव्यंमनसापि न चिन्तयेत्। ईदृशींनैवबुद्ध्यामिआपदंचविभोतव

ईश्वर उवाच

गच्छ नारद शीघ्रं त्वं यत्र देवो जनार्द्दनः। विदितं च त्वया सर्वं यत्कृतंदानवेनतु
अवध्यो दानवो ह्येष सेन्द्रैरपि मरुद्गणैः। गत्वा तु केशवं देवं निवेदय महामुने !॥

नारद उवाच

न तु गच्छाम्यहं देव सुप्तः क्षीरोदधौसुखी। केशवंप्रेरणे ह्येषामादेशोदीयतांप्रभो
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा राजानं च तथा प्रभुम्।
गुरुं चैवाऽदितः कृत्वा शयानं न प्रबोधयेत्॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच

यदि कश्चिदगारेषु वह्निरुत्पद्यते महान्। निधनंयान्ति तत्रस्था यद्बुद्ध्येरन्नसूरयः

नारद उवाच

शीघ्रं गच्छ महादेवआत्मानं रक्ष सुप्रभो। गच्छाम्यहं न सन्देहो यत्रदेवोजनार्द्दनः
ततो नन्दिमहाकालौ स्तम्भहस्तौ भयानकौ।
जघ्नतुर्दानवं तत्र मुद्गरादिभिरायुधैः ॥ ४६ ॥
त्रयोऽपि च महाकायाः सप्ततालप्रमाणकाः।
न शमो जायते तेषां युध्यतां च परस्परम् ॥ ४७ ॥
ततश्चानन्तरंविप्रोऽगच्छत्तंकेशवं प्रति। सुप्तं क्षीरार्णवेऽपश्यच्छेषपर्यङ्कसंस्थितम्
लक्ष्म्या पादयुगं गृह्य ऊरूपरि निवेशितम्।
अप्सरोगीयमानं तु भक्त्याऽऽनम्य च केशवम् ॥ ४६ ॥
अद्य मे सफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम्। उत्थापयस्वदेवेशंलक्ष्मित्वमविशंकिता
नारदस्यवचः श्रुत्वा पदाङ्गुष्ठं व्यमर्द्दयत्। नारदस्तिष्ठतेद्वारिउत्तिष्ठमधुसूदन
देवोऽपि नारदं दृष्ट्वापरंहर्षमुपागतः। स्वागतं तु मुनिश्रेष्ठ ! सुप्रभाताऽद्यशर्वरी ॥

नारद उवाच

अद्य मे सफलं देवप्रभात तवदर्शनात् । कुशल च न देवाना शीघ्रमुत्तिष्ठगम्यताम्

श्रीविष्णुरुवाच

ब्रह्मा रुद्रश्च रुद्रश्च ये चान्ये तु मरुद्गणा । आपद कारणयथातत्त्वमाख्यातुमर्हसि

नारद उवाच

दानवेन महातीव्र तपस्तप्त सुदारुणम् । रुद्रेण च वरो दत्तोऽभस्मत्वं मनसेप्सितम्

परश्चानयत्नेनैव ■ देव हन्तुमर्हति । ईदृश चेप्सित ज्ञात्वा भीतो देवोऽमरै सह ॥

नारदस्य वच श्रुत्वा नगाममुनिर्हरि । दृष्ट्वा देवस्तथाऽऽशातश्चान्तदिशमुत्तराम्

दृष्ट्वा देव च रुद्राऽथ परिष्वज्य पुन पुन । नमस्कृत्य जगन्नाथ देव च मधुसूदन

विष्णुरुवाच

भयस्य कारण देव' कथ्यता च महेश्वर । देवदानवयक्षाणां प्रेरयेव यमालयम् ॥

कलाने च कृतो धर्मो युष्माकश्च महेश्वर ।

छित्वा शिरस्तथाङ्गानि इन्द्रियाणि न मशय ॥ ६० ॥

ईश्वर उवाच

नास्ति सौख्य ■ मूर्खेषु नास्ति सौख्य च रोगिषु ।

पराधीने न सौख्य तु स्त्रीजिते च विशेषत ॥ ६१ ॥

स्त्रीजितेन मया विष्णो' वरो दत्तस्तु दानवे ।

यस्य मूर्ध्नि न्यसेत्पाणि स भवेद्भस्मपुञ्जवत् ॥ ६२ ॥

अनेयश्चामरश्चैव मया हा च म केशव '। हन्तुमिच्छसिमा पापउपायस्तवविधते

विष्णुरुवाच

गच्छन्तु अमरा सर्व युष्माभि महशङ्कर । उपाय सञ्चयाम्यद्य यथार्थदानवस्य च

रेवायाश्च तटे तिष्ठ देव त्वममरै सह । कालक्षेपो न कर्तव्योगम्यतात्वरितप्रभो

दक्षिणा यत्र गङ्गा च रेवा चैव महानदी ।

यत्र यत्र च दृश्येत प्राचीचैव सरस्वती ॥ ६६ ॥

तत्समं च महातीर्थं न मर्त्येष्वेव दृश्यते । स्नानं ये तत्रकुर्वन्तिदानञ्चैवतुभक्तितः
सप्तजन्मकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः । एतत्तीर्थं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥
गम्यतां तत्र देवेश! लुङ्केशं त्वं सहामरैः ।
विष्णोस्तु वचनादेव प्रविष्टो ह्रदमुत्तमम् ॥ ६९ ॥
रतिं सुमहतीञ्चक्रे सह तत्र मरुद्गणैः । ततश्चानन्तरं देवो मायां कृत्वा ह्यनेकधा ॥
वसन्तमासं संसृज्य उद्यानवनशोभितम् । अशोकैर्बकुलैश्चैव ब्रह्मवृक्षैः सुशोभनैः ॥
श्रीवृक्षैश्च कपित्थैश्च शिरीषै राजचम्पकैः ।
श्रीफलैश्च तथा तालैः कदम्बोदुम्बरैस्तथा ॥ ७२ ॥
अश्वत्थादिद्रुमैश्चैव नानावृक्षैरनेकशः । नानापुष्पैःसुगन्धाढ्यं भ्रमरैश्चनिनादितम्
तस्मिन्मध्ये महावृक्षो न्यग्रोधश्च सुशोभनः ।
बहुपक्षिसमायुक्तः कोकिलारावनादितः ॥ ७४ ॥
कृष्णेन च कृतं तस्मिन्कन्यारूपं च तत्क्षणात् ।
न तस्याः सदृशी कन्या त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७५ ॥
अन्याश्च कन्यकाः सप्त सुरूपाः शुभलोचनाः ।
दिव्यरूपधराः सर्वा दिव्याभरणभूषिताः ॥ ७६ ॥
पुमांसमभिकाङ्क्षन्त्यो यथैकः कामयेत्स्त्रियः ।
मौक्तिकै रत्नमाणिक्यैर्वैदूर्यैश्च सुशोभनैः ॥ ७७ ॥
कामहारैश्चवंशैश्चबद्धोहिन्दोलकःकृतः । आरूढाश्च महाकन्या गायन्ते सुस्वरंतदा
मारुतः शीतलो वाति वनं स्पृष्ट्वा सुशोभनम् ।
वातेन प्रेरितो गन्धो दानवो घ्राणपीडितः ॥ ७९ ॥
ततः कुसुमगन्धेन विस्मयं परमंगतः । आघ्राय चेदृशं पुण्यं न दृष्टं न श्रुतं मया
वने चिन्तयतः किञ्चिद्ध्वनिर्गीतं सुशोभनम् ।
गीतस्य च ध्वनिं श्रुत्वा मोहितो मायया हरेः ॥ ८१ ॥
व्याधस्यैव महाकूटे पतन्ति च यथा मृगाः ।

कालस्पृष्ट (कालपृष्ठ) स्तथा कुम्भे पतितश्च नराधिप ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वा कन्या च तां दैत्यो मूर्च्छया पतितो भुवि ।
पतितेन तु दुष्टेन कन्या धरातले स्थिता ॥ ८३ ॥
आस्यं दृष्ट्वा तु नारीणां पुनः कामेन पीडितः ।
गृहीत्वा हेमदण्डं तु ता पातयितुमिच्छति ॥ ८४ ॥

कन्योवाच

मा मानुस्पर्शय त्वं हि कुमार्यहं कुलोत्तम ॥
भो मुञ्चमुञ्च मा शीघ्रं यावद्गच्छाम्यहं गृहम् ॥ ८५ ॥

दानव उवाच

अहं विवाहमिच्छामि त्वयासहसुशोभने । भूपृष्ठे सफले रात्री भवन्त्येवंनसंशयः

कन्योवाच

पिता रक्षति कौमार्ये भर्त्ता रक्षति यौवने । पुत्रो रक्षति वृद्धत्वे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति
न स्वातन्त्र्य ममैवास्ति उत्पन्नाऽहं महत्कुले ।
वाच्यस्तु मत्पिता भ्राता मातापि हि तथैव च ॥ ८८ ॥

दानव उवाच

यदि मा नेच्छसे त्वय स्वातन्त्र्यं नावलम्बसे ।
ममापि च तदा हत्या सत्यं च शुभलोचने ॥ ८९ ॥

कन्योवाच

विश्वासो नैव कर्तव्यो यादृशो तादृशो नरे ।
नराः स्त्रीषु विचित्राश्च लम्पटाः काममोहिताः ॥ ९० ॥
परिणीय मा त्वं हि भुङ्क्ष्व भोगान्मया सह ।
जन्मनाशो भवेत्पश्चाच्च त्व नान्यो भवेन्मम ॥ ९१ ॥
ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैशी शूद्री यावत्तथैव च ।
द्वितीयो न भवेद्भर्त्ता एकाकी चेह जन्मनि ॥ ९२ ॥

दानव उवाच

यत्त्वया गदितं वाक्यं तन्मया धारितं हृदि ।
प्रत्ययं मे कुरुष्वाऽद्य यत्ते मनसि रोचते ॥ ९३ ॥

कन्योवाच

जानीष्व गोपकन्यां मां क्रीडामि सखिभिः सह ।
अस्मत्कुलेषु यद्दिव्यं तत्कुरुष्व यथाविधि ॥ ९४ ॥
न तद्दिव्यं कुलेऽस्माकं विषं कोशं न तत्तुला ।
गोपान्वयेषु सर्वेषु हस्तः शिरसि दीयते ॥ ९५ ॥
कामान्धेनैव राजेन्द्र! निक्षिप्तो मस्तके करः ।
तत्क्षणाद्भस्मसाद्भूतो दग्धस्तृणचयो यथा ॥ ९६ ॥
केशवोपरिदेवैस्तुपुष्पवृष्टिः शुभाकृता । हृष्टाःसर्वेऽगमन्देवास्वस्थानंविगतज्वराः
क्षीरोदं केशवोऽगच्छत्कालपृष्ठे निपातिते । यइदंश्रणुयाद्भक्त्याचरितंदानवस्यच
स जयी जायते नित्यं शङ्करस्य वचोयथा ।
एतस्मात्कारणाद्राजँल्लिङ्केश्वर (लुङ्केश्वर) मितिश्रुतम् ॥ ९९ ॥
लीनं च पातकं यस्मात्स्नानमात्रेण नश्यति ।
त्वगस्थिशोणितं मांसं मेदस्नायुस्तथैव च ॥ १०० ॥
मज्जाशुक्रगतंपापं नश्यते जन्मकोटिजम् । लुङ्केश्वरे महाराज तोयं पिबति भक्तितः
त्रिभिःप्रसृतिमात्राभिः पापं याति सहस्रधा ।
विशेषेण चतुर्दश्यामुभौ पक्षौ तु चाष्टमी ॥ १०२ ॥
उपोष्य यो नरो भक्त्या पितृणां पाण्डुनन्दन !।
उद्धृतास्ते सर्वे नारकीयाःपितामहाः ॥ १०३ ॥
काकिणीं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे । तेन दानफलंसर्वंकुरुक्षेत्रादिकं च यत्
प्राप्तं तु नान्यथा राजञ्छङ्करो वदते त्विदम् ।
स्पर्शलिङ्गमिदं राजञ्छङ्करेण तु निर्मितम् ॥ १०५ ॥

स्पर्शमात्रे मनुष्याणामुद्‌वासोऽभिजायते। तेन दानफलसर्वं कुरुक्षेत्रादिकं च यत्
एतस्मात्कारणाद्राजँल्लोकपालाश्च रक्षका ।
दुर्गा च रक्षणे सृष्टा चतुर्हस्तधरा शुभा ॥ १०७ ॥
धनदो लोकपालेशो रक्षकश्चेश्वरस्य च । रक्षति च सदा कालं महद्व्यापाररूपतः ॥
पुत्रभ्रातृत्वमारूपे स्वामिसम्बन्धरूपिभिः । लुङ्केश्वर नराजेन्द्र दैवैर्नाऽद्यापिमुच्यते
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे लुङ्केश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धनदस्य तु सत्तीर्थं ततो गच्छेद्युधिष्ठिर । नर्मदादक्षिणे कूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥
सर्वतीर्थफलं तत्र प्राप्यते नात्र संशयः । चैत्रमासत्रयोदश्यां शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः
उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ।
पञ्चामृतेन राजेन्द्र स्नपयेद्धनदं बुधः ॥ ३ ॥
दीपं घृतेन दातव्यं गीतं वाद्यं च कारयेत् । प्रभाते पूजयेद्विप्रानात्मनः श्रेय इच्छति
प्रतिग्रहसमर्थाश्च विद्यासिद्धान्तवादिनः ।
श्रौतस्मार्तक्रियायुक्तान्परदारपराङ्मुखान् ॥ ५ ॥
पूजयेद्गोहिरण्येन वस्त्रोपानहभोजनैः । छत्रशय्याप्रदानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥
त्रिजन्मजनितं पापं धनदस्य प्रभावतः । स्वर्गदं दुर्विनीतानां विनीतानां च मोक्षदम्
अन्नदं च दरिद्राणां भवेज्जन्मनि जन्मनि । कुलीनत्वं दुःखदानि स्वभावाज्जायते नरे
व्याधिध्वंसो भवेत्तेषां नर्मदोदकसेवनात् ।

धनदस्य तु यस्तीर्थे विद्यादानं प्रयच्छति ॥ ६ ॥
स याति भास्करे लोके सर्वव्याधिविवर्जिते ।
देवद्रोणीं च तत्रैव स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन !॥ १० ॥
ये प्रकुर्वन्ति भूयिष्ठां रेवाया दक्षिणे तटे । तेयान्ति शाङ्करे लोकेसर्वदुःखविवर्जिते

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्त्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्रमङ्गलेश्वरमुत्तमम् । स्थापितंभूमिपुत्रेणलोकानांहितकाम्यया
तोषितः परया भक्त्या शङ्करः शशिशेखरः ।
चतुर्द्दश्यां गुरुर्देवः प्रत्यक्षो मङ्गलेश्वरः ॥ २ ॥
ब्रूहि पुत्र! वरं शुभ्रं तत्ते दास्यामि मङ्गल !॥ ३ ॥

मङ्गल उवाच

प्रसादं कुरु मे शम्भो प्रतिजन्मनि शङ्कर । त्वदङ्गस्वेदसम्भूतो ग्रहमध्येवसाम्यहम्
त्वत्प्रसादेन ईशान पूज्योऽहं सर्वदैवतैः । कृतार्थोह्यद्य सञ्जातस्तव दर्शनभाषणात्
स्थानेऽस्मिन्देवदेवेश मम नाम्ना महेश्वरः । एवं भवतुतेपुत्रेत्युक्त्वाचान्तरधीयत
मङ्गलोऽपि महात्मा वै स्थापयित्वा महेश्वरम् ।
आत्मयोगवलेनैव शूलिनाऽपूजयत्ततः । ७ ॥
सर्वदुःखहरंलिङ्गं नाम्नावै मङ्गलेश्वरम् । तत्र तीर्थेतु वैराजन्ब्राह्मणान्प्रीणयेत्सुधीः
सपत्नीकान्नृपश्रेष्ठ चतुर्थ्यङ्गारके व्रते । पत्नीभर्त्तारसंयुक्तं विद्वांसं श्रोत्रियं द्विजम्

व्रतान्ते चैव गोधुर्यं शिवमुद्दिश्य दीयते ।
प्रीयतां [redacted] महादेव सपत्नीको वृषध्वज ॥ १० ॥
वस्त्रयुग्मं प्रदातव्यं लोहितं पाण्डुनन्दन । धूर्वही रक्तवर्णौ च शुभ्रं कृष्णं तथैव च
छत्रं शय्या शुभा चैव रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
दातव्यं पाण्डवश्रेष्ठ विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ १२ ॥
चतुर्थ्यांन्तु तथाऽन्यस्या पक्षयो शुक्लकृष्णयो ।
श्राद्धं तत्रैव कर्त्तव्यं वित्तशाठ्येन वर्जितं ॥ १३ ॥
प्रेता भवन्तितुप्रीता युगमेकं महीपते । नपुत्रो जायते नस्य प्रतिजन्म नृपोत्तम
तस्य तीर्थस्य भावेन सर्वाङ्गरुचिरो नृप । मङ्गलभवने चैवनाऽशुभं विद्यते क्वचित्
भक्त्या च कीर्त्तयेन्नित्य तस्य पापं व्यपोहति ॥ १६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्रया संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनसप्ततितमोऽध्याय ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्याय

रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । रविणा निर्मितं पार्थ सर्वपापक्षयङ्करम्
स्थापितोन भास्करस्तत्र तिष्ठत चोत्तरे तटे ।
सर्वव्याधिहरः पुंसां नर्मदाया व्यवस्थितः ॥ २ ॥
षष्ठ्यांसप्तम्यांनृपश्रेष्ठह्यष्टम्यांचचतुर्दशीम् । स्नानं कारयेन्मर्त्य श्राद्धपर्वसु भक्तितः
तस्य पापक्षयं पार्थ सूर्यलोके महीयते ॥ ३ ॥
ततः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि जायते विमले कुले ।

धनाढ्योव्याधिनिर्मुक्तो जीवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामेश्वरंततश्चान्यच्छृणु पाण्डवसत्तम । सिद्धोयत्रगणाध्यक्षोगौरीपुत्रोमहाबलः

तत्रतीर्थे तु यो भक्त्या भक्तियुक्तो जितेन्द्रियः ।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य धूपनैवेद्यपूजनैः ॥ २ ॥

प्रसाद्यजगतामीशं सर्वपापः प्रमुच्यते । अष्टम्यां मार्गशीर्षस्यतत्र स्नात्वायुधिष्ठिर

यो येन यजते तत्र स तं काममवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्याय

मणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र मणिनागेश्वरं शुभम् । उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥
स्थापितं मणिनागेन लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आशीविषेण सर्पेण ईश्वरस्तोषितः कथम् ।
क्षुद्रः सर्वस्य लोकस्य भयदो विषशालिनः ॥ २ ॥
कथयस्व तात मे सर्वं पातकघ्नोपशान्तिदम् । मम सन्तापदग्धस्य दुर्योधनसमुद्भवम्
वनभीष्मोद्भवं रौद्रं दुःखं प्राप्तास्मि सम्भवम् ।
तव वक्त्राम्बुजोत्थेन प्लावितं निर्वृतिं गतः ॥ ४ ॥
श्रुत्वा तव मुखोद्गीतां कथां वै पापनाशिनीम् ।
अयुक्तमिदमस्माकं छिद्रं क्लेशो न शाम्यति ॥ ५ ॥
अधर्मात्प्राप्यते तात विद्यादानस्य यत्फलम् । तत्फलं प्राप्यते नित्यं कथाश्रवणतोऽनघ

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यथा यथा त्वं नृप भाषसे च तथा तथा मे सुखमेति भारती ।
शैथिल्यता वा जरयान्वितस्य त्वत्सौहृदं नश्यति नैव तात ॥
शृणुष्व तस्मात्सह बान्धवैश्च कथामिमां पापहरां प्रशस्ताम् ॥ ७ ॥
कथयामि यथावृत्तमितिहासं पुरातनम् ॥ ८ ॥
कथितं पूर्वतो वृत्तं पारम्पर्येण भारत ॥ ९ ॥
द्वे भार्ये कश्यपस्यास्तां सर्वलोकेष्वनुत्तमे । गरुत्मन्तं च विनताऽसूत कद्रूरहीनथ
सन्तोषेण च ते तात तिष्ठतः कश्यपे गृहे । कद्रूश्च विनतानाम द्वेषेण पश्यते सदा

ताभ्यां सार्द्धं क्रीडते च कश्यपोऽपि प्रजापतिः ।
ततस्त्वेकदिने प्राप्ते आश्रमस्था शुभानना ॥ १२ ॥
उच्चैःश्रवं हयं दृष्ट्वा मनोवेगसमन्वितम् । पश्यपश्य हि तन्वङ्गीहयंसर्वत्रपाण्डुरम्
धावमानमविश्रान्तंजवेनमनसोपमम् । तं दृष्ट्वासहसाचाऽश्वमीर्ष्याभावेनचाब्रवीत् ।

कद्रूरुवाच

ब्रूहिभद्रेसहस्रांशोरश्वःकिंवर्णकोभवेत् । अहंब्रवीमि कृष्णोऽयं त्वं किं वदसितद्वद

विनतोवाच

पश्यसे ननु नेत्रैश्च कृष्णंश्वेतं न पश्यसि । असत्यभाषणाद्भद्रे यमलोकंगमिष्यसि
सत्यानृते तु वचने पणस्तव ममैव तु । सहस्रं चैव वर्षाणां दास्यहं तव मन्दिरे ॥
असत्या यदि मे वाणी कृष्ण उच्चैःश्रवा यदि ।
तदाऽहं त्वद्गृहे दासी भवामि सर्पमातृके ॥ १८ ॥
दिउच्चैश्रवाःश्वेतोऽहंदासीचतवैवतु । एवं परस्परंताभ्यां सम्वादोऽयंव्यवर्द्धत
आश्रमेषु गता बाला रात्रौ चिन्तापरा स्थिता ।
बन्धुवर्गस्य कथितं समस्तं तद्विचेष्टितम् ॥ २० ॥
पुत्राणांकथितंपार्थपणश्चैवमयाकृतम् । हाहाकारःकृतःसर्पैःश्रुत्वामात्रापणंकृतम्
तादासीनसन्देहःश्वेतोभास्करवाहनः। उच्चैःश्रवाहयःश्वेतोनकृष्णोविद्यतेक्वचित् ।

कद्रूरुवाच

यथाऽहंनभवेदासीतत्कार्यंच विचिन्त्यताम् । विषश्चंरोमकूपेषुह्युच्चैःश्रवहयस्यतु
एकं मुहूर्त्तमात्रं तु यावत्कृष्णःस दृश्यते । क्षणमात्रेणचैकेन दासीसा भवते मम
दासीं कृत्वा तु तां तन्वीं विनतां सत्यगर्विताम् ।
ततः स्वस्थानगाः सर्वे भविष्यथ यथासुखम् ॥ २५ ॥

सर्पा ऊचुः

यथात्वंजननीचाम्बसर्वेषांभुवि पूजिता । तथासाऽपिविशेषेण वह्निज्ञानमातरः
माता च पितृभार्या च मातृमाता पितामही ।

कर्मणा मनसा वाचा हितं तासां समाचरेत् ॥ २७ ॥

मातस्तेन वाक्येन मुद्राकालानलोपमा । ममवाक्यमकुर्वाणायेकेचिद्भुविपन्नगा
हव्यवाहमुखेसर्वेते यास्यन्त्यविचारितम् । मातुस्तद्वचनंश्रुत्वासर्वेचैवभुजङ्गमाः
कश्चित्प्रविष्टा रोमेषु उच्चैःश्रवह्यस्य च । नष्टा केचिद्दशदिशं कद्रूशापभयात्तत ॥

केचिद्गङ्गाजले नष्टा केचिन्नष्टा सरस्वतीम् ।
केचिन्महोदधौ लीना प्रविष्टा विन्ध्यकन्दरे ॥ ३१ ॥

आश्रित्य नर्मदातोये मणिनागोत्तमो नृप । तपश्चचार विपुलमुत्तरे नर्मदातटे ॥

मातृशापभयात्पार्थ ध्यायते कामनाशनम् ।
अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥

वायुभक्ष शतं साग्रं तदर्थं रविर्वीक्षकः । एवं ध्यानरतस्यैव प्रत्यक्षस्त्रिपुरान्तकः
साधुसाधुमहाभागसत्त्वयास्तुभुजङ्गम । त्वयाभक्त्यागृहीतोऽहप्रीतस्तेऽद्य रगेश्वर
वरं याचय मे क्षिप्रं यत्ते मनसि वर्तते ॥ ३५ ॥

मणिनाग उवाच

मातृशापभयात्राथहिरीऽह नर्मदातटे । त्वत्प्रसादेन मे नाथ मातृशापोभवेद्दुष्पर

ईश्वर उवाच

हव्यवाहमुखं वत्स न प्राप्स्यसि ममाऽज्ञया ।
मम लोके निवासश्च तव पुत्र भविष्यति ॥ ३७ ॥

मणिनाग उवाच

अत्र स्थाने महादेव स्थीयतामत्रमागत । सहश्राशेन भागेन स्थायतानमदाज्ञके
उपकाराय लोकानां मम नाम्नैव शङ्कर ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच

स्थापस्व परलिङ्गमाज्ञया मम पन्नग । इत्युक्त्वान्तर्हितो देवो जगामह्य मयासह

मार्कण्डेय उवाच

तत्रतीर्थे येनान्वाशुचिप्रयतमानसा । पञ्चम्यायाश्चतुर्दश्यामष्टम्याशुक्लपक्षयो

अर्चयन्ति सदा पार्थ नोपसर्पन्ति ते ममम् ।
दध्ना च मधुना चैव घृतेन क्षीरयोगतः ॥ ४१ ॥
स्नापयन्ति विरूपाक्षमुमादेहार्धधारिणम् । कामाङ्गदहनं देवमथासुरनिषूदनम् ॥
स्नाप्यमानञ्च ये भक्त्या पश्यन्ति परमेश्वरम् ।
ते यान्ति च परे लोके सर्वपापविवर्जिते ॥ ४३ ॥
श्राद्धं येतेषु ये पार्थ चाष्टम्यां पञ्चमीषु च । ब्राह्मणैश्चसदायोग्यैर्वेदपाठकचिन्तकैः
स्वदारनिरतैः श्लक्ष्णैः परदारविवर्जितैः । षट्कर्मनिरतैस्तात शूद्रप्रेषणवर्जितैः
खञ्जाश्च दर्दुराः षण्ढा वार्द्धुष्याश्च कुशीवलाः ।
भिन्नवृत्तिकराः पुत्र! नियोज्या न कदाचन ॥ ४६ ॥
वृषली मन्दिरे यस्य महिषीं यस्तु पालयेत् ।
स विप्रो दूरतस्त्याज्यो व्रते श्राद्धे नराधिप !॥ ४७ ॥
काणाण्डुपण्डाश्च मण्डाश्च वेदपाठविवर्जिताः ।
नते पूज्या द्विजाः पार्थ! मणिनागेश्वरे शुभे ॥ ४८ ॥
यदीच्छेदूर्ध्वगमनमात्मनः पितृभिः सह ।
सर्वाङ्गरुचिरां धेनुं यो दद्यादग्रजन्मने ॥ ४९
स याति परमं लोकं यावदाभूतसंप्लवम् ।
ततः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि जायते विमले कुले ॥ ५० ॥
ये पश्यन्ति परं भक्त्या मणिनागेश्वरं नृप !।
न तेषां जायते वंशे पन्नगानां भयं नृप !॥ ५१ ॥
पन्नगः शङ्कते तेषां मणिनागप्रदर्शनात् । सौपर्णरूपिणस्ते वै दृश्यन्ते नागमण्डले
फलानि चैवदानानांशृणुष्वाऽथनृपोत्तम । अन्नंसंस्कारसंयुक्तं ये ददन्तेनरोत्तमाः
तोयं शय्यां तथा छत्रं कन्यां दासीं सुभाषिणीम् ।
पात्रे देयं यतो राजन्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ५४ ॥
सुरभीणि च पुष्पाणि गन्धवस्त्राणि दापयेत् ।

दीपं धान्यं गृहं शुभ्रं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ५१ ॥
येऽदन्त्येपरं भक्त्या ते व्रजन्ति त्रिविष्टपम् । मणिनागे नृपश्रेष्ठ यद्यद्दानं प्रदीयते
तस्य दानस्य भावेन स्वर्गे वासो भवेद्ध्रुवम् ।
पातकानि प्रलीयन्ते आमपात्रे यथा जलम् ॥ ५७ ॥
नर्मदातोयसंसिद्धभोज्यं विप्रेभ्यो दापयेत् । सोऽपि पापैर्विनिर्मुक्तः क्रीडते दैवतैः सह
ततः स्वर्गच्युतानां हि लक्षणं प्रवदाम्यहम् ।
दीर्घायुरोगाः सपुत्राः धनवन्तः सुशोभनाः ॥ ५९ ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्ताः सुतभृत्यैः समन्विताः ।
त्यागिनो भोगसंयुक्ता धर्माख्यानरताः सदा ॥ ६० ॥
देवद्विजगुरोर्भक्तास्तीर्थसेवापरायणाः ।
मातापितृपराः नित्यं द्रोहकार्यविवर्जिताः ॥ ६१ ॥
एभिरेवगुणैर्युक्ता येनरा पाण्डुनन्दन । सत्यलोकस्य गताद्यायाता स्वर्गे वा सम्भवन्ति ते
सर्वतीर्थवरं तीर्थं मणिनागं नृपोत्तम । तीर्थाख्यानमिदं पुण्यं यः शृणुयादपि
सोऽपि पापैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते । न स्त्रियं गमते तेषां विचरन्ति यथेच्छया
भाद्रपदा च यत्पुण्यं सूर्यस्य दर्शने । तत्फलं समवाप्नोति आख्यानश्रवणेन तु

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

गोपारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सर्वपापहरं पार्थ! गोपारेश्वरमुत्तमम्
गोदेहान्निःसृतं लिङ्गं पुण्यं भूमितले नृप !॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गोदेहान्निः सृतं कस्माल्लिङ्गं पापक्षयङ्करम् ।
दक्षिणे नर्मदाकूले मणिनागसमीपतः ॥
संक्षेपात्कथ्यतां विप्र! गोपारेश्वरसम्भवम् ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामधेनुस्तपस्तत्र पुरा पार्थ चकार ह । ध्यायते परया भक्त्या देवदेवं महेश्वरम्
तुष्टस्तस्या जगन्नाथःकपिलायामहेश्वरः । निःसृतो देहमध्यात्तुअच्छेद्यःपरमेश्वरः
तुष्टो देवि! जगन्मातः कपिले परमेश्वरि । आराधनं कृतंयस्मात्तद्वदाऽऽशुशुभानने

सुरभ्युवाच

लोकानामुपकाराय सृष्टाऽहं परमेष्ठिना ।
लोककार्याणि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति मत्प्रसादतः ॥ ६ ॥
लोकाः स्वर्गं प्रयास्यन्ति मत्प्रसादेन शङ्कर !।
तीर्थे त्वं भव मे शम्भो! लोकानां हितकाम्यया ॥ ७ ॥
तथेति भगवानुक्त्वा तीर्थे तत्रावसन्मुदा ।
तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातं वसुधातले ।
स्नानेनैकेन राजेन्द्र! पापसङ्घं व्यपोहति ॥ ८ ॥
गोपारेश्वरगोदानं यस्तु भक्त्या च कारयेत् ।

योग्ये द्विजोत्तमे देया योग्या धेनुः सकाञ्चना ॥ ॥

सवत्सा तरुणी शुभ्रा चतुर्क्षीरा सवस्त्रका । कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा प्रदापयेत् सर्वेषु चैव मासेषु कार्त्तिके च विशेषतः । दापयेत्परया भक्त्या द्विजेस्वाध्यायतत्परे विधिना यः प्रदद्याद्यो विधिना यश्च गृह्णते । तावुभौ पुण्यकर्माणौ प्रेक्षकः पुण्यभाजनम् पिण्डदानं प्रकुर्याच्च प्रेतानां भक्तिसंयुतः । पिण्डेनैकेन राजेन्द्र प्रेतायान्ति परां गतिम् भक्त्या प्रणामं रुद्रस्य ये कुर्वन्ति दिनेदिने । ते रापापं प्रलीयेत भिन्नपात्रे जलं यथा तत्र तीर्थे नृपो राजन्वृषभं च समुत्सृजेत् । पितरस्तोद्धृतास्तेन शिवलोके महीयते

युधिष्ठिर उवाच

वृषोत्सर्गे कृते तात फलं यज्जायते नृणाम् । तत्सर्वं कथयस्वाद्य प्रयत्नेन द्विजोत्तम

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वलक्षणसम्पूर्णे वृषे चैव तु यत्फलम् । तदहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व धर्मनन्दन ॥

कार्त्तिके चैव वैशाखे पूर्णिमायां नराधिप ।

रुद्रस्य सन्निधौ भूत्वा शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः ॥ १८ ॥

वृषस्यैव समुत्सर्गं कारयेत्तीर्थनायकः । सान्निध्ये कारयेत्सुव्रतस्तथोपरि सिकताः शुभाः कृत्वा ॥ विप्रमुख्याय सर्वलक्षणसंयुता । प्रीयतां च महादेवो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः वृषभे रोमसङ्ख्या या सर्वाङ्गेषु नराधिप । तावद्वर्षप्रमाणं तु शिवलोके महीयते शिवलोके वसित्वा ॥ यदा मर्त्येषु जायते । कुले महति सम्भूतिर्धनधान्यसमाकुले

नीरोगो रूपवांश्चैव विद्याढ्यः सत्यवाक्छुचिः ।

गोपारेश्वरमाहात्म्यं मया ख्यातं युधिष्ठिर ॥

गोदेहाज्जितं लिङ्गं नर्मदादक्षिणे तटे ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे गोपारेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्। सर्वपापहरं मर्त्ये नाम्ना वै गौतमेश्वरम्

स्थापितं गौतमेनैव लोकानां हितकाम्यया।

स्वर्गसोपानरूपं तु तीर्थं पुंसां युधिष्ठिर!॥ २॥

तत्र गच्छ परंभक्त्यायत्रदेवोजगद्गुरुः। पातकस्यविनाशार्थं स्वर्गवासप्रदस्तथा

सौभाग्यवर्द्धनं तीर्थं जयदं दुःखनाशनम्। पिण्डदानेन चैकेन कुलानामुद्धरेत्त्रयम्

यत्किञ्चिद् दीयते भक्त्या स्वल्पं वा यदि वा बहु।

तत्सर्वं शतसाहस्रमाज्ञया गौतमस्य हि॥ ५॥

तीर्थानां परमं तीर्थं स्वयं रुद्रेण भाषितम्॥ ६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्। शङ्खचूडस्य नाम्ना वै प्रसिद्धं भूमिमण्डले
शङ्खचूड स्यय तत्र ह्यस्थित पाण्डुनन्दन। वैनतेयभयात्पार्थ सुरम्ये नर्मदातटे
तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या शुचिर्भूत्वा समाहितः।
स्नापयेच्छङ्खचूडं तु क्षीरक्षौद्रेण सर्पिषा ॥ ३ ॥
रात्रौ जागरणं कुर्याद्देवस्याग्रे नराधिप। पश्चिमे ब्राह्मणान्पूज्य ब्राह्मणांश्छंसितव्रतान्
गोप्रदाने द्विजेन्द्रोऽय सर्वपापक्षयङ्कर ॥ ४ ॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यः पार्थ सर्पदष्टश्च प्रमुच्यते। स याति परमं लोकं शङ्करस्य यथोदयथा

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्याय

पारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र पारेश्वरमनुत्तमम्। पराशरो महात्मा वै नर्मदायास्तटे शुभे
तपश्चचार विपुलं पुत्रार्थं पाण्डुनन्दन। हिमवद्दुहिता तेन गौरी नारायणी नृप
तोषिता परया भक्त्यानर्मदोत्तरके तटे। तस्य तुष्टा महादेवी शङ्करार्द्धाङ्गधारिणी
भोभोऋषिवर श्रेष्ठ तुष्टाऽहं तव भक्तितः। वरं याचयमेविप्र पराशर महामते॥

पराशर उवाच

परितुष्टाऽसि मे देवियदिदेयोवरोमम । देहि पुत्रं भगवतिसत्यशौचगुणान्वितम्

वेदाभ्यसनशीलं हि सर्वशास्त्रविशारदम् ।

तीर्थं चाऽत्र भवेद् देवि! सन्निधानवरेण तु ॥ ८ ॥

लोकोपकारहेतोश्च स्थीयतां गिरिनन्दिनि !। पराशराभिधानेन नर्मदादक्षिणेतटे

श्रीदेव्युवाच

एवं भवतु ते विप्र! तत्रैवान्तरधीयत । पराशरोमहात्मावै स्थापयामास पार्वतीम्

शङ्करं स्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् । अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च देवानां तुदुरासदम्

पराशरो महात्मा वै कृतार्थो ह्यभवन्नृप !॥ १० ॥

तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या शुचिः प्रयतमानसः ।

स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि कामक्रोधविवर्जितः ॥ ११ ॥

माघे चैत्रेऽथ वैशाखेश्रावणे नृपनन्दन !। मासिमार्गशिरे चैव शुक्लपक्षे तुसर्वदा

तत्र गत्वा शुभे स्थाने नर्मदादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥

उपोष्य परया भक्त्या व्रतमेतत्समाचरेत् ।

रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपदानं स्वशक्तितः ॥ १४ ॥

गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कामक्रोधविवर्जितः ।

प्रभाते विमले प्राप्ते द्विजाः पूज्याः स्वशक्तितः ॥ १५ ॥

संपूज्य ब्राह्मणान्पार्थ धनदानहिरण्यतः । वस्त्रेण छत्रदानेनशय्याताम्बूलभोजनैः

प्रीणयेन्नर्मदातीरे ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् । श्राद्धं कार्यं नृपश्रेष्ठआमैः पक्वैर्जलेनच

स्त्रीणां चैव तुशूद्राणामामश्राद्धं प्रशस्यते । आमंचतुर्गुणंदेयं ब्राह्मणानांयुधिष्ठिर

वेदोक्तेनविधानेन द्विजाः पूज्याः प्रयत्नतः । हस्तमात्रैः कुशैश्चैवतिलैश्चैवाक्षतैर्नृप

विप्रा उदङ्मुखाः कार्याः स्वयं वै दक्षिणामुखः ।

दर्भेषु निक्षिपेदन्नमित्युच्चार्य द्विजाग्रतः ॥ २० ॥

प्रेता यान्तु परेलोके तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः । पापं मेप्रशमं यातुएतुवृद्धि शुभंसदा

वृद्धि यातु सदा यशो शान्तिवर्गो द्विजोत्तम । पयमुख्यायविप्राय दानदेयंस्वशक्तित गोभूतिसहिरण्यादि धान्यं यथास्वशक्तित । दातव्यपाण्डवश्रेष्ठ पारेश्वरवराश्रमे
ये शृण्वन्ति परं भक्त्या मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे पारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामषट्सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थ माहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भीमेश्वर ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयङ्करम् । मेचित ऋषिसङ्घैश्चर्मीमप्ततधरे शुभे ॥
तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा सोपवासो जितेन्द्रिय ।
अपेदेकाक्षर मन्त्रमूर्ध्वबाहुर्दिवाकरे ॥ २ ॥
तस्यजन्मार्जितपापंतत्क्षणादेव नश्यति । सप्तजन्मार्जितं पापगायत्र्यानश्यतेध्रुवम् दशभिर्जन्मभिर्जातशतेनतुपुराकृतम् । सहस्रेण त्रिजन्मोत्थगायत्रीहन्तिकिल्बिषम् धर्मिर्ष लौकिक पापिजाप्यं जप नरेश्वर । तत्क्षणाद्दहते सर्वं तृणन्तुज्वलनोयथा न देवब्रह्माश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् । अज्ञानान्नश्यतेक्षिप्रं नोत्तर तु कदाचन तत्र तीर्थे तु यो दानशक्तिमाश्रित्य चाचरत् । तदक्षय्यफलसर्वंजायतेपाण्डुनन्दन

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे भीमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम् । तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥

युधिष्ठिर उवाच

नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं विनिर्मितम् । एतदाख्याहिमे सर्वप्रसन्नोयदिसत्तम!

श्रीमार्कण्डेय उवाच

परमेष्ठिसुतः पार्थ!नारदो मुनिसत्तमः । रेवायाश्चोत्तरे कूले तपस्तेन पुरा कृतम् ॥

नवनाडीनिरोधेन काष्ठावत्यां गतेन च । तोषितः पशुभर्त्ता वै नारदेन युधिष्ठिर !

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽहं तव विप्रेन्द्र! योगिनाथ अयोनिज !। वरंप्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसिवर्त्तते

नारद उवाच

त्वत्प्रसादेन मे शम्भो योगश्चैव प्रसिध्यतु । अचलातेभवेद्भक्तिः सर्वकालं ममैव तु

स्वेच्छाचारी भवे देव वेदवेदाङ्गपारगः । त्रिकालज्ञोजगन्नाथगीतज्ञोऽहं सदा भवे

दिनेदिने यथा युद्धं देवदानवमानुपैः । पातालेमर्त्यलोके वा स्वर्गे वाऽपि महेश्वर

पश्येयं त्वत्प्रसादेन भवन्तं पार्वतीं तथा । तीर्थं लोकेषुविख्यातं सर्वपापक्षयङ्करम्

ईश्वर उवाच

एवं नारद! सर्वं तु भविष्यति न संशयः । चिन्तितंमत्प्रसादेर्नसिद्ध्यतेनात्रसंशयः

स्वेच्छाचारो भवेर्वत्स स्वर्गे पातालगोचरे ।
मर्त्ये वा भ्रम वै योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ॥ ११ ॥
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशत्प्रसादान्मे तव ध्रुवम् ॥ १२ ॥

मम प्रियङ्कर दिव्य नृत्यगीत भविष्यति । कलि च पश्यसेनित्य देवदानवकिन्नरैः
त्वत्तीर्थं भूतले पुण्य म प्रसादाद्भविष्यति । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ह्यौंरज्ञानकोविद ॥
एकस्त्वमसि नि सङ्गो मत्प्रसादेन नारद ॥ १४ ॥
इत्युक्त्वान्तदधे देवो नारदस्तत्र शूलिनम् ।
स्थापयामास राजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ १५ ॥
पृथिव्यामुत्तम तीर्थं निर्मितनारदेन तु । तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजितेन्द्रिय
मासि भाद्रपदे पार्थ कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ १७ ॥
छत्र तत्र प्रदातव्य ब्राह्मणे शुभलक्षणे । शक्तितस्तु हता येषे तेषा श्राद्ध प्रदापयेत् ॥
ते यान्ति परम लोक पिण्डदानप्रभावत ॥ १८ ॥
कपिलातत्रदातव्यापितृनुद्दिश्यभारत । इत्युच्चार्यद्विजेदेव्यायान्तु ते परमागतिम्
अस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्यप्रसादत । नमदातोयभावेनन्यायार्जितधनस्यच
तेषा चैव प्रभावेण प्रेता यान्तु परा गतिम् ॥ २० ॥
इत्युच्चार्य द्विजे देया दक्षिणा च स्वशक्तित ।
हविष्यान्न विशालाक्षि द्विजाना चैव दापयेत् ॥ २१ ॥
दीपं भक्त्या प्रदातव्य नृत्य गीत च कारयेत् ।
अथात्र तेन वै सर्व य करोतीश्वराग्रतः ॥ २२ ॥
स याति रुद्रसान्निध्यमिति रुद्र स्वयं जगौ ।
विद्यादानेन चैतेन अक्षया गतिमाप्नुयात् ॥ २३ ॥
धूवहास्तत्रदातव्याभूमि सस्यवती नृप । चित्रभानु शुभैमन्त्रै प्रीणयेत्तत्रभक्तित
आज्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येणभारत । ये यजन्ति सदा भक्त्या त्रिकालनृत्यगेयच
तीर्थे नारदनामाख्ये रेवायाश्चोत्तरे तटे । चित्रभानुमुखादेवा सर्वदेवमयो ह्यग्नि
ह्यग्निणा प्रीणिता सर्वे तस्मात्प्रीत्योक्ष हुताशन ।

---

* प्रीतय —प्रीणनीय —इत्यर्थ ।

पूजिते हव्यवाहे तु दारिद्र्यं नैव जायते ॥ २७ ॥
धनेन विपुला प्रीतिर्जायते प्रतिजन्मनि । कुलीनाश्च सुवेषाश्च सर्वकालं धनेन तु
प्लवो नदीनां पतिरङ्गनानां राजा च सद्वृत्तरतः प्रजानाम् ।
धनं नराणामृतवस्तरूणां गतं गतं यौवनमानयन्ति ॥ २९ ॥
धनदत्वं धनेशेन तस्मिंस्तीर्थे ह्युपार्जितम् । यमेनच यमत्वं हि इन्द्रत्वंचैववज्रिणा
अन्यैरपि महीपालैः पार्थिवत्वमुपार्जितम् ।
नारदेश्वरमाहात्म्याद्ध्रुवो निश्चलतां गतः ॥ ३१ ॥
सर्वतीर्थवरं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु । पृथिव्यां सागरान्तायां रेवायाश्चोत्तरे तटे
तद्वरं सर्वतीर्थानां महापातकनाशनम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थद्वयमनुत्तमम् । दधिस्कन्दंमधुस्कन्दं सर्वपापक्षयङ्करम्
दधिस्कन्दे नरः स्नात्वा यस्तु दद्याद्द्विजे दधि ।
उपतिष्ठेत्ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत !॥ २ ॥
न व्याधिर्न जरा तस्य न शोको नैव मत्सरः ।
दशचन्द्रशतं यावज्जायते विमले कुले ॥ ३ ॥
मधुस्कन्देऽपि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ।
नाऽसौ वैवस्वतं देवं पश्येद्वै जन्मसप्ततिम् ॥ ४ ॥

मधुनासह सम्मिश्र पिण्डयस्तुप्रदापयेत् । तस्यपौत्रप्रपौत्रेभ्योदारिद्र्यनैवजायते

दधिभि 'सहसमिश्र पिण्ड यस्तु प्रदापयेत् ।
तस्मिंस्तीर्थे नर स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुख ॥ ६ ॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
द्वादशाब्दानि तुष्यन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनाशीतितमोऽध्याय ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नन्दिकेश्वरमुत्तमम् । यत्रसिद्धो महानन्दीतत्तेसर्वंवदाम्यहम्
रेवाया पुरत कृत्वा पुरा नन्दीगणेश्वर । तपस्तपत्रयं कुर्वंस्तीर्थात्तीर्थंजगाम ह

दधिस्कन्द मधुस्कन्द यावत्स्यक्त्वा तु गच्छति ।
तावत्तुष्टो महादेवो नन्दिनाथमुवाच ह ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच

भोभो प्रसन्नो नन्दीश वरवृणुयथेप्सितम् । तपसातेनतुष्टोऽहं तीर्थयात्राकृतेन ते ॥

नन्दीश्वर उवाच

न चाऽहं कामये वित्त न चाऽहं कुलसन्ततिम् ।
मुक्त्वा न कामये काम तव पादाम्बुजात्परम् ॥ ५ ॥
कृमिकीटपतङ्गेषु तिर्यग्योनि गतस्य वा ।

जन्म जन्मान्तरेऽप्यस्तु भक्तिस्त्वयि ममाऽचला ॥ ६ ॥
तथेत्युक्त्वा महादेवः परया कृपया नृप !।
गृहीत्वा तं करे सिद्धं जगाम निलयं हरः ॥ ७ ॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या त्र्यक्षं प्रपूजयेत् ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा प्राणत्यागं करोति चेत् ।
शिवस्याऽनुचरो भूत्वा मोदते कल्पमक्षयम् ॥ ६ ॥
ततः कालेन महता जायते विमले कुले। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जीवेच्च शरदां शतम्
एतत्तेकथितंतात!तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् । दुर्लभं मर्त्यसञ्ज्ञस्य सर्वपापक्षयंकरम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज वरुणेश्वरमुत्तमम् । यत्र सिद्धो महादेवो वरुणो नृपसत्तम
पिण्याकशाकपर्णैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
आराध्य गिरिजानाथं ततः सिद्धिं परां गतः ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
पूजयेच्छङ्करं भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ३ ॥
कुण्डिकांवर्द्धनीं वाऽपि महद्वा जलभाजनम् । अन्नेनसहितंपार्थतस्यपुण्यफलंशृणु
यत्फलं लभतेमर्त्यःसत्रेद्वादशवार्षिके ।।तत्फलंसमवाप्नोतिनाऽत्रकार्याविचारणा
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परंस्मृतम् । सद्यःप्रीतिकरंतोयमन्नंच नृपसत्तम !॥ ६॥

तत्र तीर्थे मृतानां तु नराणां भावितात्मनाम् ।
वरुणस्य पुरे वासो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७ ॥
पश्चात्पूर्णे तत्र काले मर्त्यलोके प्रजायते । अन्नदानप्रदो नित्यं जीवेद्वर्षशतं नरः ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल वह्नितीर्थमनुत्तमम् । यत्र सिद्धो महातेजास्तप कृत्वा हुताशनः ॥
सर्वभक्ष्य कृतो योऽसौ दण्डके मुनिना पुरा ।
नर्मदातटमाश्रित्य पूतो जातो हुताशनः ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
अग्निप्रवेशं कुरुते स गच्छेदग्निसाम्यताम् ॥ ३ ॥
भक्त्या स्नात्वा तु यस्तत्र तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥
अस्यैवाऽनन्तरं राजन्कौवेरं तीर्थमुत्तमम् । कुबेरो यत्र संसिद्धो यक्षाणामधिपः पुरा ॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् ।
उमया सहितं भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा दद्याद्विप्राय काञ्चनम् ।
नाभिमात्रे जले तिष्ठन्स्लभेतार्बुदं फलम् ॥ ७ ॥
दधिस्कन्दे मधुस्कन्दे नन्दीशे वरुणालये ।

आग्नेये यत्फलंतात स्नात्वा तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८ ॥
ते धन्या मानुषे लोके धन्याःपूर्णमनोरथाः । यैस्तुदृष्टंमहापुण्यंनर्मदातीर्थपञ्चकम्
ते यान्ति भास्करे लोके परमे दुःखनाशने । भास्कराद्वैश्वरेलोकेचैश्वरादनिवर्त्तकः
नीयतेसपरेलोकेयावदिन्द्राश्चतुर्द्दश । ततःस्वर्गाच्च्युतोमर्त्यो राजाभवतिधार्मिकः
सर्वरोगविनिर्मुक्तोभुनक्तिसचराचरम् । विष्णुश्च देवता येषांनर्मदातीर्थसेविनाम्
अखण्डितप्रतापास्ते जायन्ते नाऽत्र संशयः ।
गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ १३ ॥
ग्रामे वा यदिवाऽरण्ये पुण्यासर्वत्रनर्मदा । रेवातीरेवसेन्नित्यं रेवातोयंसदापिबेत्
स स्नातः सर्वतीर्थेषुसोमपानंदिनेदिने । गङ्गाद्याःसरितःसर्वाःसमुद्राश्चसरांसिच
कल्पान्ते सङ्क्षयं यान्ति न मृता तेन नर्मदा ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्ताखण्डे रेवाखण्डे दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

हनूमन्तेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थं परमशोभनम् । ब्रह्महत्याहरं प्रोक्तं रेवातटसमाश्रयम् ॥
हनूमताभिधं ह्यत्र विद्यते लिङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हनूमन्तेश्वरं नाम कथं जातं वदस्व मे । ब्रह्महत्याहरं तीर्थं रेवादक्षिणसंस्थितम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाबाहो! सोमवंशविभूषण !।

गुह्याद् गुह्यतरं तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ ३ ॥
तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि पीडितो वार्द्धकेन तु । पूर्वं जातं महद्युद्धं रामरावणयोरपि
पुलस्त्यो ब्रह्मणः पुत्रो विश्रवास्तस्य वै सुतः ।
रावणस्तेन संजातो दशास्यो ब्रह्मराक्षसः ॥ ५ ॥
त्रैलोक्यविजयीभूत प्रसादाच्छूलिनः स च ।
गीर्वाणा विजिताः सर्वे रामस्य गृहिणी हृता ॥ ६ ॥
पातितः कुम्भकर्णेन सीता मोचयमोचय । विमानगेन वै पापोमन्दोदर्यापुनःपुनः
त्वं जितः कार्तवीर्यणरेणुकेयेनमोऽपि च । सरामोरामभद्रेणतस्यसङ्ख्येकपजयः
रावण उवाच
वानरैश्च नरैर्मर्त्यैर्वराहैश्च निरायुधैः । देवासुरसमूहैश्च न जितोऽहं कदाचन ॥
श्रीमार्कण्डेय उवाच
सुग्रीवहनुमद्भ्यां च कुमुदेनाङ्गदेन च । पनैरन्यैः सहायैश्च रामचन्द्रेण वै जितः
रामचन्द्रेण पौलस्त्यो हतः सङ्ख्ये महाबलः । वनभङ्गकृता शूरा समक्रमतुलेन च
रावणस्य सुतो जन्वेहनश्चाक्षकुमारकः । आयामोरक्षसां भीमं सपिष्टोवानरेणतु
एवं रामायणे वृत्ते सीतामोक्षे कृते सति । अयोध्यातुगतेरामेहनुमान्समहाकपिः
कैलासाख्यं गतः शैलं प्रणामाय महेशितुः ।
तिष्ठतिष्ठेत्यऽसौ प्रोक्तो नन्दिना वानरोत्तमः ॥ १४ ॥
ब्रह्महत्यायुतस्त्वं हि राक्षसानां वधेन हि । मेरवस्य समानूल नद्रष्टव्यस्त्वयाकपे
हनुमानुवाच
नन्दिनाथ हरं पृच्छ पातकस्योपशान्तिदम् ।
पापोऽहं प्लवगो यस्मात्संजातं कारणान्तरात् ॥ १६ ॥
नन्द्युवाच
रुद्रदेहोद्भवा किं ते न श्रुताभूतलेस्थिता । श्रवणाज्जन्मजनितं द्विगुणंकीर्तनाद्व्रजेत्
त्रिशज्जन्मार्जितंपापं न श्येद्रेवावगाहनात् । तस्मात्त्वंनर्मदातीरेगत्वाचरतपोमहत्

गन्धवाहसुतोऽप्येवंनन्दिनोक्तंनिशम्य च । प्रयातोनर्मदातीरमौर्व्यादक्षिणसङ्गमम्
दध्यौ सुदक्षिणे देवं विरूपाक्षंत्रिशूलिनम् । जटामुकुटसंयुक्तंव्यालयज्ञोपवीतिनम्
भस्मोपचितसर्वाङ्गं डमरुस्वरनादितम् । उमार्द्धाङ्गहरंशांतंगोनाथासनसंस्थितम्
वत्सरान्सुबहून्यावदुपासाञ्चक्र ईश्वरम् । तावत्तुष्टो महादेव आजगामसहोमया
उवाच मधुरां वाणीं मेघगम्भीरनिस्वनाम् ।
साधुसाध्वित्युवाचेशः कष्टं वत्स त्वया कृतम् ॥ २३ ॥
नचपूर्वंत्वयापापंकृतंरावणसङ्क्षये । स्वामिकार्यरतस्त्वंहिसिद्धोऽसिममदर्शनात्
हनुमांश्च हरं दृष्ट्वा उमार्द्धाङ्गहरं स्थितम् ।
साष्टाङ्गं प्रणयोऽवोचज्जय शम्भो! नमोऽस्तु ते ।
जयाऽन्धकविनाशाय जय गङ्गाशिरोधर !॥ २५ ॥
एवं स्तुतो महादेवो वरदो वाक्यमब्रवीत् । वरं प्रार्थय मे वत्स प्राणसम्भवसम्भव

श्रीहनूमानुवाच

ब्रह्मरक्षोवधाज्जाता मम हत्या महेश्वर । न पापोऽहंभवेदेव युष्मत्सम्भाषणेक्षणात्

ईश्वर उवाच

नर्मदातीर्थमाहात्म्याद्धर्मयोगप्रभावतः । मन्मूर्त्तिदर्शनात्पुत्र निष्पापोऽसिनसंशयः
अन्यञ्च ते प्रयच्छामि वरं वानरपुङ्गव !। उपकारायलोकानां नामानितव मारुते
हनूमानञ्जनिसुतोवायुपुत्रोमहाबलः । रामेष्टःफाल्गुनोगोत्रःपिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः
उदधिक्रमणश्रेष्ठो दशग्रीवस्य दर्पहा । लक्ष्मणप्राणदाता च सीताशोकनिवर्त्तनः
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेदेव! उमयासह शङ्करः । हनूमानीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तितः
आत्मयोगबलेनैव ब्रह्मचर्यप्रभावतः । ईश्वरस्य प्रसादेन लिङ्गं कामप्रदं हि तत् ॥
अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३२ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

हनूमन्तेश्वरे पुत्र! प्रत्यक्षप्रत्ययं शृणु । यद्वृत्तं द्वापरस्यादौ त्रेतान्ते पाण्डुनन्दन
सुपर्वा नाम भूपालो बभूव वसुधातले ।

तस्य राज्ञः सदा सौख्यं नरा दीर्घायुषः सदा ॥ ३६ ॥
स पुत्रधनसंयुक्तश्चौरोपद्रववर्जितः । शतबाहुर्बभूवाऽस्य पुत्रो भीमपराक्रमः ॥
आसक्तोऽसौ सदा कालं पापधर्मैर्नरेश्वरः ।
अटाट्यत धरां सर्वां पर्वतांश्च वनानि च ॥ ३७ ॥
यथार्थं मृगयूथानामागतो विन्ध्यपर्वतम् ।
तस्मिन्निमार्कर्णे हस्तियूथसमाचिते ॥ ३८ ॥
सिंहचित्रकशोभाढ्ये मृगवाराहसङ्कुले । क्रीडित्वा स वने राजा नर्मदामागत क्वचित्
हनूमन्तवनेग्रामे शतक्रोशप्रमाणके । चिञ्चिणायनशोभाढ्ये कदम्बतरसङ्कुले ॥
निम्ब पालाशजम्बीरैः करञ्जखदिरैस्तथा ।
पाटलैर्बदरैः शुङ्कैः शमीतिन्दुकशोभितम् ॥ ४१ ॥
मृगयूथैः समाच्छन्नशिखण्डिस्वरनादितम् ।
पारावतकसङ्घानां समन्तात्स्वरशोभितम् ॥ ४२ ॥
शरत्कालेऽगमद्राजा बहुले चाऽश्विनस्य स ।
वनमध्ये गतोऽद्राक्षीद् भ्रमन्तं पिङ्गलद्विजम् ॥ ४३ ॥
पुस्तिकाकरसंस्थं च पप्रच्छ नृपो द्विजम् ॥ ४४ ॥

शतबाहुरुवाच

एकाकी त्वं वने कस्माद् भ्रमसे पुस्तिकाकर ।
इतस्ततोऽपि सम्पश्यन्कथयस्व द्विजोत्तम ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण उवाच

कान्यकुब्जात्समायातः प्रेषितो राजकन्यया ।
अस्थिक्षेपाय वै राजन्हनूमन्तेश्वरे जले ॥ ४६ ॥

राजोवाच

अस्थिक्षेपो जले कस्माद्धनूमन्तेश्वरे द्विज ।
क्रियते केन कार्येण साश्चर्यं कथ्यतां मम ॥ ४७ ॥

सुपर्वणः सुतो यानं त्यक्त्वा भूमौ प्रणम्य च ।

कृत्वाञ्जलिपुटोभूत्वाब्राह्मणायनरेश्वर ! । समस्तं कथयामासवृत्तान्तंस्वं पुरातनम्

ब्राह्मण उवाच

शिखण्डीनाम राजाऽस्ति कान्यकुब्जे प्रतापवान् ।

अपुत्रोऽसौ महीपालः कन्या जाता मनोरथैः ॥ ४६ ॥

जातिस्मरा सुचार्वङ्गी नर्मदायाः प्रभावतः ।

पित्रा च सैकदा कन्या विवाहाय प्रजल्पिता ॥ ५० ॥

अनित्ये पुत्रि! संसारे कन्यादानं ददाम्यहम् ।

श्वः कृत्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽपराह्णिकम् ॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं चास्य न चाकृतम् । ॥ ५१ ॥

कन्योवाच

इच्छेयं यत्र काले हि तत्र देया त्वया पितुः ।

पुत्रीवाक्यमाकर्ण्य राजा विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥

शिखण्ड्युवाच

कथ्यतां मे महाभागे! साश्चर्यं भाषितं त्वया ।

पितुर्वाक्येन सा बाला उत्तमा ह्यागतान्तिकम् ॥ ५३ ॥

कथयामास यद्वृत्तं हनूमन्तेश्वरे नृप । कलापिनी ह्यहं तात युता भर्त्रावसं तदा

रेवौर्व्यासंगमान्तिस्या रेवायादक्षिणेतटे । हनूमन्तवनेपुण्येविक्रीडाहं यदृच्छया

भर्तृयुक्ता च संसुनारजन्यां सरलेनगे । आगतालुब्धकास्तत्र क्षुधार्त्तावनमुत्तमम्

भर्तृयोगयुता पापैर्दृष्टाऽहंवधचिन्तकैः । पाशबन्धंसमादाय बद्धाहं स्वमिनासह

ग्रीवां ते मोटयामासुः पिच्छाच्छोटनकं कृतम् ।

हुताशनमुखे तैस्तु सह कान्तेन लुब्धकैः ॥ ५४ ॥

पक्षिभर्त्रावयोर्मांसं भक्षयित्वा यथेप्सितः ।

सुप्ताः स्वस्थेन्द्रिया रात्रौ सा गता शर्वरी क्षयम् ॥ ५५ ॥

प्रभाते मांसशेषञ्च जम्बुकैर्भक्षितं यतः ।
मच्छरीरोद्भवं चास्थि स्नायुमांसेन चावृतम् ॥ ६० ॥
गृहीतं चापि तेनैव आकाशात्पतितं तदा ।
तं मांसभक्षणं दृष्ट्वा परे पक्षिण आगताः ॥ ६१ ॥
दृष्ट्वा पक्षिसमूहं तु अस्थिखण्डं व्यसर्जयत् ।
विहगानां समस्तानां धावतां चैव पश्यताम् ॥ ६२ ॥
पतितं नर्मदातोये हनूमन्तेश्वरे नृप । मदीयमस्थिखण्डं च पतितं नर्मदाजले ॥ ६३
तस्य तीर्थस्य पुण्येन जाताऽहं पुत्रिका तव । भूपकन्या त्वहं जाता पूर्णचन्द्रनिभानना
जातिस्मरा नरेन्द्रस्य मजाताभवत कुले । तस्माद्विवाहं नेच्छामि मम भर्ता नृपोत्तम
विपिने वसतेऽद्यापि शकुन्तमृगजातिषु ।
तस्यास्थिशेष राजेन्द्र तस्मिंस्तीर्थे भविष्यति ॥ ६६ ॥
तत्क्षेपणार्थं वै तात प्रेष्याऽद्य द्विजोत्तमम् । एतत्ते सर्वमाख्यातं कारणं नृपसत्तम
मद्भर्ता विपिने स्थाने शकुन्तमृगजातिषु । यदि प्रेरयसे तात कश्चित्त्वं नर्मदातटे
तस्याहं कथयिष्यामि स्थानैश्चिह्नैरलक्षितम् ।
शिखण्डिनाऽप्यहं तत्र ह्याहूतो ह्ययनीपने ॥ ६१ ॥
द्वास्थाभिर्विंशतिग्रामान्गच्छत्वं नर्मदातटे । प्रेरणमेप्रतिज्ञातमल्पस्यापी डितेनतु
कन्योवाच
गच्छ त्वं नर्मदापुण्यां सर्वपापक्षयङ्करीम् । आग्नेय्यां सोमनाथस्य हनूमन्तेश्वरं परं
अद्धक्रोशेन रेवाया विस्तीर्णो वटपादपः । करञ्ज कटहश्चैव सन्निधाने वटस्य च
न्यग्रोधमूलसान्निध्ये सूक्ष्माण्यस्थीनि द्रक्ष्यसि ।
गृह्य तानि सगृह्य गच्छ रेवां द्विजोत्तम ॥ ७१ ॥
आश्विनस्याऽसिते पक्षे त्रिपुरारेस्तु वै तिथौ ।
स्नाप्य त्रिशूलिनं भक्त्या रात्रौ त्वं कुरु जागरम् ॥ ७४ ॥
क्षिपेः प्रभाते तानि त्वं नाभिमात्रजलस्थितः ।

इत्युच्चार्य द्विजश्रेष्ठ! विमुक्तिस्तस्य जायताम् ॥ ७४ ॥
क्षिप्त्वाऽस्थीनि पुनः स्नानं कर्तव्यं त्वघनाशनम् ।
एवं कृते तु राजेन्द्र! गतिस्तस्य भविष्यति ॥ ७६ ॥
कथितं कन्यया यच्च तत्सर्वं पुस्तिकागतम् ।
आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ! तीर्थेऽत्र दुरितापहे ॥ ७७ ॥
सोऽभिज्ञानंततोदृष्ट्वानीत्वाऽस्थीनिनरेश्वर! पूर्वोक्तेनविधानेनप्राक्षिपंनर्मदाम्भसि
पुष्पवृष्टिःपपाताऽऽशु साधुसाध्विति पाण्डव !।
विमानं च ततो दिव्यमागतं वर्हिणस्तदा ॥ ७९ ॥
दिव्यरूपधरो भूत्वा गतो नाके कलापवान् ।
एवं तु प्रत्ययं दृष्ट्वा हनूमन्तेश्वरे नृप ॥ ८० ॥
चकारानशनं विप्रः शतबाहुश्च भूपतिः । शोषयामासतुस्तौ स्वमीश्वराराधनेरतौ
ध्यायन्तौ तस्थतुर्देवं शतबाहुद्विजोत्तमौ । मासार्धेनमृतोराजा शतबाहुर्महामनाः
किङ्कणीजालशोभाढ्यं विमानं तत्रचागतम् । साधुसाधुनृपश्रेष्ठविमानारोहणंकुरु

शतबाहुरुवाच

नायामि स्वर्गमार्गाग्रं विप्रो यावन्न संस्थितः ।
उपदेशप्रदो मह्यं गुरुरूपी द्विजोत्तमः ॥ ८४ ॥

अप्सरस ऊचुः

लोभावृतो ह्ययं विप्रो लोभात्पापस्य संग्रहः ।
हनूमन्तेश्वरे राजन्! ये मृताः सत्त्वमास्थिताः ॥ ८५ ॥
ते यान्ति शाङ्करेलोके सर्वपापक्षयङ्करे । नैवपापक्षयश्चास्य ब्राह्मणस्य नरेश्वर !॥
गृहं च गृहिणीचित्तेब्राह्मणस्य प्रवर्त्तते । शतबाहुस्ततो विप्रमुवाच विनयान्वितः
त्यजमूलमनर्थस्यलोभमेनंद्विजोत्तम । इत्युक्त्वास्वयंयौराजास्वर्गंकन्यासमावृतः
दिनैः कैश्चिद्गतो विप्रः स्वर्गं वैतालिकैर्वृतः ।
यहीं च काशीराजस्य पुत्रस्तीर्थप्रभावतः ॥ ८९ ॥

आत्मानं कन्यया दत्तं पूर्वजन्म व्यचिन्तयत् ।
सा च तं प्रौढमालोक्य पितुराज्ञामवाप्य च ॥
स्वयम्वरे स्वभर्तारं लेभे साध्वी नृपात्मजम् ॥ ६० ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतद्वृत्तान्तमभवत्तस्मिंस्तीर्थे नृपोत्तम । एतस्मात्कारणाद्भीष्म्यतार्थमैतत्सदाद'' अष्टम्याश्च चतुर्दश्यां सर्वकालं नरेश्वर । विशेषाच्चाश्विने मासि कृष्णपक्षे चतुर्दशी

स्नापयेदीश्वरं भक्त्या क्षीरक्षीरेण सर्पिषा ।
दध्ना च खण्डयुक्तेन कुशतोयेन वै पुनः ॥ ६३ ॥

श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुग्गुलेन महेश्वरम् । ततः सुगन्धपुष्पैश्च बिल्वपत्रैश्च पूजयेत् मुचुकुन्देन कुन्देन जातीकाशकुशोद्भवैः । उन्मत्तमुनिपुष्पैश्च पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः अर्चयेत्परया भक्त्या हनूमन्तेश्वरं शिवम् । पुनः दापयेद्दीपं तैलेन तदभावे श्राद्धं च कारयेत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । सर्वलक्षणसम्पूर्णैः दुर्लभैर्गृहपालकै

तर्पयेद् ब्राह्मणान् भक्त्या वसनान्नहिरण्यतः ।
नरकस्था दिवं यान्तु प्रोक्ष्यैति प्रणमेद् द्विजान् ॥ ६८ ॥

पतितान्वर्जयेत् विप्रान्वृषली यस्य गेहिनी । स्ववृषश्चापि दिव्यश्च वृषैरन्यैर्नृ'पार्थ वृषलीं तां पितुर्देया न शूद्री वृषली भवेत् । ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुदारनिषेवणम् सुवर्णहरणन्यास मित्रद्रोहोद्भवं तथा । नश्यते पातकं सर्वमित्येव शङ्करोऽब्रवीत्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

वाक्प्रलापेन भो वत्स बहुनोक्तेन किं मया । सर्वपातकसंयुक्तो दद्याद्दानं द्विजन्मने

गोदानञ्च प्रकर्तव्यमस्मिंस्तीर्थे विशेषतः ।
गोदानं हि यतः पार्थ सर्वदानाधिकं स्मृतम् ॥ १०३ ॥

मद्देवमया गावः सर्वदेवास्तदात्मकाः । शृङ्गाग्रेषु महीपाल शक्रो वसति नित्यशः उरः स्कन्दः शिरो ब्रह्मा ललाटे वृषभध्वजः । चन्द्रार्कौ लोचनेर्देवौ जिह्वायाञ्च सरस्वती

मरुद्गणाः सदा साध्या यस्या दत्ता नरेश्वर ।

हुङ्कारे चतुरो वेदान्विद्यात्साङ्गपदक्रमान् ॥ १०५ ॥
ऋषयो रोमकूपेषु ह्यसङ्ख्यातास्तपस्विनः ।
दण्डहस्तो महाकायः कृष्णो महिषवाहनः ॥ १०६ ॥
यमः पृष्ठस्थितो नित्यं शुभाशुभपरीक्षकः ।
चत्वारः सागराः पुण्याः क्षीरधाराः स्तनेषु च ॥ १०७ ॥
विष्णुपादोद्भवा गङ्गा दर्शनात्पापनाशिनी ।
प्रस्रावे संस्थिता यस्मात्तस्माद्वन्द्या सदा बुधैः ॥ १०८ ॥
लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला ।
गोमयालेपनं तस्मात्कर्त्तव्यं पाण्डुनन्दन ॥ १०९ ॥
गन्धर्वाप्सरसोनागाः खुराग्रेषु व्यवस्थिताः ।
पृथिव्यां सागरान्तायां यानि तीर्थानि भारत ॥
तानि सर्वाणि जानीयाद्गोर्गव्यं तेन पावनम् ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वदेवमयी धेनुर्गीर्वाणाद्यैरलङ्कृता । एतत्कथयमे तात कस्माद्गोषु समाश्रिताः

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयो विष्णुर्गावो विष्णुशरीरजाः ।
देवास्तद्भयात्तस्मात्कल्पिताविविधा जनैः ॥ ११२ ॥
श्वेता वा कपिला वापि क्षीरिणी पाण्डुनन्दन ।
सवत्सा च सुशीला च सितवस्त्राऽवगुण्ठिता ॥ ११३ ॥
कांस्यदोहनिका देया स्वर्णश्रृङ्गी सुभूषिता ।
हनूमन्तेश्वरस्याऽग्रे भक्त्या विप्राय दापयेत् ॥ ११४ ॥
नियमस्थेनसा देयास्वर्गमानन्त्यमिच्छता । असमर्थाययेदद्युर्विष्णुलोकेप्रयान्तिते
असौलोकेच्युतोराजन्भूतले द्विजमन्दिरे । कुशलोजायतेपुत्रोगुणविद्याधनर्द्धिमान्
सर्वपापहरं तीर्थं हनूमन्तेश्वरंनृप ॥ शृण्वन्विमुच्यते पापाद्वर्णसङ्करसम्भवात् ॥

दूरस्थश्चिन्तयन्पश्यन्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ११८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे हनुमन्तेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
कैलासे पृच्छते भक्त्या षण्मुखाय शिवोदितम् ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

पूर्वं त्रेतायुगे स्कन्द हतो रामेण रावणः । चतुर्दश तदा कोट्यो निहता ब्रह्मरक्षसाम्
हतेषु तेषु वै तत्र रक्षणाय दिवौकसाम् । महानन्दस्तदा जातस्त्रिषु लोकेषु पुत्रक
तत सीतासमासाद्य समयानरपुङ्गवैः । रामोऽप्ययोध्यामायातो भरतेन कृतोत्सवः
तस्मै समर्पयामास स राज्यं लक्ष्मणाग्रजः ॥ ४ ॥
तस्मिन्प्रशासति ततो राज्यं निहतकण्टकम् ।
कृतकार्योऽथ हनुमान्कैलासमगात्पुरा ॥ ५ ॥
ततो नन्दीप्रतीहारो रुद्धाश्रममपि तं कपिम् । नचसङ्गमयामास रुद्रेणाऽघौघहारिणा
तेन पृष्टस्तदा नन्दी किं मया पातकं कृतम् ।
येन रुद्रवपुः पुण्यं न पश्याम्यम्बिकान्वितम् ॥ ७ ॥

नन्द्युवाच

त्वयाऽवतरणं चक्रे [illegible] यद्यपि हि हत पापमुपभोगेनशाम्यति

हनुमानुवाच

किं मयाऽकारि तत्पापं नन्दिन्देवार्थकारिणा।

राक्षसाश्च हता दुष्टा विप्रयज्ञाङ्गघातिनः ॥ ९ ॥

ततस्तदालापकुतूहली हरो निजांशभाजं कपिमुग्रतेजसम्।

उवाच द्वारान्तरदत्तदृष्टिः पुरः स्थितं प्रेक्ष्य कपीश्वरं पुनः ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

गङ्गा गया कपे! रेवा यमुना च सरस्वती। सर्वपापहरानद्यस्तासुस्नानं समाचर
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्। सोमनाथसमीपस्थं तत्र त्वं गच्छ वानर

तत्र स्नात्वा महापापं गमिष्यति ममाऽऽज्ञया।

उत्पत्य वेगाद्धनुमाञ्छ्रीरेवादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥

जगाम सुमहानादस्तपश्चक्रे सुदुष्करम्। तस्य वै तप्यमानस्य रक्षोवधकृतं तमः
विलीनं पार्थ कालेन कियतेशप्रसादतः। ततो देवैः समं देवस्तत्तीर्थमगमद्धरः ॥
कपिमालिङ्गयामास वरं तस्मैप्रदत्तवान्। अद्यप्रभृति ते तीर्थंभविष्यति न संशयः
कपितीर्थं ततो जातं तस्थौ तत्र स्वयं हरः। हनूमन्तेश्वरोनाम्नासर्वहत्याहरस्तदा

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या लिङ्गं प्रपूजयेत्।

सर्वपापानि नश्यन्ति हरस्य वचनं यथा ॥ १८ ॥

तत्राऽस्थीनि विलीयन्ते पिण्डदानेऽक्षया गतिः।

यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तद्धि कोटिगुणं भवेत् ॥ १९ ॥

हनुमानप्ययोध्यायां रामंद्रष्टुमथाऽगमत्। चकार कुशलप्रश्नंस्वस्वरूपंन्यवेदयत्

श्रीराम उवाच

कुर्वतोदेवकार्यं तेममकार्यंच कुर्वतः। ततोऽहमपिपापीयांस्तपस्तप्स्याम्यसंशयम्
तत्रैव दक्षिणे कूले रेवायाः पापहारिणि। चतुर्विंशतिवर्षाणि तपस्तेपेऽथराघवः

ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थः श्रीरेवास्नानमाचरन्।

स्थापयामासतुर्लिङ्गं तौ तदा रामलक्ष्मणौ । प्रभावात्सत्यतपसो रेवातीरे महामती

निष्पापतां तदा वीरौ जग्मतू रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

ततस्तदा देवपुरोगमो हरो गतो हि वै पुण्यमुनीश्वरैः सह ।

आगत्य तीर्थं च वरं ददौ तदा निजां कलां तत्र विमुच्य तीर्थे ॥ २५ ॥

मुनिभिः सर्वतीर्थानां क्षिप्तं कुम्भोदकं भुवि ।

एकरूपं लिङ्गनामाथ कलाकुम्भस्तथाऽभवत् ॥ २६ ॥

कुम्भेश्वर इति ख्यातस्तदा देवगणार्चितः ।

रामोऽपि पूजयामास तल्लिङ्गं देवसेवितम् ॥ २७ ॥

ततो वरं ददौ देवो रामकीर्त्यभिवृद्धये । चतुर्विंशतिमे वर्षे रामो निष्पापतां गतः

यदा कन्यागतः पङ्गुर्गुरुणा सहितो भवेत् । तदेयं देवयात्रेयमिति देवा जगुर्मुदा ॥

यथा गोदावरीतीर्थे सर्वतीर्थफलं भवेत् । तथात्र रेवास्नानेन लिङ्गानां दर्शनेन वा ॥

करिष्यन्त्यत्र ये श्राद्धं पितॄणां नर्मदातटे । कुम्भेश्वरसमीपस्थास्तत्फलं शृणु षण्मुख

यावन्तो रोमकूपाः स्युः शरीरे सर्वदेहिनाम् । तावद्वर्षप्रमाणेन पितॄणामक्षया गतिः

पृथिव्यां देवताः सर्वाः सर्वतीर्थानि यानि तु ।

लभन्ते तत्फलं सर्वे लिङ्गत्रयविलोकनात् ॥ ३३ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो धनमाप्नुयात् । सरोगो मुच्यते रोगात्सौऽश्वकायाधिवारणा

सिंहराशिगते जीवे यत्स्याद्गोदावरीफलम् ।

तद्द्वादशगुणं स्कन्द कुम्भेश्वरसमीपतः ॥ ३४ ॥

ये जानन्ति न पश्यन्ति कुम्भशम्भुमुमापतिम् ।

नर्मदादक्षिणे कूले तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ ३५ ॥

यथा गोदावरीयात्राकृतं श्रामुनिशासनात् । चतुर्विंशतिमे वर्षे तथैवेयं प्रमाणितम्

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावद्वै दिवि तारकाः । तावत्तदक्षयं दानं रेवाकुम्भेश्वरान्तिके

महादानानि देयानि तत्र लोकैर्विचक्षणैः । गोदानं प्रशंसन्ति मोक्षणं राजन्तथा

गवां स्पर्शनमात्रेण श्रूयते पापसञ्चयः ।

स्नानेन किं पुनः स्कन्द ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ४० ॥

तत्र तीर्थेतुयःस्नात्वाश्राद्धं कुर्याद्युधिष्ठिर । एकोत्तरंकुलशतमुद्धरेच्छिवशासनात्

यानि कानि च तीर्थानि चासमुद्रसरांसि च ।

शिवलिङ्गार्चनस्येह कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४२ ॥

एवं देवा वरं दत्त्वाहरीश्वरपुरोगमाः । स्वस्थानमगमन्पूर्वमुक्त्वातन्नामचोत्तमम्

तीर्थस्याऽस्य वरं दत्वा स रामो लक्ष्मणाग्रजः ।

अयोध्यां प्रविवेशाऽसौ निष्पापो नर्मदाजलात् ॥ ४४ ॥

सौवर्णीं च ततः कृत्वा सीतां यज्ञं चकार सः ।

अनुमन्त्र्य मुनींल्लोकान्देवतांश्च निजं कुलम् ॥ ४५ ॥

पुरा त्रेतायुगे जातं तत्तीर्थं स्कन्दनामकम् ।

नियमेन ततो लोकैः कर्त्तव्यं लिङ्गदर्शनम् ॥ ४६ ॥

तावत्पापानि देहेषु महापातकजान्यपि । यावन्नप्रेक्षते जन्तुस्तत्तीर्थं देवसेवितम्

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।

ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थं ये द्रक्ष्यंति हरं परम् ॥ ४८ ॥

तस्मान्मोहं परित्यज्य जनैर्गन्तव्यमादरात् ।

तीर्थाऽशेषफलावाप्त्यै तीर्थं कुम्भेश्वराह्वयम् ॥ ४९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेति शम्भुवचसा स षडाननोऽथ नत्वा पितुःपदयुगाम्बुजमादरेण ।

सम्प्राप्य दक्षिणतटं गिरिशात्रवन्त्याःकीशाग्रयरामकलशाख्यशिवान् ददर्श

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम

चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नर्मदाया पुरातनम् । ब्रह्महत्याहरतीर्थं वाराणस्यासमं हितम्

युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यं कथ्यता ब्रह्मन्यदद्भुतमनुमहालवे । वाराणस्या समं कस्मादेतत्कथय मे प्रभो

निमग्नो दु खसंसारे हृतराज्यो द्विजोत्तम ।

युष्मद्वाणीजलस्नातो निर्दुःख सह भ्रातृभि ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाबाहो सोमवंशविभूषण । शृणोऽस्मिन्तुलं तीर्थं गुह्याद्गुह्यतरं परम्

आदौ पितामहस्तावत्समस्तजगत प्रभु ।

मनसा तस्य सञ्जाता दशैव ऋषिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च

अत्रे प्राचेतस दक्ष महातेजा प्रजापति ।

दक्षस्यापि तथा जाता पञ्चाशद्दुहितर स्त्रिय ॥ ७ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । तथैव स महाभाग सप्तविंशतिमिन्दवे

रोहिणी नाम या तासामभीष्टा साऽभवद्विधो ।

दोषात्तु करुणा कृत्वा शप्तो दक्षेण चन्द्रमा ॥ ६ ॥

क्षयरोग्यभवच्चन्द्रो दक्षस्याथ प्रजापते । सच शापप्रभावेण निस्तेजाः शर्वरीपति

गत पितामह सोमो वेपमानोऽमृतांशुमान् ।

पद्मयोने नमस्तुभ्य वेदगर्भ नमोऽस्तु ते ॥

ब्रह्मोवाच

निस्तेजाः शर्वरीनाथ कलाहीनश्च दृश्यसे । उद्विग्नमानसस्तात सञ्जातश्केनहेतुना

सोम उवाच

दक्षशापेन मे ब्रह्मन्निस्तेजस्त्वंजगत्पते । निर्हारश्चाऽस्यशापस्यकथ्यतांमेपितामह

ब्रह्मोवाच

सर्वत्र सुलभा रेवा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । ओङ्कारेऽथभृगुक्षेत्रेतथाचैवौर्विसङ्गमे

तत्र गच्छ क्षपानाथयत्र रेवान्तरं तटम् । त्वरितोऽसौ गतस्तत्रयत्ररेवौर्वसङ्गमः

काष्ठावस्थः स्थितः सोमो दध्यौ त्रिपुरवैरिणम् ।
यावद्वर्षशतं पूर्णं तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १६ ॥
प्रत्यक्षः सोमराजस्य वृषासन उमापतिः ।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्योच्चैर्जय शंम्भो! नमोऽस्तुते ॥ १७ ॥
जय शङ्कर! पापहराय! नमोजय ईश्वर ते जगदीश! नमः ।
जय वासुकिभूषणधार! नमो जय शूलकपालधराय नमः ॥ १८ ॥
जय अन्धकदेहविनाश! नमो जय दानववृन्दवधाय नमः ।
जय निष्कलरूप! सकलाय नमो जय काल कामदहाय नमः ॥ १६ ॥
जय मेचककण्ठधराय नमो जय सूक्ष्मनिरञ्जनशब्द! नमः ।
जय आदिरनादिरनन्त! नमो जय शङ्कर! किङ्करमीश भज ॥ २० ॥

एवं स्तुतोमहादेवःसोमराजेनपाण्डव । तुष्टस्तस्य नृपश्रेष्ठ! शिवयाशङ्करोऽब्रवीत्

ईश्वर उवाच

वरं प्रार्थय मे भद्र! यत्ते मनसि वर्त्तते । साधुसाधुमहासत्त्व तुष्टोऽहं तपसा तव

सोम उवाच

दक्षशापेन दग्धोऽहं क्षीणसत्वो महेश्वर । शापस्योपशमं देव कुरु शर्म मम प्रभो !॥

ईश्वर उवाच

तव भक्तिगृहीतोऽहमुमया सह तोषितः ।

[illegible]

युधिष्ठिर उवाच

[illegible]

[illegible] उवाच

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

स्त्र्युवाच

सन्देशं श्रूयतां विप्र! यदि गच्छसि सङ्गमे ।
मद्भर्त्ता तिष्ठते तत्र शीघ्रमेव विसर्जय ॥ ४१ ॥

एकाकिनी च ते भार्या तिष्ठते वनमध्यगा । इत्याकर्ण्यगतोविप्र सङ्गमे सुरदुर्लभे

वृक्षच्छायान्वितः कण्वो ब्राह्मणेनाऽवलोकितः ।
उवाच तं प्रति तदा वचनं ब्राह्मणोत्तमः ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच

वनान्तरे मया दृष्टा बाला कमललोचना । रक्ताम्बरधरा तन्वी रक्तचन्दनचर्चिता

रक्तमालया सुशोभाढ्या पाशहस्तामृगेक्षणा ।
वृक्षारूढाऽवदद्वाक्यं मद्भर्त्तप्रेष्यतामिति ॥ ४५ ॥

कण्व उवाच

कस्मिन्स्थानेतु विप्रेन्द्रविद्यते मृगलोचना । कस्यसाकेनकार्येणत्वंमेनद्वदाशु मे

ब्राह्मण उवाच

सङ्गमादर्द्धकोशे सा उद्यानान्तेहिविद्यते । वचनाद्ब्राह्मणस्यैतानज्ञानापार्थिवेनतु

तदा स कण्वभूपालः स्वकं दूतं समादिशत् ।

कण्व उवाच

गच्छ त्वं पृच्छतां तां काऽऽगता क्व गमिष्यसि ।
प्रेषितस्त्वरितो दूतो गतो नारीसमीपतः ॥ ४८ ॥
वृक्षस्थां ददृशे बालामुवाच नृपसत्तम !।
मन्नाथः पृच्छति त्वां तु काऽसि त्वं क्व गमिष्यसि ॥ ४९ ॥

कन्योवाच

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५० ॥

ब्रह्महत्याचसञ्जाता मृगरूपधरद्विजात् । मयायुक्तोऽपितेराजामुक्तस्तीर्थप्रभावतः

अर्द्धक्रोशान्तरान्मध्ये ब्रह्महत्या न संविशेत् ।
सोमनाथप्रभावोऽयं वाराणस्या समः स्मृतः ॥ ५२ ॥

गच्छन्त्य प्रव्यता राजाशाश्रमत्र न मगध । ततोभूत्यस्ततर्शाश्रवेपमान सुविह्व
समन्नकथयामासयद्वृत्तहि पुरातनम् । तस्यवाक्यादसौराजापतितोधरणीतले

सूत्य उवाच

कस्मात्त्व शोचसे नाथ पूर्वोपात्त शुभाशुभम् ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ ५५ ॥
प्राणत्याग करिष्यामि सोमनाथसमीपतः ।
शीघ्रमानीयतां वह्निरिन्धनानि बहूनि च ॥ ५६ ॥

आनीत तत्क्षणात्सर्वं भृत्यैस्तद्वचनात्तिमि । स्नानकृत्वाशुभेतोयेसङ्गमेपापनाशने

अर्चित परया भक्त्या सोमनाथो महाप्रभुः ।
त्रि प्रदक्षिणतः कृत्वा ज्वलन्त जातवेदसम् ॥ ५८ ॥
प्रविष्ट पण्यराजाऽसौ हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ।
पीताम्बरधर देव जटामुकुटधारिणम् ॥ ५९ ॥

श्रियायुक्त सुपर्णस्थ शङ्खचक्रगदाधरम् । मुरारिसूदन दृष्ट्वा सुरपतिर्भयत्यिति

पपात पुष्पवृष्टिस्तु साधुसाधु नृपात्मज ।
आश्चर्यमतुल दृष्ट्वा निरीक्ष्य च परस्परम् ॥ ६१ ॥
मृत तं पावके मत्वा हृदि ध्यात्वा गदाधरम् ।
विमानस्थास्तत सर्वे सञ्जाता पाण्डुनन्दन ॥ ६३ ॥

निष्पापास्त्रिदिवयाता सोमनाथप्रभावतः । व्राह्मणेनसहमेनचध्यायमानेन्नपाचजम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सोमनाथप्रभावोऽयमगण्यैःकथनाविधिम् । अष्टम्या वा चतुर्दश्यामथवा नरनेर्दिने
विदारान्तुत्तपक्षेन्मुव्यारणमन्यां । उपोष्य वानरोभक्तपरात्रौकुर्यीत जागरम्
पञ्चामृतेन गव्येन स्नापयेत्परमेश्वरम् । श्रीखण्डेन ततो गुग्गुलपुष्पधूपादिक ददत्

नबोधयेद्दीपंनृत्यंगीतंच कारयेत् ।सोमवारे तथाऽष्टम्यांप्रभातेपूजयेद्द्विजान्

जितक्रोधानात्मवतः परनिन्दाविवर्जितान् ।

सर्वांश्चिराञ्छस्तान् स्वदारपरिपालकान् ॥ ६८ ॥

ायत्रीपाठमात्रांश्च विकर्मविरतान्सदा । पुनर्भू वृषली शूद्री चरेयुर्यस्य मन्दिरे ॥

दूरतोऽसौ द्विजस्त्याज्य आत्मनः श्रेय इच्छता ।

हीनाङ्गाऽनतिरिक्तांगान्येषां पूर्वापरं न हि ॥ ७० ॥

यज्ञे श्राद्धे तथा दाने दूरतस्तान्विवर्जयेत् ।

आयसीतरुणीतुल्या द्विजाः स्वाध्यायवर्जिताः ॥ ७१ ॥

आत्मानं सह याज्येन पातयन्ति न संशयः ।

शाल्मलीनावतुल्याः स्युः षट्कर्मनिरता द्विजाः ॥ ७२ ॥

तारंचतथाऽऽत्मानंतारयन्तितरन्ति च । श्राद्धंसोमेश्वरेपार्थ!यःकुर्याद्गतमत्सरः

प्रेतास्तस्य हि सुप्रीता यावदाभूतसम्प्लवम् ।

अन्नं वस्त्रं हिरण्यं च यो दद्यादग्रजन्मने ॥ ७४ ॥

स यातिशाङ्करेलोक इतिमेसत्यभाषितम् । हयंयोयच्छते तत्र सम्पूर्णंतरुणंसितम्

रक्तं वा पीतवर्णं वा सर्वलक्षणसंयुतम् । कुङ्कुमेन विलिप्ताङ्गावग्रजन्महयावपि ॥

स्रग्दामभूषितौ कार्यौ सितवस्त्रावगुण्ठितौ ।

अद्भिः प्रदीयतां स्कन्धे मदीये हयमारुह ॥ ७७ ॥

आरूढे ब्राह्मणेब्रूयाद्भास्करःप्रीयतामिति । स यातिशाङ्करंलोकंसर्व्वपापविवर्जितः

उपरागे तु सोमस्य तीर्थं गत्वा जितेन्द्रियः ।

सत्यलोकाच्च्युतश्चाऽपि राजा भवति धार्मिकः ॥ ७९ ॥

तस्यवासःसदाराजन्न नश्यति कदाचन । दीर्घायुर्जायते पुत्रो भार्या च वशवर्तिनी

जीवेद्वर्षशतंसाग्रं सर्वदुःखविवर्जितः । सोपवासोजितक्रोधो धेनुं दद्याद्द्विजन्मने

सवत्सां क्षीरसंयुक्तां श्वेतवस्त्रावलोकिताम् ।

शवलां पीतवर्णाञ्च धूम्रां वा नीलकर्बुराम् ॥ ८२ ॥

कपिला या सवत्सा च घण्टाभरणभूषिताम् ।
रूप्यखुरा कांस्यदोहा स्वर्णशृङ्गी नरेश्वर ॥ ८३ ॥

श्वेतयाचद्धनेत्रशोरक्तासौभाग्यवर्द्धिनी । शबलापीतवर्णाश्च दुःखघ्नीमस्वकीर्तिते
कपिलानाशयेत्पापं सप्तजन्मसमुद्भवम् । सत्यलोकमवाप्नोति गोप्रदाता नरेश्वर ॥
पक्षान्तेऽथव्यतीपाते वैधृतौ रविसङ्क्रमे । दिनक्षये गजच्छाया ग्रहणे भास्करस्य च
ये मज्जन्ति महात्मानः सद्गमे सुरदुर्लभे । सदाशुगुण्डविरमानुष्ठात्मासमङ्गमेघिशोन
हृद्यान्तजलेऽप्याप्यमाणायामोऽथवा नृप । गायत्रीवैष्णवीं चधर्मीरौशैवां यदृच्छया

तेऽपि पापैः प्रमुच्यन्त इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥ ८८ ॥
जगतीं सोमनाथस्य यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन ससद्वीपा वसुन्धरा ॥ ८९ ॥

ब्रह्महत्या सुरापानगुरुदारनिषेवणम् । भ्रूणहा स्वर्णहर्ता च मुच्यन्तेनाऽत्र संशय

तीर्थाख्यानमिदं पुण्यं यः शृणोति जितेन्द्रियः ।
व्याधितो मुच्यते रोगी चारोगी सुखमाप्नुयात् ॥ ९१ ॥
यत्ते सन्दर्शितं येन शृणु तन्मे युधिष्ठिर ।
नैकाऽपि नृप लोकेऽस्मिन्ब्रह्महत्या सुदुस्त्यजा ॥ ९२ ॥
किन्तु षड्विंशति पार्थ प्राप या क्षणदाकर ।
सोऽपि तीर्थमिदं प्राप्य तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ॥ ९३ ॥

विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शीतरश्मिरभूत्सुखी । श्रूयते नृपपौराणीगतयागीनामहर्षिभि
र्लिङ्गं प्रतिष्ठितं लोके दर्शनात्पापहं भवेत् । यतो लिङ्गमयं सोम स्थापयामास भारत
ऐन्द्रोरिमङ्गमे ह्यत्र द्वितीयभृगुकच्छके । ततः सिद्धिं परां प्राप्य प्रभासे तु नृतायकम्

इति ते कथितं सर्वं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं सशुद्धिकृन्नृणाम् ॥ [illegible] ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्निष्कामः स्वर्गमाप्नुयात् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तीर्थं कृत्वा परं नृप ॥ ९८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं सोमनाथस्य यत्फलम्।
श्रुत्वा पुण्यमवाप्नोति स्नात्वा पापाद्विमुच्यते नसंशयः ॥ ६६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज पिङ्गलावर्त्तमुत्तमम्। सङ्गमस्य समीपस्थं रेवाया उत्तरेतटे
हव्यवाहेन राजेन्द्र! स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हव्यवाहेन भगवन्नीश्वरःस्थापितःकथम्। एतदाख्याहि मेसर्वंप्रसादाद्वक्तुमर्हसि

मार्कण्डेय उवाच

शम्भुना नृपसाराजंस्तर्पितोहव्यवाहनः। प्राप्तसौम्येनरौद्रेणगौर्याक्रीडनचेतसा
हव्यवाहमुखे क्षिप्तं रुद्रेणामिततेजसा। रुद्रस्य रेतसा दग्धस्तीर्थयात्राकृतादरः ॥
सागरांश्च नदीर्गत्वाक्रमाद्रेवां समागतः। चचारपरयाभक्त्याध्यानमुग्रं हुताशनः
वायुभक्षः शतं साग्रं यावत्तेपे हुताशनः। तावत्तुष्टो महादेवो वरदो जातवेदसः ॥
सन्निधौ समुपेत्याथ वचनं चेदमब्रवीत्॥ ६॥

ईश्वर उवाच

वरं वृणीष्व हव्याश! यत्ते मनसि वर्तते ॥ ७ ॥

वह्निरुवाच

नमस्ते सर्वलोकेश! उग्रमूर्ते नमोऽस्तु ते। रेतसा तव सन्दग्धःकुष्ठीजातो महेश्वर

कृपां कुरु महादेव मम रोगं विनाशय ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच

हव्यवाह भवारोगो मत्प्रसादाच्च सत्वरम् ।
अवतीर्थे कृतस्नान स्वरूपं प्रतिपत्स्यसे ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा च महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत । अनन्तरं हव्यवाहः सस्नौ रेवाजले त्वरन् तदैव रोगनिर्मुक्तोऽभवद्दिव्यस्वरूपवान् । स्थापयामास देवेशमग्निः पिङ्गेश्वरम् नाम्नाप्यपूजयामास तुष्टाव स्तुतिभिर्मुदा । ततो नगामदेशस्य देवानां हव्यवाहन हव्यवाहेन भूपैव स्थापितं पिङ्गेश्वरम् । जितक्रोधो जितेन्द्रियस्तत्रोपवाससमाचरेत्

अतिरात्रफलं तस्य भवेत् रुद्रत्वमाप्नुयात् ।
गुणान्विताय विप्राय कपिलां तत्र भारत ॥ १४ ॥
अलङ्कृत्य प्रयत्नेन च शक्त्याऽलङ्कारभूषिताम् ।
यः प्रयच्छति राजेन्द्र स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे पिङ्गेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

ऋणत्रयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम् । स्थापितं मुनिमुख्येन भृगुवंशसमुद्भवे ऋणमोचनमित्याख्यं रेवातटसमाश्रितम् । षण्मासमनुलोमकन्यानपयन्तिनृदेवता

देवैः पितृमनुष्यैश्च ऋणमात्मकृतं च यत् ।
मुच्यते तत्क्षणान्मर्त्यः स्नातो वै नर्मदाजले ॥ ३ ॥

सत्यक्तं दुरितं तत्र दृश्यते फलरूपतः । तत्र तीर्थे तु यो राजन्नेकभक्तो जितेन्द्रियः

स्नात्वा दानं च वै दद्यात्संपूज्य द्विजदंपतिम् ।

ऋणत्रयविनिर्मुक्तो नाके क्रीडति देववत् ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे

रेवाखण्डेऋणत्रयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

१ तस्यैवानन्तरं पार्थ कापिलं तीर्थमाश्रयेत् । स्थापितं कपिलेनैव सर्वपापप्रणाशनम्

अष्टम्यां च सिते पक्षे चतुर्दश्यां नरेश्वर ।

स्नापयेत्परया भक्त्या कपिलाक्षीरसर्पिषा ॥ २ ॥

श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्ठयेत्तु महेश्वरम् । ततः सुगन्धपुष्पैश्च धूपैश्च नृपसत्तम ॥ ३॥

येऽर्चयन्ति जितक्रोधा न ते यान्ति यमालयम् ।

असिपत्रवनं घोरं यमचुल्ली सुदारुणा ॥ ४ ॥

दृश्यते नैव विद्वद्भिः कपिलेश्वरपूजनात् ।

स्नात्वा रेवाजले पुण्ये भोजयेद् ब्राह्मणाञ्छुभान् ॥ ५ ॥

गोप्रदानेन वस्त्रेण तिलदानेन भारत । छत्रशय्याप्रदानेन राजा भवति धार्मिकः

तीव्रतेजाश्चिरायुश्च जीवत्पुत्रः प्रियंवदः । शत्रुवर्गो न तस्य स्यात्कदाचित्पाण्डुनन्दन

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोनवतितमोऽध्यायः

पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र पूतिकेश्वरमुत्तमम् । नर्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयङ्कर

स्थापितं जाम्बवन्तेन लोकानां तु हितार्थिना ।

राजा प्रसेनजिन्नाम तस्या वक्षस्थले मणी ॥ २ ॥

समुत्क्षिप्ते तु तेनैव सपूतिरभवद्व्रण । तत्र तीर्थे तपस्तप्त्वा निर्व्रणः समजाय

तेन तत्स्थापितं लिङ्गं पूतिकेश्वरमुत्तमम् । यस्तत्र मनुजो भक्त्या स्नायाद्गतमत्स

सर्वान्कामानवाप्नोति सम्पूज्य परमेश्वरम् ।

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां सर्वकालं नराधिप ।

येऽर्चयन्ति सदा देवं ते न यान्ति यमालयम् ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नवतितमोऽध्यायः

जलशायितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कूले वैष्णवं तीर्थमुत्तमम् । जलशायीति वै नाम विख्यातं वसुधातले

दानवानां वधं कृत्वा सुप्तस्तत्र जनार्दनः । चक्रं प्रक्षालितं तत्र देवदेवेन चक्रिणा

सुदर्शनं च निष्पापं रेवाजलसमाश्रयात् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

चक्रतीर्थं समाचक्ष्व मुनिसङ्घैश्च वन्दितम् ।
विष्णोः प्रभावमतुलं रेवायाश्चैव यत्फलम् ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ! विरक्तस्त्वं युधिष्ठिर !।
गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं निर्मितं चक्रिणा स्वयम् ॥ ४ ॥
तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
आसीत्पुरा महादैत्यस्तालमेघ इति श्रुतः ॥ ५ ॥
तेनदेवा जिताःसर्वेहृतराज्यानराधिप । यज्ञभागान्स्वयंभुङ्क्तेअहंविष्णुर्नसंशयः
धनदस्य हृतं वित्तं हृतः शक्रस्य वारणः । इन्द्राणीं वाञ्छतेपापो ह्यश्वरत्नंरवेरपि
तालमेवभयात्पार्थरविरुद्राःसवासवाः । यमःस्कन्दोजलेशोऽग्निर्वायुर्देवोधनेश्वरः
सवाक्पतिमहेशाश्चनष्टचित्ताःपितामहम् । गतादेवाब्रह्मलोकं तत्र दृष्ट्वापितामहम्
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्वागीशप्रमुखाः सुराः । गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे
दृष्ट्वा देवान्निरुत्साहान्विवर्णानवनीपते । प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवौकसः

ब्रह्मोवाच

स्वागतं सुरसङ्घस्यकान्तिर्नष्टापुरातनी । हिमक्लिष्टप्रभावेणज्योतींषीवमुखानिवः
प्रशमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णं सुरायुधम् ।
वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठितश्रीव लक्ष्यते ॥ १३ ॥
किं चायमरिदुर्वारः पाणौ पाशः प्रचेतसः ।
मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥ १४ ॥
कुबेरस्य मनः शल्यं शंसतीव पराभवम् । अपविद्धगतो वायुर्भग्नशाख इवद्रुमः ॥
यमोऽपि विलिखन्भूमिं दण्डेनास्तमितत्विषा ।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघोऽपि निर्वाणालातलाघवम् ॥ १६ ॥
अमी च कथमादित्याः प्रतापक्षतिशीतलाः ।

पितरन्यस्ता इव गता प्रकामालोकनीयताम् ॥ १७ ॥
तद्दृष्ट्वा पस्ता किमिति प्रार्थयध्वं समागता ।
विमागमनकृत्यं यो ब्रूत निःसशयं सुरा ॥ १८ ॥
मयि रुद्धिहिलोकानां रक्षा युष्माभ्यवस्थिता ।
ततो मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिता ॥ १९ ॥
गुरु नेत्रसहस्रेण प्रेक्ष्यामास वृत्रहा । स द्विनेत्र इवाभ्यु सहस्रनयनाधिकम् ॥
वाचस्पतिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्जलजाननम् ।
युष्मच्छोकप्रशमनात् तारमेयो महाबल ॥ २१ ॥
उपतापयते देवान्भूमिकेतुरिवोच्छ्रित । तेनदेवगणाः सर्वे दुःखिता दानवेन च ॥२२
तारमेयो दैत्यपतिः सर्वाश्रो बाधते यतः ।
तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता शरणं नो विधे भव ॥ २३ ॥
तत प्रसन्नो भगवानेवाम्नानन्दर्विष्ट्वा ॥ २४ ॥
ब्रह्मोवाच
तारमेयेन या मध्ये यन्नी तेन सम सुरा । विनामाधवदेवेनतत्रावध्योमे नैवदानव
तत सुरगणा सर्वे विरञ्चिप्रमुखा नृप । क्षीरोदप्रस्थिता सर्वे दु खितास्तस्य वैरिणा
त्वरिता प्रस्थिता दृष्टा वेशन द्रष्टुकाम्यया ।
क्षीरोदं सागरं गत्वाऽस्तुवस्ते जलशायिनम् ॥ २७ ॥
देवा ऊचु
जगदादिरनादिस्त्वं जगन्तोऽप्यनन्तक ।
जगन्मूर्तिरमूर्तिस्त्वं जय गीर्वाणपूजित ॥ २८ ॥
जय क्षीरोदशयन जय लक्ष्म्या सदावृत । जय दानवनाशाय जय देवकिनन्दन
जय शङ्खगदापाण जय चक्रधरप्रभो । इति दवस्तुतिं श्रुत्वा प्रबुद्धोजलशाय्यथ
उवाच मधुरावाणीं मेघगम्भीरनिस्वनाम् ।
किमर्थं बोधितो ब्रह्मन्ससर्वैर्यै सुरासुरै ॥ ३१ ॥

ब्रह्मोवाच

तालमेघभयात्कृष्ण! सम्प्राप्ता तव मन्दिरम् ।

न वध्यः कस्यचित्पापतालमेघो जनार्दन !॥ ३२ ॥

त्वमेव जहि तं दुष्टं मृत्युं यास्यति नान्यथा ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वस्थानं गम्यतां देवाः स्वकीयां लभत प्रजाम् ।

दुष्टात्मानं हनिष्यामि तालमेघं महाबलम् ॥ ३४ ॥

स्थानं ब्रुवन्तु मे देवा! वसेद्यत्र स दानवः ॥ ३५ ॥

देवा ऊचुः

हिमाचलगुहायां सवसते दानवेश्वरः । चतुर्विंशतिसाहस्रैः कन्याभिःपरिवारितः

तुरङ्गैः स्यन्दनैः कृष्ण! सङ्ख्या तस्य न विद्यते ।

नटा नानाविधास्तत्र असङ्ख्यातगुणा हरे !॥ ३७ ॥

द्विरदाः पर्वताकारा हयाश्च द्विरदोपमाः । महाबलो वसेत्तत्र गीर्वाणभयदायकः

श्रुत्वादेवोवचस्तेषांदेवानामातुरात्मनाम् । अचिन्तयद्गरुत्मन्तंशत्रुसङ्घविनाशनम्

चक्रं करेण संगृह्य गदाचक्रधरः प्रभुः । शार्ङ्गं च मुशलं सीरं करैर्गृह्य जनार्दनः ॥

आरूढः पक्षिराजेन्द्रं वधार्थं दानवस्य च । दानवस्य पुरेपेतुरुत्पाता घोररूपिणः

गोमायुर्गृध्रमध्ये तु कपोतैः सममाविशत् । विनापातेनतस्यैव ध्वजदण्डःपपातह

सर्पमूषकयोर्युद्धं तथा केसरिनागयोः । उन्मार्गाःसरितस्तत्रावहन्रक्तविमिश्रिताः

अकालतरुपुष्पाणि दृश्यन्ते स्म समन्ततः ॥ ४३ ॥

ततः प्राप्तोजगन्नाथो हिमवन्तंनगेश्वरम् । पाञ्चजन्यश्च सहसा पूरितः पुरसन्निधौ

तेन शब्देन महता ह्यारूढो दानवेश्वरः ।

उवाच च तदा वाक्यं तालमेघो महाबलः ॥ ४५ ॥

तालमेघ उवाच

कोऽयं मृत्युवशं प्राप्तो ह्यज्ञात्वा मम विक्रमम्

धुन्धुमाराज्ञया ह्याशु स्वसैन्यपरिवारित ॥ ४८ ॥
बलादानय त बद्ध्वा ममाग्रे बाहुशालिनम् ॥ ४७ ॥

धुन्धुमार उवाच

आनयामि न सन्देह सुरौयक्षोऽथकिन्नर । स्यन्दनोवै समायुक्तोगजवाजिभटै सह
कृष्णस्ततो जगयोनि सुपर्णस्थो महाबल । श्रूयतागृह्यतामेवइत्युक्तास्तेनकिङ्करा
चतुर्दिक्षु प्रधावन्त इतश्चेतश्च सर्वत । सुपर्णेनाऽग्निरूपेण दग्धास्ते शलभा यथा
धुन्धुमारोऽपिकृष्णेनशरघातेन ताडित । हतोवक्षस्थले पापोभूतायस्योरथोपरि
हाहाकार तत सर्वे दानवाश्चक्रुरातुरा । तालमेघस्तत क्रुद्धोरथारूढो विनिर्गत
ददृशे केशव पार्थ शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ५२ ॥

तालमेघ उवाच

धन्यो ते दानवा कृष्ण ये हता समरे त्वया ।
हिरण्यकशिपुमुख्या न पुमासो हि तेऽच्युत ॥ ५३ ॥
इत्युक्त्वा दानव पार्थ ववर्षमास सायकै ।
दानवस्य शरान्मुक्तांश्छेदयामास केशव ॥ ६४ ॥
गरुत्मानवधीत्सैन्यमवध्य यत्सुरासुरै ।
कृष्णेन द्विगुणास्तस्य प्रेषिता स्वशिलीमुखा ॥ ५ ॥
द्विगुण द्विगुणीकृत्य प्रेषयामास दानव ।
तानप्यष्टगुणै कृष्णश्छादयामास सायकै ॥ ५६ ॥
तत क्रुद्धेन दैत्येन ह्याग्नेय बाणमुत्तमम् ॥ ५७ ॥
वारुण प्रेषयामास त्वाग्नेय शमित तत । वारुणेनैववायव्य तालमेघो व्यसर्जयत्
सार्पं चैवहृषीकेशोवायव्यस्यप्रशान्तये । नारसिंह नृसिंहोऽपिप्रेषयामासपाण्डव
नारसिंह ततो दृष्ट्वातालमेघोमहाबल । उत्तीर्य स्यन्दनाच्छीघ्रंगृहीत्वाखड्गचर्मणी
कृष्ण त्वा प्रेषयिष्यामि यममार्गं सुदारुणम् ।
इत्युक्त्वा दानव पार्थ आगत केशवं प्रति ॥ ६१ ॥

खड्गेनाताडयद्दैत्यो गदापाणिजनार्द्दनम् । मण्डलाग्रं ततो गृह्य केशवोहृष्टमानसः
जघनोरःस्थले पार्थ तालमेघं महाहवे । जनार्द्दनस्तदा दैत्यंदैत्यो हरिमहन्मृधे ॥
जनार्द्दनस्ततः क्रुद्धस्तालमेघाय भारत !। अमोघं चक्रमादाय मुक्तं तस्यच मूर्द्धनि
निपपातशिरस्तस्यपर्वताश्चचकम्पिरे । समुद्राःक्षुभिताःपार्थनद्यउन्मार्गगामिनीः
पुष्पवृष्टिं ततो देवा मुमुचुः केशवोपरि । अवध्यः सुरसङ्घानां सूदितः केशवत्वया
स्वस्थाश्चैव ततो देवास्तालमेघे निपातिते ।
जनार्द्दनोऽपि कौन्तेय! नर्मदातटमाश्रितः ॥ ६७ ॥
क्षीरोदां नर्मदांमत्वाअनन्तभुजगोपरि । लक्ष्म्यासमन्वितःकृष्णोनिलीनश्चोत्तरेतटे
चक्रं विभीषणं मर्त्ये ज्वालामालासमन्वितम् ।
पतितं नर्मदातोये जलशायिसमीपतः ॥ ६६ ॥
निर्द्धूतकल्मषं जातं नर्मदातोययोगतः । तालमेघवधोत्पन्नं यत्पापं नृपनन्दन !॥
तत्सर्वंक्षालितं सद्योनर्मदाम्भसि भारत !। तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिञ्जलशायीमहीपते
चक्रतीर्थं वदन्त्यन्येकेचित्कालाघनाशनम् । विख्यातं भारते वर्षेनर्मदायां महीपते
तत्तीर्थस्य प्रभावोऽयं श्रूयतामवनीपते !।
यथाऽनन्तो हि नागानां देवानां च जनार्द्दनः ॥ ७३ ॥
मासानां मार्गशीर्षोऽस्ति नदीनां नर्मदा यथा ।
मासि मार्गशिरे पार्थ! ह्येकादश्यां सितेऽहनि ॥ ७४ ॥
गत्वा यो मनुजो भक्त्या कामक्रोधविवर्जितः ।
वैष्णवीं भावनां कृत्वा जलेशं तु व्रजेत वै ॥ ७५ ॥
एकभुक्तं च नक्तं चतथैवाऽयाचितं नृप । उपवासं तथा दानंब्राह्मणानांचभोजनम्
करोति च कुरुश्रेष्ठ! नसयातियमालयम् । यमलोकभयाद्भीतायेलोकाःपाण्डुनन्दन
तेपश्यन्तुश्रियःकान्तंनागपर्यङ्कशायिनम् । गोपीजनसमावृत्तंयोगनिद्रांसमाश्रितम्
विश्वरूपं जगन्नाथं संसारभयनाशनम् ॥ ७८ ॥
स्नापयेत्परया भक्त्याक्षौद्रक्षीरेण सर्पिषा । खण्डेनतोयमिश्रेणजगद्योनिंजनार्द्दनम्

स्नाप्यमानं च पश्यन्ति ये लोका गतमत्सराः ।
ते यान्ति परमं लोकं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ८० ॥
घृतेन बोधयेद्दीपमथवा तैलपूरितम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे विमत्सराः
ये कथां वैष्णवीं भक्त्या शृण्वन्ति च नृपोत्तम ।
ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ ८२ ॥
प्रदक्षिणन्ति ये भक्त्या जलशायिजगद्गुरुम् ।
प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ८३ ॥
ततः प्रभाते विमले पितॄन्संतर्पयेज्जले । श्राद्धं च ब्राह्मणैस्तत्र योग्यैः पाण्डवमानवाः
स्वदारनिरतैः शान्तैः परदारविवर्जकैः । वेदाभ्यसनशीलैश्च स्वकर्मनिरतैः शुभैः
नित्यं यजनशीलैश्च त्रिसन्ध्यापरिपालकैः ।
श्रद्धया कारयेच्छ्राद्धं यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ८६ ॥
ते धन्या मानुषे लोके धन्या हि भुवि मानवाः ।
ये वसन्ति सदाकालं पादपद्माश्रया हरेः ॥ ८७ ॥
जलशायं प्रपश्यन्ति प्रत्यक्षं सुरनायकम् ।
पक्षोपवासं पाराकं व्रतं चान्द्रायणं शुभम् ॥ ८८ ॥
मासोपवासमुग्रं च षष्ठान्नपञ्चमव्रतम् । तत्फलाधिकमाप्नोति स्नात्वा सोऽप्ययागतिमाप्नुयात्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलधेनोश्च यत्फलम् ।
यथा यस्मिन्यदा देया दाने तस्याः शुभं फलम् ॥ ९० ॥
एतत्कथान्तरं पुण्यमपेक्षेपापनाशनात्पुरा । श्रुतं हि नैमिषे पुण्ये नारदाद्यैरनेकधा ॥
इदं परममायुष्यमङ्गल्यकीर्तिवर्द्धनम् । विप्राणां श्रावयन्विद्वान्स चानन्त्यमश्नुते
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं तारयन्ति च
एकमेव प्रदातव्यं न बहूनां युधिष्ठिर । सा च विक्रयमापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम्
तिला श्वेतास्तिला कृष्णास्तिला गोमूत्रसन्निभा ।

तिलानां तु विचित्राणां धेनुं वत्सं च कारयेत् ॥ ९५ ॥
यथालाभा तु सर्वेषां चतुर्द्रोणा तु गौः स्मृता ।
द्रोणस्य वत्सकः कार्यो बहुना वाऽपि कामतः ॥ ९६ ॥
यस्मिन्देशे तु यन्मानं विषये वा विचारितम् ।
तेन मानेन तां कुर्वन्नक्षयं फलमश्नुते ॥ ९७ ॥
सुखपूर्वं शुचौ भूमौ पुष्पधूपाक्षतैस्तथा । कर्णाभ्यांरत्नेदातव्ये दीपौनेत्रद्वये तथा
श्रीखण्डसुरभिस्थाप्यंताभ्यां चैवतुकाञ्चनम् । उदुम्बंमधुनुतंदेयंकुर्यात्सर्परोमकम्
कम्बलेकम्बलंदद्याच्छ्रोण्यां मधुघृतंतथा । यवसं पायसंदद्याद्घृतं क्षौद्रसमन्वितम्
स्वर्णशृङ्गीरूप्यशिफारुक्मलांगूलसंयुता । रत्नपृष्ठातुदातव्याकांस्यपात्रावदोहिनी
यत्स्याद्बाल्यकृतं पापं यद्वा कृतमजानता ।
वाचा कृतं कर्मकृतं मनसा यद्विचिन्तितम् ॥ १०२ ॥
जले निष्ठीवितं चैव मुशले वापि लङ्घितम् ।
वृषलीगमनञ्चैव गुरुदारनिषेवणम् ॥ १०३ ॥
कन्याया गमनञ्चैव सुवर्णस्तेयमेव च । सुरापानं तथा चान्यत्तिलधेनुःपुनातिहि
अहोरात्रोपवासेनविधिवत्तां विसर्जयेत् । या सा यमपुरेघोरे नदीवैतरणीस्मृता
वालुकाऽयोऽश्मस्थला च पच्यतेयत्रदुष्कृती । अवीचिर्नरकोयत्रयत्रयामलपर्वतौ
यत्र लोहमुखाःकाका यत्र श्वानो भयङ्कराः । असिपत्रवनञ्चैवयत्रसाकूटशाल्मली
तान्सुखेन व्यतिक्रम्य धर्मराजालयं व्रजेत् । धर्मराजस्तु तं दृष्ट्वा सूनृतं वक्तिभारत
विमानमुत्तमं योग्यं मणिरत्नविभूषितम् । अत्रारुह्य नरश्रेष्ठ! प्रयाहि परमां गतिम्
मा च चाटु भटे देहि मैव देहि पुरोहिते ।
मा च काणे विरूपे च न्यूनाङ्गे न च देवले ॥ ११० ॥
अवेदविदुषे नैव ब्राह्मणे सर्वविक्रये । मित्रघ्ने च कृतघ्ने च मन्त्रहीने तथैव च ॥
वेदान्तगाय दातव्या श्रोत्रियाय कुटुम्बिने । वेदान्तगसुते देयाश्रोत्रिये गृहपालके
सर्वाङ्गरुचिरे विप्रे सद्वृत्ते च प्रियम्वदे ।

पूर्णिमायां तु माघस्य कार्त्तिक्यामथ भारत ॥ ११३ ॥
वैशाख्यां मार्गशीर्ष्यां आऽऽषाढ्यां चैत्र्यामथाऽपि वा ।
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते च भारत ॥ ११४ ॥
षडशीतिमुखे पुण्ये छायायां कुञ्जरस्य वा ।
एप ते कथित कल्पस्तिलधेनोमयाऽनघ ॥ ११५ ॥
अचलिनि वैष्णव लोक दत्त्वा पादं यमोपरि ।
प्राणत्यागात्परं लोकं वैष्णवं नात्र संशयः ॥
भित्त्वाऽऽशु भास्करं यान्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ११६ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं चक्रतीर्थफलं नृप ।
यच्छ्रुत्वा मानवो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११७ ॥
इति श्रीस्कान्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे जलशाय्यादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

चण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमपावनम् ।
चण्डादित्यं नृपश्रेष्ठ स्थापितं चण्डमुण्डयोः ॥ १ ॥
आस्तां पुरा महादैत्यौ चण्डमुण्डौ सुदारुणौ ।
नर्मदातीरमाश्रित्य चेरतुर्विपुलं तपः ॥ २ ॥
ध्यायन्तौ भास्करं देवं तमोनाशं जगत्त्रये । तुष्टस्तत्तपसा देवः सहस्रांशुरुवाच ह

साधुसाध्विति तौ पार्थ नर्मदायाः शुभे तटे । वरं प्रार्थयतो वीरो यथेष्टं चेतसेप्सितम्

चण्डमुण्डावूचतुः

अजेयौ सर्वदेवानां भूयास्वावां समाहितौ । सर्वरोगैः परित्यक्तौ सर्वकालं दिवाकर

एवमस्त्विति तौ प्राह भास्करो वारितस्करः ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे भानुर्दैत्याभ्यां तत्र भास्करः ॥ ६ ॥

स्थापितः परया भक्त्या तं गच्छेदात्मसिद्धये ।

गीर्वाणांश्च मनुष्यांश्च पितॄंस्तत्राऽपि तर्पयेत् ॥ ७ ॥

स वसेद्भास्करे लोके विरञ्चिदिवसं नृप । घृतेन बोधयेद्दीपं षष्ठ्यां स च नरेश्वर

मुच्यते सर्वपापैस्तु प्रतियाति पुरं रवेः ॥ ८ ॥

उत्पत्तिं चण्डभानोर्यः शृणोति भरतर्षभ । विजयी स सदा नूनमाधिव्याधिविवर्जितः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे चण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र यमहास्यमनुत्तमम् । सर्वपापहरं तीर्थं नर्मदातटमाश्रितम् ॥

युधिष्ठिर उवाच

यमहास्यं कथं जातं पृथिव्यां द्विजपुङ्गव ॥ एतत्सर्वं समाख्याहि परं कौतूहलं हि मे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ पृष्टोऽहं नृपनन्दन । स्नानार्थं नर्मदां पुण्यामागतस्ते पिता पुरा

रजकेन यथा धौतं वस्त्रं भवति निर्मलम् । तथाऽसौ निर्मलो जातो धर्मराजो युधिष्ठिर

स पश्यन्निर्मलं देहं हसन्वोवाच विस्मितः ॥ ५ ॥

यम उवाच

मत्पुरकथमायान्तिमनुजा पापदूषिताः । स्नानेनैकेनरेवाया प्राप्यतेवैष्णवम्पदम्

समर्था ये न पश्यन्ति रेवां पुण्यजलां शुभाम् ।

यान्त्यन्धैस्ते समाज्ञेया मृतैः पशुभिरेव वा ॥ ७ ॥

समर्था ये न पश्यन्ति रेवां पुण्यजलां नदीम् ।

एतस्मात्कारणाद्राजन्हसितो लोकशासन ॥ ८ ॥

स्थापयित्वायमस्तत्रदेवस्वर्गंजगाम ह । यमहासेश्वरे राजञ्जितक्रोधोजितेन्द्रियः

विशेषाद्वाऽऽश्विनेमासि कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।

उपोष्य परया भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १० ॥

रात्रौ जागरणंकुर्याद्दीपं देवस्य बोधयेत् । शृणुतत्राऽस्तियत्फलम्

मुच्यते पातकैः सर्वैरगम्यागमनोद्भवैः । अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरपेयापेयजैरपि ॥ १२॥

अवाह्यवाहिनैर्यत्स्यादद्रोह्यद्रोहनैर्यथा । स्नानमात्रेणतस्यैवयान्तिपापान्यनेकधा

यमलोकं न वीक्षेत मनुजः स कदाचन । पितॄणां परमं गुह्यमिदं भूमौ नरेश्वर ॥

दत्तामक्षय्यं सर्वं यमहास्ये न संशयः । अमावास्याजितक्रोधोयस्तुपूजयतेद्विजान्

हिरण्यभूमिदानेन तिलदानेन भूयसा । कृष्णाजिनप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥

विधानोक्तद्विजाग्र्याय ये प्रदास्यन्ति भक्तितः ।

हयं वा कुञ्जरं वाऽथ धूम्रौ सीरस्तुतौ ॥ १७ ॥

कन्यां वसुमतीं गां च महिषीं वा पयस्विनीम् ।

ददते ये नृपश्रेष्ठ नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ १८ ॥

यमोऽपिभवतिप्रीतः प्रतिजन्मयुधिष्ठिर । यमस्यवाहोमहिषो महिष्यस्तस्यमातरः

तासादानप्रभावेणयम प्रीतोभवेद्ध्रुवम् । नाऽसौयममवाप्नोतियद्दिपापैः समावृतः

एतस्मात्कारणाद्दत्तमहिषीदानमुत्तमम् । तस्याःशृङ्गेजलकार्यं धूम्रवस्त्रानुवेष्टिता

आयसस्य खुराः कार्यास्ताम्रपृष्ठाः सुभूषिताः ।

लवणाचलं पूर्वस्यामाग्नेय्यां गुडपर्वतम् ॥ २२

कार्पासं याम्यभागं तु नवनीतं तु नैर्ऋते ।

पश्चिमे सप्तधान्यानि वायव्ये तन्दुलाः स्मृताः ॥ २३ ॥

सौम्ये तु काञ्चनं दद्यादीशाने घृतमेवच । प्रदद्याद्यमराजो मे प्रीयतामित्युदीरयन्.
इत्युच्चार्य द्विजस्याग्रे यमलोकं महाभयम् । असिपत्रवनं घोरं यमचुल्लीन्सुदारुणा
रौद्रावैतरणी चैव कुम्भीपाको भयावहः । कालसूत्रो महाभीमस्तथायमलपर्वतौ

क्रकचं तैलयन्त्रं च श्वानो गृध्राः सुदारुणाः ।

निरुच्छ्वासा महानादा भैरवो रौरवस्तथा ॥ २७ ॥

एते घोरा याम्यलोके श्रूयन्ते द्विजसत्तम !।

त्वत्प्रसादेन ते सौम्यास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥ २८ ॥

दानस्याऽस्य प्रभावेण यमराजप्रसादतः ।

नरकेऽहं न यास्यामि द्विज! जन्मनि जन्मनि ॥ २६ ॥

यमहास्यस्य चाख्यानमिदं शृण्वन्ति ये नराः ।

तेऽपि पापविनिर्मुक्ता न पश्यन्ति यमालयम् ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कल्होडीतीर्थमुत्तमम् ।
विख्यातं भारते लोके गङ्गाया पापनाशनम् ॥ १ ॥
दुर्लभं मनुजैः पार्थ रेवातटसमाश्रितम् । प्रार्थिता पापनाशाय ऊढ्वा पुष्करं तथा
तत्र तीर्थमिदं पुण्यमित्येवं शूलिनोदितम् । जाह्नवी पशुरूपेण तत्र स्नानार्थमागता
अतस्तद्विश्रुतं लोके कल्होडीतीर्थमुत्तमम् । स्नात्वा कार्यं सदा तत्र पूर्णिमायां युधिष्ठिर
रजस्तमस्तथा क्रोधं दम्भं मात्सर्यमेव च ।
यस्तास्त्यजति वै पार्थ तेनाप्तं मोक्षजं फलम् ॥ ५ ॥
पयसा स्नापयेद्देवं त्रिमधु यथाविधि तथा । पयो गोसम्भवं सद्य स्नपयेत्तीर्थपुण्यदा
कृत्वा तत्ताम्रमये पात्रे क्षौद्रेण चैव योजिते ।
ॐ नमः श्रीशिवायेति स्नानं देवस्य कारयेत् ॥ ७ ॥
स याति त्रिदशस्थानं नाकस्त्रीभिः समावृतः ।
यस्तत्र विधिवत्स्नात्वा दानं प्रेतेषु यच्छति ॥ ८ ॥
शुक्लां गां दापयेत्तत्र प्रीयन्तां मे पितामहाः । ब्राह्मणे शीलसम्पन्ने स्वदारनिरते सदा
सवत्सां घण्टासंयुक्तां हिरण्योपरि संस्थिताम् ।
सत्ययुक्तो ददद्राजञ्छाश्वतं लोकमाप्नुयात् ॥ १० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरंराजन्नन्दितीर्थं व्रजेच्छुभम् । सर्वपापहरंपुंसां नन्दिनानिर्मितम्पुरा
पापौघहतजन्तूनां मोक्षदं नर्मदातटे । अहोरात्रोपितो भूत्वा नन्दिनाथे युधिष्ठिर
पञ्चोपचारपूजायामर्च्चयेन्नन्दिकेश्वरम् । रत्नानि चैव विप्रेभ्यो यो दद्याद्धर्मनन्दन!
स याति परमं स्थानं यत्र वासः पिनाकिनः ।
सर्वसौख्यसमायुक्तोऽप्सरोभिः सह मोदते ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्रयांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! बदर्याश्रममुत्तमम् । सर्वतीर्थवरं पुण्यं कथितं शम्भुना पुरा
यश्चैव भारतस्याऽर्थे तत्र सिद्धः किरीटभृत् ।
भ्राता ते फाल्गुनो नाम विद्धयेनंनरदैवतम् ॥ २ ॥
नरनारायणौ द्वौ तावागतौ नर्मदातटे । ज्ञानंतस्यैव यो राजन्भक्तिमान्वैजनार्दने
समम्पश्यति सर्वेषु स्थावरेषु चरेषु च । ब्राह्मणं श्वपचं चैव तत्र प्रीतो जनार्द्दनः

पैशाच्य पश्य कौन्तेय मयि चाऽऽमनि नान्तरम् ।
नरनारायणाभ्यां हि कृतं बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥
स्थापितं शङ्करस्तत्र लोकानुग्रहकारणात् ।
त्रिमूर्तिस्थापितं लिङ्गं स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥
तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वा एकरात्रोपवासतः ।
रजस्तमस्तथा त्यक्त्वा सात्त्विकं भावमाश्रयेत् ॥ ७ ॥
रात्रौ जागरणं कृत्वामावास्यामादिने । अथचाथ चतुर्दश्यामुभौपक्षौचकारं
आश्विनस्य विशेषेण कथितं तव पाण्डव ।
स्नापयेत्परया भक्त्या क्षीरेण मधुना सह ॥ ९ ॥
दध्नाशर्करया युक्तं घृतेन समलङ्कृतम् । पञ्चामृतमिदंपुण्यं स्नापयेदृषभध्वजं
स्नाप्यमानं शिवं भक्त्या वीक्षते यो विमत्सरः ।
तस्य पापं शिवोपास्ते शक्रलोके न संशयः ॥ ११ ॥
शाठ्येनाऽपि नमस्कारः प्रयुक्तः शूलपाणिने ।
संसारमूलबद्धानामुद्वेष्टनकरो हि यः ॥ १२ ॥
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेनसर्वमनुष्ठितम् । येनोंनमःशिवायेतिमन्त्राभ्यासःस्थिरीकृ
यः पुनः स्नापयेद् भक्त्या एकभक्तो जितेन्द्रियः ।
तस्याऽपि यत्फलं पार्थ वक्ष्ये तल्लेशतस्तव ॥ १४ ॥
पाडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या वदाम्यहम् ।
ते यान्ति परमं स्थानं भित्त्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥
संसारे सर्वसौख्यानां निलयास्ते भवन्ति च ।
आश्चर्यं ज्ञातिवर्गाणां धर्माणां निलयास्तु ते ॥ १६ ॥
सम्पन्नाःसर्वकामैस्तेपृथिव्यांपृथिवीपते । श्राद्धतत्रैव यः कुर्यान्नमदोदकमिश्रित
योग्यैश्च ब्राह्मणै राजन्दुर्लभैर्वेदपारगैः । सुरूपैश्च सुशीलैश्च स्वदारनिरतैः शुभै
आयदेशप्रसूतैश्च रूपर्णैश्चैव सरूपिभिः । कारयेत्पिण्डदानं वै भास्करेकुतपस्थि

पितृणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन । वर्जयेत्तान्प्रयत्नेन काणान्दुष्टांश्चदाम्भिकान्
पुरुषान्क्रूरषण्ढांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।
एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् । नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान्
मोक्षो भवति सर्वेषां पितृणां नृपनन्दन !।
विप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥
अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत । गां वृषंमेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम!
स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।
प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥
अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप !॥ २६ ॥
स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुनः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि राजा भवति वीर्य्यवान् ॥ २७ ॥
सर्व्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः । ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

ऐकात्म्यं पश्य कौन्तेय मयि चाऽऽत्मनि नान्तरम् ।
नरनारायणाख्या हि कृत बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥
स्थापित शङ्करस्तत्र लोकानुग्रहकारणात् ।
त्रिमूर्तिस्थापितं लिङ्गं स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥
तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वा त्रिरात्रोपवासतः ।
रजस्तमस्तथा त्यक्त्वा सात्त्विकं भावमाश्रयेत् ॥ ७ ॥
रात्रौ जागरणं कृत्वामधुमासाष्टमीदिने । अथवाच चतुर्दश्यामुभौपक्षौचकारयेत्
आश्विनस्य विशेषेण कथितं तव पाण्डव ।
स्नापयेत्परया भक्त्या क्षीरेण मधुना सह ॥ ९ ॥
दध्नाशर्करया युक्तं घृतेन समलङ्कृतम् । पञ्चामृतमिदंपुण्यं स्नापयेद्वृषभध्वज
स्नाप्यमानं शिवं भक्त्या पश्यन्ते ये विमत्सराः ।
तस्य धाम शिवोपान्ते शक्रलोके न संशयः ॥ ११ ॥
शाठ्येनाऽपि नमस्कारः प्रयुक्तः शूलपाणिने ।
संसारमूलबद्धानामुद्वेगनकरो हि यः ॥ १२ ॥
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेनसर्वमनुष्ठितम् । येनोंनमः शिवायेतिमन्त्राभ्यासः स्थिरीकृ
यः पुनः स्नापयेद्भक्त्या एकभक्तो जितेन्द्रियः ।
तस्याऽपि यत्फलं पार्थ वक्ष्ये तल्लेशतस्तव ॥ १४ ॥
पीडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या वदाम्यहम् ।
ते यान्ति परमं स्थानं भित्त्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥
संसारे सर्वसौख्यानां निलयास्ते भवन्ति च ।
आश्रयं ज्ञातिवर्गाणां धर्माणां निलयास्तु ते ॥ १६ ॥
सम्पन्नाःसर्वकामैस्तेपृथिव्यांपृथिवीपते । श्राद्धंतत्रैव यः कुर्यात्कर्मदोदकमिश्रितम्
योग्यैश्च ब्राह्मणैः राजन्कुलीनैर्वेदपारगैः । सुरूपैश्च सुशीलैश्च स्वदारनिरतैः शुभैः
आर्यदेशप्रसूतैश्च स्वरूपैश्चैव सुरूपिभिः । कारयेत्पिण्डदानं वै भास्करेकुतपस्थिते

पितृणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन । वर्जयेत्तान्प्रयत्नेन काणान्दुष्टांश्चदाम्भिकान्
पुरुषान्क्रूरषण्ढांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।
एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् । नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान्
मोक्षो भवति सर्वेषां पितृणां नृपनन्दन !।
विप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥
अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत । गां वृषंमेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम!
स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।
प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥
अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप !॥ २६ ॥
स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुनः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि राजा भवति वीर्य्यवान् ॥ २७ ॥
सर्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः । ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालव्यासतीर्थमनुत्तमम् । दुर्ल्लभंमनुजैःपुण्यमन्तरिक्षेव्यवस्थितम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माद्वै व्यासतीर्थं तदन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ।
एतदाख्याहि संक्षेपात्त्यज ग्रन्थस्य विस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधुमहाबाहो धर्मवान्साधुवत्सल । स्वकर्मनिरतः पार्थतीर्थयात्राकृतादरः
दुर्ल्लभं सर्वजन्तूनां व्यासतीर्थं नरेश्वर । पीडितोवृद्धभावेन अकल्पोऽहंनृपात्मज

विसञ्ज्ञो गतवित्तस्तु सञ्जातः स्मृतिवर्जितः ।
गुह्याद् गुह्यतरं तीर्थं नाऽऽख्यातं कस्यचिन्मया ॥ ५ ॥
कलिस्तत्रैव राजेन्द्र न विशेद् व्याससंश्रयात् ।
अन्तरिक्षे तु सञ्जातं रेवायाश्चेष्टितेन तु ॥ ६ ॥
विरिञ्चिर्नैव शक्नोति रेवाया गुणकीर्त्तनम् ।
कथं ज्ञास्याम्यहं तात रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥

व्यासतीर्थंविशेषेण लवमात्रं ब्रवीम्यतः । प्रत्यक्षः प्रत्ययो यत्र दृश्यतेऽद्यकलौयुगे
विहङ्गोगच्छतेनैवभिरवाशूलंसुदारुणम् । तस्योत्पत्तिसमासेनकथयामिनृपात्मज
आसीत्पूर्वंमहीपालमुनिर्मान्यःपराशरः । तेनात्युग्रंतपश्चीर्णं गङ्गाम्भसिमहाफलम्
प्राणायामेन सन्तस्थौप्रविष्टोजाह्नवीजले । पूर्णेद्वादशमेवर्षे निष्क्रान्तोजलमध्यतः

भिक्षार्थी सञ्चरेद् ग्रामं नावा यत्रैव तिष्ठति ।
तत्र तेन परा दृष्टा बाला चैव मनोहरा ॥ १२ ॥

ता दृष्ट्वा स च कामार्त उवाच मधुरं तदा ।
मां नयस्व परं पारं काऽसि त्वं मृगलोचने ॥ १३ ॥
नायामन्दे नदीतीरे मम चित्तप्रमाथिनि । एवमुक्ता तु सा तेन प्रणम्य सस्मितं मुदा
कथयामास चाऽऽत्मानं दृष्ट्वा तं काममोहितम् ।
कैवर्तानां गृहे दासी कन्याऽहं द्विजसत्तम ॥ १५ ॥
नावा सन्तरणार्थाय आदिष्टा स्वामिना विभो ।
मया चिरपितं वृत्तमर्थं श्रोतुमर्हसि ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्तदा सोऽथ क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीदिदम् ॥ १७ ॥

पराशर उवाच

भद्रासनं ध्यानयोगेन ज्ञातमिति भवम् । कैवर्तपुत्रिका न त्वं राजकन्याऽसि सुन्दरि

कन्योवाच

क पिता कथ्यतां मह्यं कस्या वा हि उदरोद्भवा ।
कस्मिन्वंशे प्रसूताऽहं कथयस्व तथा कथम् ॥ १९ ॥

पराशर उवाच

कथयामि समस्तं यथा पूर्ववृत्तम् । वसुनामेति भूपालः सोमवंशविभूषणः ॥
जम्बूद्वीपाधिपो भद्रे शत्रूणां भयवर्धनः । शतानि सप्तभार्याणां पुत्राणां च दशैव तु
धर्मेण पाल्यते लोकान्भावभूज्यते सदा ।
म्लेच्छास्तस्य विशेषाच्च क्षीरद्वीपनिवासिनः ॥ २२ ॥
तेषामुत्पादनार्थाय यथाज्ञुष्टं ययौ सागरम् । सयुक्तः पुत्रभृत्यैश्च पौरदेशैश्च तिष्ठति
समरे ते समारब्धम्लेच्छैश्च वसुनासह । जिताम्लेच्छाः समस्तास्ते वसुना मृगलोचने
करदास्ते कृतास्तेन सपुत्रबलवाहना । प्रजाता तस्य भार्या तव माता मृगेक्षणे
प्रवासस्थे महीपाले सञ्जाता सा रजस्वला ।
नारीणां तु सदाकाले मन्मथो ह्यधिको भवेत् ॥ २४ ॥
विशेषेण ऋतौ काले भिद्यन्ते कामसायकैः ।

मन्मथेन तु सन्तप्ताऽचिन्तयत्सा शुभेक्षणा ॥ २७ ॥
दूतं वै प्रेषयाम्यद्य वसुराज्ञः समीपतः। आहूतः सत्वरं दूत! गच्छत्वं नृपसन्निधौ

दूत उवाच

परतीरं गतो देवि वसुराजाऽरिशासनः। तत्र गन्तुमशक्येत जलयानैर्विना शुभे
तानि यानानि सर्वाणि गृहीतानि परे तटे।
दूतवाक्येन सा राज्ञी विषण्णा कामपीडिता ॥ ३० ॥
तत्सखी तामुवाचाऽथ कस्मात्त्वं परितप्यसे।
स्वलेखः प्रेष्यतां देवि ! शुकहस्ते यथार्थतः ॥ ३१ ॥
समुद्रं लङ्घयित्वा तु शकुन्ता यान्ति सुन्दरि !।
सखिवाक्येन सा राज्ञी स्वस्था जाता नराधिप !॥ ३२ ॥
व्याहृतोलेखकस्तत्रलिखलेखं ममाज्ञया। त्वद्धीनासत्यभामाद्यवसोराजन्नजीवति
ऋतुकालोऽद्यसञ्जातो लिखलेखं तु लेखक !। लिखितेभूर्जपत्रे तु लेखे वै लेखकेनतु
शुकः पञ्जरमध्यस्थ आनीतोऽद्यैव सन्निधौ ॥ ३५ ॥

सत्यभामोवाच

नीत्वालेखं गच्छशीघ्रंवसुराज्ञःसमीपतः। शकुनिःप्रणतोभूत्वागृहीत्वालेखमुत्तमम्
उत्पत्य सहसाराजञ्जगामाऽऽकाशमण्डलम्। ततःपक्षीगतःशीघ्रंवसुराजसमीपतः
क्षिप्ते लेखेशुकेनैव सत्यभामाविसर्जिते। वसुराज्ञा ततो लेखोगृह्यहस्तेऽवधारितः
लेखार्थं चिन्तयित्वातुगृह्यवीर्यं नरेश्वरः। अमोघंपुटिकांकृत्वाप्रतिलेखेनमिश्रितम्
शुकस्य सोऽर्पयामास गच्छराज्ञीसमीपतः। प्रणम्यवसुराजानं वीजंगृह्योत्पपातह
समुद्रोपरि सम्प्राप्तः शुकः श्येनेन वीक्षितः।
सामिषं तं शुकं ज्ञात्वा श्येनस्तमभ्यधावत ॥ ४१ ॥
हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकः श्येनेन भारत!। मूर्च्छया तस्यतद्वीजंपतितंसागराम्भसि
मत्स्येन गिलितंतच्च वीजंवसुमहीपतेः। कन्यामत्स्योदरेजातातेन वीजेन सुन्दरि
प्राप्तोऽसौ लुब्धकैर्मत्स्य आनीतः स्वगृहं ततः।

यावद्विदारितो मत्स्यस्तावद् दृष्टा त्वमुत्तमे ॥ ४४ ॥

शशिमण्डलसङ्काशा मृगनेत्रा समप्रभा । दृष्ट्वा त्वां हर्षिताः सर्वे कैवर्त्ता जातहर्षाः

हर्षितास्ते गताः सर्वे प्रधानस्य च मन्दिरम् । सारितश्चयवामासुर्गृहाणेत्थं महाप्रभ

गृहीता तेन तत्पश्चाद्दाशपुत्रेण मृगेक्षणा । भार्यां स्नात्वाहतनन्धवद्गिपाल्यस्य मृगेक्ष

तत सा चिन्तयामास पराशरवचस्तदा ।

एवमुक्त्वा तु सा तेन दत्ताऽस्मात नरेश्वर ॥ ४८ ॥

उवाच साधु मे ब्रह्मन् ! मत्स्यगन्धोऽनुवर्तते ।

ततस्तेन तु सा बाला दिव्यगन्धाधिवासिता ॥ ४९ ॥

एतायोगवलेनैव ज्याल्गिन्धा विभावसुम् । कृत्वाप्रदक्षिणं वहिमुद्रातेनरमोत्तम

जत्वा तस्य मध्ये [illegible] कामन्यानान्यमस्पृशन् ।

ज्ञात्वा कामो सुर चित्तं भीता सा धर्मनन्दन ! ॥ ५१ ॥

हस्तर्जनमुनाथाऽयदत्वं स्वलोकसन्निधौ । गच्छसे कथं मनुयाण पामतोचिता

ततस्तेन क्षण ध्यात्वा सस्मृता हृदि तामसी ।

आगता तामसी माया यया व्याप्त चराचरम् ॥ ५३ ॥

तत साविस्मितानेन कर्मणा चतुरञ्जिता । ब्रह्मचर्यमितस्तेनखीसौख्यमीडितनतद

तत सा तत्क्षणादेव गर्भभारेणपीडिता । प्रसूताथाऽकतनयं दण्डधारिणम्

कमण्डलुधरं शान्तं मेखलाकटिभूषितम् ।

उत्तरीयकृतास्कन्ध विष्णुमायाविवर्जितम् ॥ ५६ ॥

ततोऽपि शङ्किता पार्थ दृष्ट्वा तं कन्यालकम् ।

वेपमाना ततो बाला जगाम शरणं मुने ॥ ५७ ॥

रक्ष रक्ष मुनिश्रेष्ठ ! पराशर महामते ! । जात मेऽद्भुत पुत्र कौपीनचर्मवस्त्रम् ।

दण्डहस्तं जटायुक्तमुत्तरीयविभूषितम् ॥ ५८ ॥

पराशर उवाच ।

मा भैषी स्वसुते जाते कुमारी त्वं भविष्यसि ।

नाम्ना योजनगन्धेति द्वितीयं सत्यवत्यपि ॥ ५६ ॥
शन्तनुर्नाम राजा यः स ते भर्त्ता भविष्यति ।
प्रथमा महिषी तस्य सोमवंशविभूषणा ॥ ६० ॥
गच्छत्वंस्वाश्रयंशुभ्रे पूर्वरूपेणसंस्थिता । माविषादंकुरुष्वाऽत्रदृष्टं ज्ञानस्यमेवलम्
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः सा बाला पुत्रमाश्रिता ।
नत्वोचे मातरं भक्त्या साष्टाङ्गं विनयानतः ॥ ६२ ॥
क्षम्यतां मातरुक्तं मे प्रसादः क्रियतामपि । ईश्वराराधने यत्नंकरिष्याम्यहमम्बिके ·
ततः सा पुत्रवाक्येन विषण्णा वाक्यमब्रवीत् ॥ ६४ ॥

योजनगन्धोवाच

मा त्यक्त्वा गच्छ वत्साद्य मातरं मामनागसम् ।
त्वद्वियोगेन मे पुत्र! पञ्चत्वं भाव्यसंशयम् ॥ ६५ ॥
नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं कुलम् ।
नाऽस्ति सत्यपरो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥ ६६ ॥
बालभावे मयाजात आधारःकिलजायसे । न मे भर्त्ता नमेपुत्रःपश्यकर्मविडम्बनम्

व्यास उवाच

मा विषादं कुरुष्वान्तः सत्यमेतन्मयेरितम् ।
आपत्कालेऽस्मि ते देवि ! स्मर्त्तव्यः कार्यसिद्धये ॥ ६८ ॥
आपद्भ्यस्तारयिष्यामि क्षम्यतां मे दुरुत्तरम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ व्यासः कन्या साऽपि गता गृहम् ॥ ६६ ॥
पराशरसुतस्तत्र विषण्णो वनमध्यतः । त्रेतायुगावसाने तु द्वापरादौ नरेश्वर ॥
व्यासार्थं चिन्तयामासुर्देवाःशक्रपुरोगमाः । आख्यातोनारदेनैवपुत्रःपराशरस्यसः
कैवर्तपुत्रिकाजातो जाह्नवीजह्नुसुतातटे । ततोनारदवाक्येन आगताः सुरसत्तमाः
रामः पितामहः शक्रो मुनिसङ्घैः समावृताः ।

पितामहेन वै बालो गर्भाधानादिसंस्कृतः ।
द्वैपायनो द्वीपजन्मा पाराशर्यः पराशरात् ॥ ७४ ॥
कृष्णांशात्कृष्णनामायं व्यासो वेदान्व्यसिष्यति ।
विरञ्चिनाऽभिषिक्तोऽसौ मुनिसङ्घैः पुनः पुनः ॥ ७५ ॥
व्यासस्य मघवाद्येषु त्वेवमुक्त्वा प्रययुः सुराः ।
तीर्थयात्रा समारब्धा कृष्णद्वैपायनेन तु ॥ ७६ ॥
गङ्गावगाहिनानेन वेदव्यासेन पुष्करे । गयायां नैमिषे तीर्थे कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥
उज्जयिन्यां महाकालं सोमनाथं प्रभासके ।
पृथिव्यां सागरान्तायां कृत्वा यात्रां महामुनिः ॥ ७७ ॥
अमृतां नर्मदामासाद्य रुद्रदेहोद्भवां शुभाम् । स्नात्वा सोमसर्वाङ्गं विस्तपिधानिमाषध
तपश्चचार विपुलं नर्मदातटमाश्रितः । ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः
सार्द्रवासाश्च हेमन्ते तिष्ठन्ध्यायी महेश्वरम् ।
ध्यानेन त्वमनेन ध्यायते परमेश्वरम् ॥ ८१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे प्रत्यक्षः प्रादुर्भूतः शुभम् । नित्यं सिद्धेश्वरं लिङ्गं पूजयेदासनतत्पर
अथ नाम्ना सिद्धलिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभावतः । प्रत्यक्षः शङ्करो जातः कृष्णद्वैपायनस्य ॥

ईश्वर उवाच

तोषितोऽहं त्वया वत्स वरं वरय शोभनम् ॥ ८४ ॥

व्यास उवाच

यदि तुष्टोऽसि ॥ देव यदि देयो वरो मम । अस्मिन्नर्मदातीरे त्वयमेवमधिष्ठिर
अतीतानागतज्ञोऽहं त्वत्प्रसादाद्भवाम्यहम् ॥ ८५ ॥

ईश्वर उवाच

एवं भवतु मे पुत्र त्वत्प्रसादात्संशयम् । त्वयि भक्तिगृहीतोऽहं वत्स्यामि नर्मदातटे
सहस्रांशात्समापन्नः प्रत्यक्षोऽहं त्वदाश्रमे । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः कैलासं नगमुत्तमम्
पत्नीसंग्रहणं जातं कृष्णद्वैपायनस्य तु । शास्त्रोक्तेन विधानेन पत्नी पारस्वतस्तथा

पुत्रो जातो ह्यपुत्रस्य पराशरसुतस्य च। देवैर्वर्द्धापितः सर्वैर्विरिञ्चेन्द्रपुरोगमैः
पुत्रजन्मन्यथाजग्मुर्वशिष्ठाद्या मुनीश्वराः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः॥

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः।
यमापस्तम्बसम्वर्त्ता कात्यायनबृहस्पती॥ ९१॥

एवमादिसहस्राणिलक्षकोटिशतानिच। सशिष्याश्चमहाभागानर्मदातटमाश्रिताः

व्यासाश्रमे शुभे रम्ये सन्तुष्टा आययुर्नृप।
दृष्ट्वा तान्सोऽपि विप्रेन्द्रानभ्युत्थानकृतोद्यमः॥ ९३॥

पितुःपूर्वंप्रणम्याऽदात्सर्वेषांचयथाविधि। आसनानिददौभक्त्यापाद्यमर्घ्यंयथेद्यत
कृताञ्जलिपुटोभूत्वावाक्यमेतदुवाचह। उद्धतोऽहं नसन्देहोयुष्मत्सम्भाषणार्चनात्

आरण्यानि च शाकानि फलान्यारण्यजानि च।
तानि दास्यामि युष्माकं सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम्॥ ९६॥

न्यमन्त्रयत तान्सर्वान्प्रत्येकं प्रणिपत्य च। ततस्ते प्रणतं दृष्ट्वा कृष्णद्वैपायनंमुनिम्
वर्द्धयित्वा जयाशीर्भिरवलोक्य परस्परम्। पराशरःसमस्तैश्च वीक्षितोमुनिपुङ्गवैः
उत्तरं दीयतां तात कृष्णद्वैपायनस्य च। एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्भगवान्स पराशरः॥

प्रोवाच स्वात्मजंव्यासमृषीणां यच्चिकीर्षितम्॥ ९९॥

श्रीपराशर उवाच

नेच्छन्ति दक्षिणे कूले व्रतभङ्गभयादथ। भोजनं भोक्तुकामास्ते श्राद्धेचैवविशेषतः

व्यास उवाच

करोमिभवतामुक्तमत्रैवस्थीयतां क्षणम्। यावत्प्रसाद्यसरितं करोमिविधिमुत्तमम्

एवमुक्त्वा शुचिर्भूत्वा नर्मदातटमास्थितः।
स्तोत्रं जगाद सहसा तन्निबोध नरेश्वर!॥ १०२॥

जय भगवति! देवि! नमो वरदे! जय पापविनाशिनि! बहुफलदे!।
जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे! प्रणमामि तु देवनरार्त्तिहरे!॥ १०३॥
जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे! जय पावकभूषितवक्त्रवरे!।

जय भैरवदेहनिलीनपरे जय अन्धकरक्तविशोषकरे ॥ १०४ ॥
जय महिषविमर्दिनि शूलकरे जय लोकसमस्तकपापहरे ।
जय देवि पितामहरामनते जय भास्करशक्रशिरोऽवनते ॥ १०५ ॥
जय षण्मुखसायुधईशनुते जय सागरगामिनि शम्भुनुते ।
जय दुःखदरिद्रविनाशकरे जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे ॥ १०६ ॥
जय देवि समस्तशरीरधरे जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे ।
जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे जय वाञ्छितदायिनि सिद्धवरे ॥ १०७ ॥

एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसंनिधौ । गृहे वा शुद्धभावेन कामक्रोधविवर्जित तस्य व्यासो भवेत्प्रीत प्रातश्च वृषवाहन । प्रीता स्यात्सा महादेवी सर्वपापभयङ्करी

न ते यान्ति यमालोकं यैः स्तुता भुवि नर्मदा ।
पितामहोऽपि तुष्टोऽस्मि देवि त्वद्गुणकीर्तनात् ॥ ११० ॥

यावद्वर्णितैव न पश्यतु स्वरूपं वेद नर्मदे । कथं तुष्यामि देवि त्वमनायासात्तु नर्मदे इति श्रुत्वा शुचिर्भावाद्यमनःकायकर्मभिः । प्रसन्नाभून्महादेवी तमोघ्नमनर्घाम्

स्तुत्यानेन तुष्टाऽहं सौम्यो व्यास महामुने ।
यदीच्छसि वरं किञ्चित्तत्ते सर्वं ददाम्यहम् ॥ ११३ ॥

व्यास उवाच

यदि तुष्टासि मे देवि यदि देयो वरो मम । सान्निध्यमुत्तरे कूले सर्वदा दातुमर्हसि

नर्मदोवाच

अयुक्तमभिधत्से व्यास विमार्गेण प्रवर्तनम् । इतश्चेतश्च मे शक्यं मुक्त्वा मार्गेण वर्तितुम्

याचस्वान्यं वरं पुत्र यत्किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् ।
एतच्छ्रुत्वा वचो देव्या व्यासो मूर्च्छामुपागतः ॥ ११५ ॥
वृथा क्लेशोऽद्य मे जात इति मत्वा पपात ह ।
धरणी चलिता सद्यः सशैलवनकानना ॥ ११७ ॥
मूर्च्छापन्नं ततो व्यासं दृष्ट्वा देवी ससम्भ्रमा ।

हाहाकारमुखाः सर्वे तत्राऽऽजग्मुः सहस्रशः ॥ ११८ ॥
व्यासमुत्थापयामासुर्वेदव्यसनतत्परम् ।
ब्राह्मणार्थे च संक्लिष्टो नात्महेतोः-सरिद्वरे ॥ ११९ ॥
गवार्थे ब्राह्मणार्थे च सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
एवं सा नर्मदा प्रोक्ता ब्रह्माद्यैः सुरसत्तमैः ॥ १२० ॥
सुशीतलैस्तं बहुभिश्चवातै रेवाऽभिषिञ्चत्स्वजलेन भीता ।
सच्चेतनः सत्यवतीसुतोऽपि प्रणम्य देवान्सरितं जगाद ॥ १२१ ॥

व्यास उवाच

तीर्थैः समस्तैः किल सेवनाय फलं प्रदिष्टं मम मन्दभाग्यात् ।
यद्देवि पुण्या विफला ममाशा आरण्यपुष्पाणि यथा जनानाम् ॥ १२२ ॥

नर्मदोवाच

यतो यतो मां हि महानुभाव! निनीषते चित्तमिलातलेऽत्र ।
विन्ध्येन सार्द्धं तव मार्गमद्य यास्याम्यहं दण्डधरस्य पृष्ठे ॥ १२३ ॥
एवमुक्तो महातेजाः व्यासः सत्यवतीसुतः ।
दक्षिणे चालयामास स्वाश्रमस्य सरिद्वराम् ॥ १२४ ॥
दण्डहस्तो महातेजा हुङ्कारमकरोन्मुनिः ।
व्यासहुङ्कारभीता सा चलिता रुद्रनन्दिनी ॥ १२५ ॥
दण्डेन दर्शयन्मार्गं देवीतत्र प्रवर्त्तिता । व्यासमार्गं गता देवी दृष्टाशक्रपुरोगमैः
पुष्पवृष्टि ततोदेवा व्यमुञ्चन्त्सहकिङ्करैः । प्रोत्फुल्लनयनाजाताःपराशरमुखाद्विजाः
किं कुर्मो ब्रूहि मे पुत्र ! कर्मणा ते स्म रक्षिताः ॥ १२७ ॥

व्यास उवाच

तपश्च विपुलं कृत्वा दानंदत्त्वा महाफलम् । एतदेवनरैः कार्यंसाधूनांयत्सुखावहम्
यदि तुष्टा महाभागअनुग्राह्योह्यहंयदि । तस्मान्ममाश्रमेसर्वैःस्थीयतांनाऽत्रसंशयः
आतिथ्यं शाकपर्णेन रेवामृतविमिश्रितम् । प्रतिपन्नः समस्तैर्वः पराशरमुखैर्मम

स्यातव्यं त्वाश्रम सर्वैं स्त्वाया उत्तर तटे ॥ १३० ॥

मार्कण्डेय उवाच

स्नानतर्पणनित्यानि कृतानि द्विजसत्तमै ।

ध्यामकुण्ड तथा भक्त्या होम सर्वैं प्रकल्पित ॥ १३१ ॥

श्रीमद्गैरिव्यपश्चैश्च जुहुयाततेदमम् । गौतमो भृगुमाण्डव्यो नारदो लोमशस्तथा

पराशरस्तथा शङ्ख कौशिकश्च्यवनो मुनि ।

पिप्पलादो वसिष्ठश्च नाचिकेतो महातपा ॥ १३३ ॥

विश्वामित्रोऽप्यगस्त्यश्च उद्दालकयमौ तथा ।

शाण्डिल्यो जैमिनि कण्वो याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिरा ॥ १३४ ॥

शातातपो दधीचिश्च कपिलो गालवस्तथा । जैगीषव्यस्तथा दक्षो भरतो मुद्गलस्तथा

कात्यायनो महातेजा संवर्त शक्तिरेव च ।

मातृकर्णो भरद्वाजो वालखिल्यारुणिस्तथा ॥ १३६ ॥

एवमादिसहस्राणि जुहुयाततेदसम् । अन्यमाप्यकरोत्क्षीणाध्यानयोगपरायणा

एकचित्ता द्विजा सव यजुर्होममिया तदा ।

ततः समुत्थित लिङ्ग मोक्षद व्याधिनाशनम् ॥ १३८ ॥

अच्छेद्य परम दिव्यङ्दृष्ट्वा व्यासस्तुतोष च । पुष्पवृष्टिस्तु देवा आशीर्वादा द्विजोत्तमा

साष्टाङ्ग प्रणतो व्यासो देवं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ।

ब्राह्मणान्पूजयामास शाकमूलफलेन च ॥ १४० ॥

पितृपूय द्विजा सर्वे भोजिता पाण्डुनन्दन ।

आशीर्वादास्तत पुण्यान्दत्त्वा विप्रा ययु पुन ॥ १४१ ॥

तदा प्रभृति तत्तीर्थं व्यासाख्य प्रोच्यत बुधै ॥ १४२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

व्यासतीर्थस्य यत्पुण्य तत्सर्वं कथयस्व मे ।

स्नानदानविधान च यस्मिन्काले महाफलम् ॥ १४३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामिसमस्तंतेभ्रातृभिःसहपाण्डव। कार्त्तिकस्यसितेपक्षेचतुर्दश्यांजितेन्द्रियः
उपोष्य यो नरो भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम्।
स्नापयेदीश्वरं भक्त्या क्षौद्रक्षीरेण सर्पिषा ॥ १४५ ॥
दध्ना च खण्डयुक्तेन कुशतोयेन वै पुनः। श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्ठयेत्परमेश्वरम्
ततः सुगन्धकुसुमैर्बिल्वपत्रैश्च पूजयेत्। मुचुकुन्देन कुन्देन कुशजातीप्रसूनकैः॥
उन्मत्तमुनिपुष्पैश्च तथान्यैः कालसम्भवैः। अर्चयेत्परयाभक्त्या द्वीपेश्वरमनुत्तमम्
इक्षुगडुकदानेन तुष्यते परमेश्वरः। गडुकाष्टकदानेन पातकं यात्यहोर्जितम्॥ १४६
मासार्जितं च नश्येत गडुकाष्टशतेन च। षाण्मासिकं सहस्रेण द्विगुणैरब्दिकंतथा
आजन्मजनितं पापमयुतेन प्रणश्यति। द्विगुणैर्नश्यतेव्याधिस्त्रिगुणैःस्याद्धनागमः
षड्गुणैर्जायते वाग्मी सिद्धस्तद्द्विगुणैस्तथा।
रुद्रत्वं दशलक्षैश्च जायते नाऽत्र संशयः ॥ १५२ ॥
पौर्णमास्यां नृपश्रेष्ठ! स्नानं कुर्वीतभक्तितः। मन्त्रोक्तेन विधानेनसर्वपापक्षयङ्करम्
वारुणंच तथाग्नेयंब्राह्मयं चैवाक्षयङ्करम्। देवान्पितॄन्मनुष्यांश्चविधिवत्तर्पयेद्बुधः
ऋचा ऋग्वेदजं पुण्यं साम्ना सामफलं लभेत्।
यजुर्वेदस्य यजुषा गायत्र्या सर्वमाप्नुयात् ॥ १५५ ॥
अक्षरं च जपेन्मन्त्रं सौरं वा शिवदैवतम्। अथवावैष्णवंमन्त्रंद्वादशाक्षरसञ्ज्ञितम्
पूजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान्।
स्वदारनिरतान्विप्रान्दम्भलोभविवर्जितान्॥ १५७ ॥
भिन्नवृत्तिकरान्पापान्पतितांञ्छूद्रसेवनान्।
शूद्रीग्रहणसंयुक्तान्वृषली यस्य मन्दिरे॥ १५८ ॥
परोक्षवादिनो दुष्टान्गुरुनिन्दापरायणान्। वेदद्वेषणशीलांश्चहैतुकान्बकवृत्तिकान्
ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे दाने सर्वव्रतेषु च। गायत्रीसारमात्रोऽपिवरंविप्रःसुयन्त्रितः
नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी। ईदृशान्पूजयेद्विप्रानन्नदानहिरण्यतः

न तेषां जायते शोको न हानिर्न च दुष्कृतम् । प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गं सिद्धेश्वरं ततः

यत्र सिद्धो महाभागा व्यासः सत्यवतीसुतः ।
अस्यैव पूजनात्सिद्धो धारासर्पो महामतिः ॥ १७८ ॥
तत्र तीर्थे तु यो राजन्प्राणत्यागं करोति च ।
सूर्यलोकमसौ भित्त्वा प्रयाति शिवसन्निधौ ॥ १७९ ॥
समाःसहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश ।
महाहवे षष्टिरशीति गोग्रहे ह्यनाशके भारत! चाक्षया गतिः ॥ १८० ॥

पिता पितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः । वायुभूतं निरीक्षन्ते ह्यागच्छन्तंस्वगोत्रजम्

अस्मद्गोत्रेऽस्ति कः पुत्रो यो नो दद्यात्तिलोदकम् ।
कार्त्तिक्यां च विशेषेण वैशाख्यां वा तथैव च ॥ १८२ ॥
स्वर्गतिं च प्रयास्यामस्तत्र तीर्थोपसेवनात् ।
एतत्ते कथितं सर्वं द्वीपेश्वरमनुत्तमम् ॥ १८३ ॥
यः पठेत्परया भक्त्या शृणुयात्तद्गतो नृप ! ।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मोदते शिवमन्दिरे ॥ १८४ ॥

ऊपरं सर्वतीर्थानां निर्मितं मुनिपुङ्गवैः । कामप्रदं नृपश्रेष्ठ! व्यासतीर्थं न संशयः ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

प्रभासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रप्रभासेश्वरमुत्तमम् । विख्यातंत्रिपुलोकेषुस्वर्गसोपानमुत्तमम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रभासं तात! मे ब्रूहि कथंजातंमहाफलम् । स्वर्गसोपानदं ह्यर्थंसंक्षेपात्कथयाशु मे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दुर्भगा रविपत्नी च प्रभा नामेति विश्रुता ।
तया चाऽऽराधितः शम्भुरुग्रेण तपसा पुरा ॥ ३ ॥

वायुभक्षा स्थिता वर्षंवर्षंध्यानपरायणा । ततस्तुष्टोमहादेवःप्रभायाःपाण्डुनन्दन

ईश्वर उवाच

कस्मात्त्वंक्लिश्यसे बाले! कथ्यतां यद्विवक्षितम् ।
अहं हि भास्करोऽप्येको नानात्वं नैव विद्यते ॥ ५ ॥

प्रभोवाच

मान्यो देवः स्त्रियः शम्भो! विना भर्त्रा कथञ्चिन्प्रभो !।
सगुणो निर्गुणो वाऽपि धनाढ्यो वाऽप्यकिञ्चनः ॥ ६ ॥

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यःस्त्रीणाभर्त्तैव दैवतम् । दुर्भगत्वेनदग्धाहं सर्वामध्येसुरेश्वर
भर्त्तर्यलब्धसौख्यास्मि तेन क्लिश्याम्यहं भृशम् ॥ ७ ॥

ईश्वर उवाच

वल्लभा भास्करस्यैव मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ ८ ॥

पार्वत्युवाच

अप्रमाणं भवद्वाक्यं भास्करोऽपि करिष्यति ।

वृथा क्लेशो भवेदस्याः प्रभायाः परमेश्वर !॥ ६ ॥
उमावाक्यान्महेशान ध्यातस्तिमिरनाशनः ।
आगतो गगनाद्भानुर्नर्मदोत्तररोधसि ॥ १० ॥

भानुरुवाच

आहूतोऽस्मि कथं देव! ह्यवासुरनिषूदन ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

प्रभां पालय भो भानो! सन्तोषेण परेण हि ॥ १२ ॥

उमोवाच

प्रभायामन्दिरेनित्यंस्थीयतांहिमनाशन । अग्रपत्नीसमस्तानांभार्याणांक्रियतांरवे

भानुरुवाच

एवंदेविकरिष्यामितववाक्यम्वरानने । एतच्छ्रुत्वाप्रभाऽऽहूता प्रत्युवाचमहेश्वरम्

प्रभोवाच

स्वांशेन स्थीयतां देव! मन्मथारे! उमापते !।
एकांशः स्थाप्यतामत्र तीर्थस्योन्मीलनाय च ॥ १५ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयं लिङ्गं स्थापितं तत्र पाण्डव! । प्रभासेशइतिख्यातं सर्वलोकेषुदुर्लभम्
अन्यानि यानि तीर्थानि काले तानि फलन्ति वै ।
प्रभासेशस्तु राजेन्द्र सद्यः कामफलप्रदः ॥ १७ ॥
माघमासे सितपक्षे सप्तम्यां च विशेषतः । अश्वं यः स्पर्शयेत्तत्र यथोक्तब्राह्मणेनृप
इन्द्रत्वं प्राप्यते तेन भास्करस्याऽथवा पदम् ।
स्नात्वा परमया भक्त्या दानं दद्याद् द्विजातये ॥ १६ ॥
गोप्रदातालभेत्स्वर्गंसत्यलोकंवरेश्वर । सर्वाङ्गसुन्दरीं शुभ्रां क्षीरिणींतरुणींशुभाम्
सवत्सां घण्टासंयुक्तां कांस्यपात्रावदोहिनीम् ।
ददते ये नृपश्रेष्ठ! न ते यान्ति यमालयम् ॥ २१ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः

नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालनर्मदादक्षिणे तटे। स्थापितंवासुकीशंतु समस्ताघौघनाशनम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माच्च कारणात्तात रेवाया दक्षिणे तटे।

वासुकीशः स्थापितो वै विस्तराद्वद मे गुरो !॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वं समास्थाय नृत्यं शम्भुश्चकार वै ॥ ३ ॥

श्रमादजायत स्वेदो गङ्गातोयविमिश्रितम्।

पतन्तमुरगोऽश्नाति हरमौलिविनिर्गतम्॥ ४ ॥

मन्दाकिनी ततः क्रुद्धा व्यालस्योपरि भारत !।

प्राप्नुह्यजगरत्वं हि भुजङ्ग क्षुद्रजन्तुकः ॥ ५ ॥

वासुकिरुवाच

अनुग्राह्योऽस्मिते पापोदुर्नयोऽहंहराद्गते। त्रैलोक्यपावनीपुण्यासरित्त्वंशुभलक्षणा
संसारच्छेदनकरीह्यार्त्तानामार्त्तिनाशनी। स्वर्गद्वारेस्थितात्वंहिदयांकुरुमयीश्वरि

गङ्गोवाच

कुरुष्व विपुलं विन्ध्यं तपस्त्वं शङ्करं प्रति।

ततः प्राप्स्यसि स्वं स्थानं पन्नगत्वं ममाज्ञया ॥ ८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोऽसौ त्वरितो विन्ध्यं नागो गत्वा नगं शुभम्।

तपस्तप्तुं समारेभे शङ्कराराधनोद्यतः ॥ ६ ॥

नित्यं दध्यौ महादेवं त्र्यक्षं शशिकलाचितम् । ततो वर्षशतेपूर्णे उपरुद्धो जगद्गुरुः ॥
आगतस्तत्समीपं तु श्लक्ष्णां वाणीमुदाहरत् ॥ १० ॥
वरं वरय मे वत्स पन्नग त्वं कृपाकर ॥ ११ ॥

वासुकिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दास्यसि शङ्कर । प्रसादात्तव देवेश भूयान्निष्पापनामम
तीर्थं चास्मिन्समाख्याहि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच

पन्नगत्वमहापापादोरैर्वागच्छशुभङ्करीम् । याम्येतस्यास्तटे पुण्ये स्नानं कुरु यथाविधि
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो वासुकिस्त्वरयान्वितः । रूपेणाऽजगरेणैव प्रविष्टो नर्मदाजलम्
मार्गेण तस्य सञ्जाता जाह्नव्या स्रोत उत्तमम् ।
निर्धूतकल्मषः सर्प सञ्जातो नर्मदाजले ॥ १५ ॥
स्थापितः शङ्करस्तत्र नर्मदायां युधिष्ठिर । ततो नागेश्वरं लिङ्गं प्रसिद्धं पापनाशनम्
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां स्नापयेन्मधुना शिवम् ।
विमुक्तकल्मषः सद्यो जायते नात्र संशयः ॥ १७ ॥
अपुत्रा ये नराः पार्थ स्नानं कुर्वन्ति सङ्गमे ।
ते लभन्ते सुताञ्छ्रेष्ठान्पार्थवीर्योपमाञ्छुभान् ॥ १८ ॥
श्राद्धं तत्रैव यः कुर्यादुपवासपरायणः । कुलं प्रमोचयेत्प्रेतान्नरकात्पाण्डुनन्दन ॥ १९
सर्पाणां च भयं घोरं ज्ञातिवर्गे न जायते । निर्दोषं नन्दते तस्य कुलं नागप्रसादतः
एतत्ते सर्वमाख्यातं तव स्नेहान्नृपोत्तम ॥ २० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः

मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमरोचनम्। मार्कण्डेशमिति ख्यातं नर्मदादक्षिणेतटे

उत्तमं सर्वतीर्थानां गीर्व्वाणैर्वन्दितं शिवम्।
गुह्याद् गुह्यतरं पुत्र! नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ २ ॥

स्थापितं तु मया पूर्वं स्वर्गसोपानसन्निभम्।
ज्ञानं तत्रैव मे जातं प्रसादाच्छङ्करस्य च ॥ ३ ॥

अन्यस्तत्रैव यो गत्वा द्रुपदामन्तर्जलेजपेत्। स पातकैरशेषैश्च मुच्यतेपाण्डुनन्दन

वाचिकैर्मानसैश्चैव कर्मजैरपि पातकैः।
पिण्डिकां चाप्यवष्टभ्य याम्यामाशां च संस्थितः ॥ ५ ॥

योजयेच्छूलिनंभक्त्याद्वात्रिंशद्बहुरूपिणम्। देहपातेशिवं गच्छेदितिमेनिश्चयोनृप
आज्येनबोधयेद्दीपमष्टम्यांनिशिभारत। स्वर्गलोकमवाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत्
श्राद्धं तत्रैवयोभक्त्याकुर्व्वीतनृपनन्दन। पितरस्तस्यतृप्यन्तियावदाभूतसम्प्लवम्
इङ्गुदैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतेनजलेन वा। तर्प्पयेत्तत्र यो वंश्यानाप्नुयाज्जन्मनः फलम्॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यत
सङ्कर्षणमितिख्यात पृथिव्या पापनाशनम् । तपश्चीर्णं पुरा राजन्बलभद्रेणतत्र वै
गीर्वाणा अपि तत्रैव सन्निधीकृपनन्दन ‍‍। उमयामहित शम्भु स्थितस्तत्रैवकेशवः
बलभद्रेणराजेन्द्रप्राणिनामुपकारत । स्थापित परया भक्त्या शङ्कर पापनाशन

यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रिय ।
एकादश्या सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥
श्राद्ध तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।
स याति परम स्थान बलभद्रवचो यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेश ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्राद्धरो राजन्यमलोकनपश्यति
अनपत्या या च नारी श्रायाद्वैपाण्डुनन्दन । पुत्रसाल्मतेपार्थ सत्यसन्धद्दृढव्रतम्

तत्र स्नात्वा नरोराजञ्छुचि प्रयतमानस ।

१ १

उपोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥

कामिकंतीर्थराजंतु तादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रंकुरुतेराजन् स गोलक्षफलंलभेत्
तत्र नृत्यं प्रकर्त्तव्यं तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्घोषै रात्रौ जागरणेन च ॥

एरण्ड्यां च महादेवो दृष्टोमे मन्मथेश्वरः ।
किं समर्था यमो रुष्टो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥
कामेन स्थापितः शम्भुरेतस्मात्कामदो नृप !।
सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥

विशेषश्चात्रसन्ध्यायांश्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेनराजेन्द्र !कीर्त्तितंफलमुत्तमम्

एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या तु भारत !।
पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ६ ॥

गोदानं पाण्डवश्रेष्ठत्रयोदश्यांप्रकारयेत् । चैत्रेमासिसितेपक्षे तत्रगत्वाजितेन्द्रियः

रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !।
दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥
स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकाधिकशततमोऽध्याय·

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यक्षवाटस्य मध्यत
सङ्कर्षणमिति ख्यातं पृथिव्यां पापनाशनम् । तपश्चीर्णं पुरा राजन्बलभद्रेण तत्र वै
गोपिका अपि तत्रैव सन्निधौ नृपनन्दन । उमयासहित शम्भु स्थितस्तत्रैव केशव
बलभद्रेण राजेन्द्र भामिनासुपकारत । स्थापित परया भक्त्या शङ्कर पापनाशन

यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रिय ।
एकादश्यां सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥
श्राद्ध तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।
स याति परम स्थान बलभद्रवचो यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेश ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्राच्चरो राजन्यमलोकं न पश्यति
अनपत्या या च नारी स्नायाद्देवं पाण्डुनन्दन । पुत्रसालभते पार्थ सत्यसन्धं दृढव्रतम्

तत्र स्नात्वा नरो राजञ्छुचि प्रयतमानस ।

उपोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥
कामेश्वरंतीर्थराजं तु नादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रं कुरुते राजन् स गोलक्षफलं लभेत्
तत्र नृत्यं प्रकर्त्तव्यं तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्घोषैः रात्रौ जागरणेन च ॥
एतस्यां च महादेवो दृष्टोऽसि मन्मथेश्वरः ।
किं समर्था यमो दुष्टो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥
कामेन स्थापितः शम्भुस्तस्मात्कामदो नृप !।
सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥
विशेषश्चात्र सन्ध्यायां श्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेन राजेन्द्र !कीर्त्तितं फलमुत्तमम्
एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या तु भारत !।
पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ९ ॥
गोदानं पाण्डवश्रेष्ठ तस्यां प्रकारयेत् । चैत्रमासि सिते पक्षे तत्र गत्वा जितेन्द्रियः
रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !।
दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥
स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

— —

एकाधिकशततमोऽध्यायः

मण्डूरफलतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यमपादस्य मध्यतः
मण्डूरफलमिति ख्यातं पृथिव्यां पापनाशनम् । तपर्षीणां पुरा राजन्मण्डूकेनात्र यै
गीयाणां अपि तत्रैव सन्निधौ नृपनन्दन । उमया सहितः शम्भुः स्थितस्तत्रैव केशव
यन्मण्डूरफलं सर्वप्राणिनामुपकारम् । स्नापयित्वा परया भक्त्या शङ्करं पापनाशनम्

यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
एकादश्यां सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥
श्राद्धं तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।
स याति परमं स्थानं यत्र ब्रह्मादयो यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मण्डूरफलतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेशं ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्रान्नरो राजन्यमलोकं न पश्यति
अनपत्या या च नारी स्नायाद्वै पाण्डुनन्दन । पुत्रमाप्नोति सा पार्थ सत्यमेतन्मयोदितम्
तत्र स्नात्वा नरो राजञ्छुचिः प्रयतमानसः ।

पतन्तं रक्षयेद्विप्र महापातकिनं यदि। महाघोरे गता वापि दुष्कर्मपितामहाः ॥
तद्रन्ति सुपुत्राश्च वैतरण्यां गतानपि।
पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेण परमा गतिः ॥ १४ ॥
अथ पुत्रस्य पौत्रेण प्रगच्छेद् ब्रह्म शाश्वतम्।
नास्ति पुत्रसमो बन्धुरिह लोके परत्र च ॥ १५ ॥
अहश्चमध्यरात्रे च चिन्तयानस्यसर्वदा। शुष्यन्तिममगात्राणि ग्रीष्मेनक्षुद्रकंयथा

अनसूयोवाच

यत्त्वया शोचितं विप्र! तत्सर्वं शोधयाम्यहम्।
तवोद्वेगकरं यच्च तन्मे दहति चेतसि ॥ १७ ॥
येन पुत्रा भविष्यन्ति आयुष्मन्तो गुणान्विताः।
तत्कार्यं च समीक्षस्व येन तुष्येत्प्रजापतिः ॥ १८ ॥

अत्रिरुवाच

तपस्तप्तं मया भद्रे जातमात्रेण दुष्करम्। व्रतोपवासनियमैः शाकाहारेणसुन्दरि
क्षीणदेहस्तु तिष्ठामि ह्यशक्तोऽहंमहाव्रते। तेन शोचामिचात्मानंरहस्यंकथितंमया

अनसूयोवाच

भर्तुः पतिव्रतानारीरतिपुत्रविवर्धिनी। त्रिवर्गसाधनासाच श्लाघ्याचविदुषांजने
जपस्तपस्तीर्थयात्रा मृडेज्यामन्त्रसाधनम्।
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ २२ ॥
ईदृशं तु महादोषं स्त्रीणां तु व्रतसाधने। वदन्ति मुनयः सर्वे यथोक्तं वेदभाषितम्
अनुज्ञाता त्वया ब्रह्मंस्तपस्तप्स्यामि दुष्करम्।
पुत्रार्थित्वं समुद्दिश्य तोषयामि सुरोत्तमान् ॥ २४ ॥

अत्रिरुवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि। आज्ञाता त्वं महाभद्रेपुत्रार्थंतपआश्रय
देवतानां मनुष्याणां पितृणामनृणोभवे। नभार्यासदृशो बन्धुस्त्रिपुलोकेषुविद्यते

तेन देवाः प्रशंसन्ति न भार्यासदृशं सुखम् ।
सम्मुखे सम्मुखाः पुत्राः विलोमे तु पराङ्मुखाः ॥ २७ ॥
तेन भार्यां प्रशंसन्ति सदेवासुरमानुषाः । महावने महाघोरे सन्त्यजसि शुभेक्षणे
मयान्यस्य शीघ्रं त्वं पुत्रार्थं तु ममाज्ञया ।
एतद्वाक्यावसाने तु भार्याङ्ग प्रणताऽब्रवीत् ॥ २९ ॥
त्वत्प्रसादेन विप्रेन्द्र सर्वान्कामानवाप्नुयाम् ।
इमांल्लोकानि मा च मृगाक्षी वरवर्णिनी ॥ ३० ॥
नियमस्था ततो भूत्वा सम्प्राप्ता नर्मदां नदीम् ।
शिवस्यैवोद्भवां देवीं सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ३१ ॥
यस्याश्च दर्शनमात्रेण नश्यते पापसञ्चयः । स्नानमात्रेण वै यस्या अश्वमेधफलं लभेत्
ये पिबन्ति महादेवि ! श्रद्दधाना पयः स्वयम् ।
स्नानपानेन तत्तुल्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥
ये स्मरन्ति विचारार्ता यात्रायां नानागतैरपि । मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं प्रयान्ति ते
नर्मदायाः समीपेषु तावुभौ यावनङ्घ्ये । न पश्यन्ति यमं तत्र ये मृगायतवर्णिनि
ततस्तत्तुरग कूले एरण्ड्याः सङ्गमे शुभे ।
नियमस्था विशालाक्षी शाकाहारेण सुन्दरि ! ॥ ३६ ॥
नापयन्ती शीघ्रं देवाऽस्मिन् स्तोत्रैर्व्रतैस्तथा ।
ग्रीष्मेषु च महादेवि ! पञ्चाग्निं साधयेत्सदा ॥ ३७ ॥
वर्षाकाले ह्याद्रवासाश्चीर्णचान्द्रायणानि च ।
हेमन्ते तु ततः प्राप्ते तोयमध्ये वसेत्सदा ॥ ३८ ॥
प्रातःस्नानं ततः सन्ध्यां कुशाद्भिर्पितृतर्पणम् । देवानामर्चनं कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि
यजते वैन्दवांल्लोकान्ध्यानजाप्यहुतेन च । एवं वर्षशते प्राप्ते रुद्रविष्णुपितामहाः
सम्प्राप्ता द्विजरूपेण तु वेरण्ड्याः सङ्गमे प्रिये ! ।
पुनः संस्थितास्तस्या वेदमन्त्रमुदीरन्ति च ॥ ४१ ॥

अनसूया जपं त्यक्त्वा निरीक्ष्य तान्मुहुर्मुहुः ।
उत्थिता सा विशालाक्षी अर्घं दत्त्वा यथाविधि ॥ ४० ॥
अद्य में सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । दर्शनेन तु विप्राणां सर्वपापैः प्रमुच्यते
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणताऽब्रवीत् ।
कन्दमूलफलं शाकं नीवारानपि पावनान् ।
प्रयच्छाम्यहमद्यैव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ४४ ॥

विप्रा ऊचुः

तपसा तु विचित्रेण तपःसत्येनसुव्रते । तृप्ताः स्म सर्वकामैस्तु सुव्रते तवदर्शनात्
अस्माकंकौतुकं जातंतापसेनव्रतेनय ३ । स्वर्गमोक्षसुतस्याऽर्थेतपस्तपसिदुष्करम्

अनसूयोवाच

तपसा सिध्यतेस्वर्गस्तपसापरमागतिः । तपसाचार्थकामौचतपसागुणवान्सुतः
तप एव च मे विप्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४७ ॥

विप्रा ऊचुः

तन्वी श्यामा विशालाक्षी स्निग्धाङ्गी रूपसंयुता ।
हंसलीलागतिगमा त्वं च सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४८ ॥
किं च ते तपसा कार्यमात्मानं शोच्यसे कथम् ॥ ४६ ॥

अनसूयोवाच

यदिरुद्रश्च विष्णुश्च स्वयंसाक्षात्पितामहः । गूढरूपधराः सर्वे तच्चिह्नमुपलक्षये ॥
तस्या वाक्यावसाने तु स्वरूपं दर्शयन्ति ते ।
स्वस्वरूपैः स्थिता देवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ५१ ॥
चतुर्भुजो महादेवि! शङ्खचक्रगदाधरः । अतसीपुष्पवर्णस्तु पीतवासा जनार्द्दनः
गरुत्मान्वाहनं यस्यश्रियाचसहितोहरिः । प्रसन्नवदनःश्रीमान्स्वयंरूपोव्यवस्थितः
पीतवासा महादेवि! चतुर्वदनपङ्कजः । हंसोपरि समारूढो ह्यक्षमालाकरोद्यतः ॥
आगतो नर्मदातीरे ब्रह्मा लोकपितामहः ।

योऽसौ सर्वजगद्व्यापी स्वयं साक्षान्महेश्वरः ॥ ५५ ॥
वृषभ ॥ समारूढोदशबाहुसमन्वितः । भस्माङ्गरागशोभाढ्यः पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः
जटामुकुटसंयुक्तः कृतचन्द्रार्धशेखरः । एवंरूपधरो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ॥ ५७
अनसूया निरीक्ष्यैतान्देवानां दर्शनं परम् । वेपमाना ततः साध्वीसुरान्दृष्ट्वा मुहुर्मुहुः
अनसूयोवाच
किंत्वापारस्वरूपास्तु विष्णुरुद्रपितामहाः । एतद्वेदितुमिच्छामि ह्यशरब्दयं तु मे
ब्रह्मोवाच
आवुफा गोप्ता ब्रह्मा आपश्चेव प्रकीर्तिता । मेघरूपो ह्यहं प्रोक्तोयथयामि च भूतले
अहं सर्वाणि बीजानि प्राकम्पव्यापृदिते रवौ ।
एतद्वै कारणं सर्वं रहस्यं कथितं परम् ॥ ६१ ॥
विष्णुरुवाच
हेमन्तश्च भवेद्विष्णुर्विश्वरूपधराधरम् । पालनाय ततस्सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्
रुद्र उवाच
ग्रीष्मकालोह्यहं प्रोक्तः सर्वभूतक्षयङ्करः । कथयामि च तत्सर्वं रुद्ररूपस्तपस्विनि
एवं ब्रह्मा च विष्णुश्चरुद्रश्चैवमहाव्रते । त्रयोदेवास्त्रयः सन्ध्यास्त्रयः कालास्त्रयोऽग्नयः
तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैकात्मतां गतः ।
वरोऽस्तु ते भद्रे यस्त्वया मनसेप्सितम् ॥ ६० ॥
अनुसूयोवाच
धन्या पुण्या ह्यहं लोके श्लाघ्या धन्या च सर्वदा ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रसन्नवदना शुभा ॥ ६ ॥
यदि तुष्टास्त्रयो देवा दया कृत्वा ममोपरि ।
अस्मिंस्तीर्थे तु सान्निध्याद्भवतां भवतु मे सदा ॥ ६७ ॥
रुद्र उवाच
एवं भवतु ते वाक्यं यत्त्वयाप्रार्थितं शुभे । त्र्यम्बकावैष्णवीमायाएरण्डीनामनामतः

यस्यादर्शनमात्रेण नश्यतेपापसञ्चयः। चैत्रमासे तु सम्प्राप्तेअहोरात्रोषितो भवेत्
एरण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रभाते भोजयेद् द्विजान् ॥ ७० ॥
यथोक्तेनविधानेनपिण्डंदद्याद्यथाविधि। प्रदक्षिणां ततो दद्याद्धिरण्यं वस्त्रमेव च
रजतं च तथा गावो भूमिदानमथाऽपिवा।
सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमिति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ७२ ॥
ये म्रियन्ति नरा देवि! एरण्ड्याः सङ्गमे शुभे। यावद्युगसहस्रंतु रुद्रलोकेवसन्ति ते
अहोरात्रोषितो भूत्वा जपेद्रुद्रांश्च वैदिकान्।
एकादशैकसञ्ज्ञांश्च स याति परमां गतिम् ॥ ७४ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
पुत्रार्थी लभते पुत्राँल्लभेत्कामान्यथेप्सितान् ॥ ७५ ॥
एरण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा रेवाया विमले जले।
महापातकिनो वाऽपि ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ७६ ॥

अनसूयोवाच

यदितुष्टास्त्रयोदेवा मम भक्तिप्रचोदिताः। मम पुत्रा भवन्त्वेव हरिरुद्रपितामहाः

विष्णुरुवाच

पूज्या यत्पुत्रतां यान्ति न कदाचिच्छ्रुतं मया।
शुभे ददामि पुत्रांस्ते देवतुल्यपराक्रमान्। रूपवन्तो गुणोपेतान्यज्विनश्चबहुश्रुतान्

अनसूयोवाच

ईप्सितंतच्च दातव्यं यन्मया प्रार्थितंहरे!। नान्यथाचैव कर्त्तव्याममपुत्रैषणा तु या

विष्णुरुवाच

पूर्वं तु भृगुसम्वादे गर्भवासउपार्जितः।। तस्याहं नैवपारंतु नैव पश्यामि शोभने
स्मरमाणः पुरावृत्तं चिन्तयामि पुनः पुनः। एवंसञ्चिन्त्यतेदेवाः पितामहमहेश्वराः
अयोनिजाभविष्यामस्तव पुत्रा वरानने!। योनिवासेमहाप्राज्ञिदेवानैवव्रजन्तिच

सान्निध्यात्सङ्गमे देवि लोकानां तु वरप्रदा ।
वरण्डी वैष्णवी माया प्रत्यक्षा त्वं भविष्यसि ॥ ८३ ॥
त्रयो देवा स्थिता पार्थ रेवाया उत्तरे तटे ।
वरप्राप्ता तु सा देवी गता माहेन्द्रपर्वतम् ॥ ८४ ॥

क्षीणाङ्गीशुष्कदेहा च रूक्षकेशा सुदारुणा । कृतयज्ञोपवीतासातपोनिष्ठाशुभेक्षण

शिलातलनिषण्णोऽसौ दृष्ट कान्तो महायशा ।
दृष्ट्वर्षिसोऽमथदेवि उत्तिष्ठोत्तिष्ठ साऽऽब्रवीत् ॥ ८६ ॥

अत्रिरुवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे ह्यनसूये महाव्रते ।
अचिन्त्य गालवादीनां वर प्राप्ताऽसि दुर्लभम् ॥ ८७ ॥

अनसूयोवाच

त्वत्प्रसादेनदेवर्षे वरप्राप्तास्मिदुर्लभम् । तेनदेवाः प्रशसन्ति सिद्धाश्चऋषयोऽमला
एवमुक्ता तु सा देवी हर्षेण महता युता । आलोकयेतत कान्तेनाऽपि शुभदर्शना
ईक्षणाच्चैव सभात ललाटे मण्डल शुभम् । नवयोजनसाहस्रमण्डलरश्मिभिवृतम
कदम्बगोलकाकारंत्रिगुण परिमण्डलम् । तस्यमध्ये तु देवेशि पुरुषोदिव्यरूपधृक्
हेमवर्णोऽमृतमय सूर्यकोटिसमप्रभ । आद्य पुत्रोऽनुसूयाया स्वयंसाक्षात्पितामह

चन्द्रमा इतिविख्यात सोमरूपो नृपात्मज ।
इष्टापूर्त च सम्पाति कलाषोडशकेन ॥ ९३ ॥
प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया च महेश्वरि ।
चतुर्थी पञ्चमी चैव अव्यया षोडशी कला ॥ ९४ ॥
चतुर्विधस्य लोकस्य सूक्ष्मो भूत्वा वरानने ।
आप्रीणाति जगत्सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ ९५ ॥

सर्वे ते हृत पजीवन्ति हुत दत्त शशिस्थितम् । वनस्पतिगतेसोमे वनवाश्च वरानने
गुञ्जपरगृहे मृदो दहेद्दृष्कृत शुभम् । वनस्पतिगते सोमे यस्तु छिन्द्याद्वनस्पतीन्

तेन पापेन देवेशि! नरा यान्ति यमालयम् ॥ ९७ ॥

वनस्पतिगते सोमे मैथुनं यो निषेवते । ब्रह्महत्यासमं पापं लभते नाऽत्र संशयः ॥

वनस्पतिगते सोमे मन्थानं योऽधिवाहयेत् ।

गावस्तस्य प्रणश्यन्ति याश्च वै पूर्वसञ्चिताः ॥ ९९ ॥

वनस्पतिगते सोमे ह्यध्वानं योऽधिगच्छति ।

भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं रेणुभोजनाः ॥ १०० ॥

अमावास्यां महादेवि! यस्तु श्राद्धप्रदो भवेत् ।

अब्दमेकं विशालाक्षि! तृप्तास्तत्पितरो ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

हिरण्यं रजतं वस्त्रं यो ददाति द्विजातिषु । सर्वलक्षगुणं देवि लभते नाऽत्रसंशयः

एवं गुणविशिष्टोऽसौ सोमरूपः प्रजापतिः । सञ्जातःप्रथमःपुत्रो ह्यनसूयासुनन्दनः

द्वितीयस्तुमहादेविदुर्वासानामनामतः । सृष्टिसंहारकर्त्ता च स्वयंसाक्षान्महेश्वरः

अग्निमध्यगतोदेवितपस्तपतिदुष्करम् । सोऽपि रुद्रत्वमायातिसम्प्राप्तेभूतविप्लवे

इन्द्रोऽपि शप्तस्तेनैव दुर्वाससा वरानने !।

द्वितीयस्य तु पुत्रस्य सम्भवः कथितो मया ॥ १०६ ॥

दत्तात्रेयस्वरूपेण भगवान्मधुसूदनः । जयद्व्यापी जगन्नाथः स्वयंसाक्षाज्जनार्द्दनः

एते देवास्त्रयः पुत्रा अनसूयाया महेश्वरि । वरदानेन ते देवा ह्यवतीर्णा महीतले

पुत्रप्राप्तिकरंतीर्थं रेवायाश्चोत्तरे तटे । अनसूयाकृतं पार्थ ! सर्वपापक्षयं परम् ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्नर्मदायां पुरातनम् ।

भ्रूणहत्या गतास्तत्र ब्राह्मणस्य नराधिप !॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

इतिहासं द्विजश्रेष्ठ कथयस्व ममाऽनघ । सर्वपापहरंलोके दुःखार्त्तस्यचकथ्यताम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सुवर्णशिलके ग्रामे गौतमान्वयसम्भवः । कपीवलो महादेवि! भार्यापुत्रसमन्वितः

यमने तत्र गोविन्द सञ्जातो पितुः कुले । पुत्रदारसमोपेतो गृहक्षेत्ररतः सदा ॥
शकटं पूरयित्वा तु काष्ठानामगमद् गृहम् ।
प्रक्षिप्तानि च काष्ठानि ह्येकाकी क्षुधयाऽन्वित ॥ ११४ ॥
रिक्तमापन्नस्तदा पुत्र पितुः शब्दात्समागत ।
न दृष्टस्तेन वै पुत्र काष्ठै सञ्छादितोऽपरा ॥ ११५ ॥
आगमन्त्वरितो गेहे पिपासार्त्तो नराधिप ।
शकटं मोच्य मन्द्हारि सपूर्ण रज्जुमयुतम् ॥ ११६ ॥
भार्यातस्यैवपादेनाक्षिप्ता पतयर्तिनी । दृष्ट्वा निपातितपुत्रं काष्ठैर्निर्भिन्नमस्तकः
अन्वेषमाणा करणं निक्षिप्त कोलिका शिशुम् ।
शुश्रूषते रता साध्वी प्रियस्य च नराधिप ॥ ११८ ॥
मन स्नानादिकं कृत्वा भोजनाच्छयन शुभम् ।
पुत्र पुत्रपतो श्रेष्ठा तु स्थापयति सा शनैः ॥ ११९ ॥
यदाप्यतोऽपि सुत पुत्र पश्चात्समागत । तदा सा दीनवदना रुरोद च मुमोह च
नष्टस्त्वया नन्दन शार्दू गोविन्दस्त्रस्तमानस ।
विमलन्दिति श्रोवत्या तु पतितो धरणीतले ॥ १२१ ॥
शायनोसुनवेशौतुभूमीनिपतितोनृप । विलपानेघरा पेन्द्रनिश्वासोच्छ्वासितेनच
... वध्ये ब्राह्मणं पुत्र दृष्ट्वा विदलितमातुरम् । मचारयिष्येहृदयं स्फुटित तव कारणे
स्वच्छ मात्र यशो नियमस्तया कुलसन्ततिम् ।
दृष्ट्वा किमनृणीभूतो यास्यामि परमां गतिम् ॥ १२४ ॥
मम वृद्धस्य क्षान्तस्य गतिस्त्वं किल पुत्रक ।
एते मनोरथा सर्वे चिन्तिता चिरशो मया ॥ १२५ ॥
इमा तु विकला दीना विहीना सुतबान्धवैः ।
रुदन्ती पतिता पाहि मातरं धरणीतले ॥ १२६ ॥
सुत । तेन पुत्र इतिप्रोक्त स्वयमेवस्वयम्भुवा

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्या ह्यबान्धवाः ।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यं दरिद्रता ॥ १२८ ॥

मृगाऽयं वदतेलोकश्चन्दनंकिल शीतलम् । पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादपि शीतलः
श्मश्रुग्रहणक्रीडन्तंधूलिधूसरिताननम् पुण्यहीनानपश्यन्तिनिजोत्सङ्गसमास्थितम्

दिगम्बरं गतव्रीडं जटिलं धूलिधूसरम् ।
पुण्यहीना न पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम् ॥ १३१
वीणावाद्यस्वरो लोके सुस्वरः श्रूयते किल ।
रुदितं बालकस्यैव तस्मादाह्लादकारकम् ॥ १३२ ॥

मृगपक्षिषु काकेषु पशूनां स्वरयोनिषु । पुत्रं तेषु समस्तेषु वल्लभं ब्रुवते बुधाः ॥

मत्स्याश्चप्रकाराश्चैव कूर्मग्राहादयोऽपि वा ।
पुत्रोत्पत्तौ च हृष्यन्ति विपत्तौ यान्ति दुःखिताम् ॥ १३४ ॥

देवगन्धर्वयक्षाश्च हृष्यन्तेपुत्रजन्मनि । पश्चत्वेतेऽपिशोचन्तिमन्दभाग्योऽस्मिपुत्रक
ऋषिमेलापकं चक्रे पुत्रार्थं राघवो नृप । इन्द्रस्थानेस्थितस्तस्यप्रोक्षतेह्यासनंयतः

स्वर्गवासं सुताद्बाह्यं विद्यते न तु पाण्डव ॥
चक्रे दशरथस्तस्मात्पुत्रार्थं यज्ञमुत्तमम् ॥ १३७ ॥
रामोलक्ष्मणशत्रुघ्नौ भरतस्तत्र सम्भवात् ।
कार्त्तवीर्यो जितो येन रामेणाऽमिततेजसा ॥ १३८ ॥

स रामो रामचन्द्रेण अष्टवर्षेण निर्जितः । एकाकिनाहतोवाली प्लवगः शत्रुदुर्जयः
रावणो ब्रह्मपुत्रो यत्त्रैलोक्यं यस्य शङ्कते । हतः स रामचन्द्रेण सपुत्रःसहबान्धवः

एवं पुत्रं विना सौख्यं मर्त्यलोके न विद्यते ।
वंशार्थे मैथुनं यस्य स्वर्गार्थे यस्य भारती ॥ १४१ ॥
मृष्टान्नं ब्राह्मणस्यार्थे स्वर्गे वासं तु यान्ति ते ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां न परं पापपुण्ययोः ॥ १४२ ॥
पुत्रोत्पत्तिविपत्तिभ्यां न परं सुखदुःखयोः ।

किं ब्रवीमीति भो वत्स' न तु सौख्य सुत विना ॥ १४२ ॥

एव बहुविध दुःख प्रलपित्वापुन पुन । जनैश्चाश्वासितोविप्रो बालगृहाद्बहिर्गत
तत संस्कृत्य त बाल विधिदृष्टेनकर्मणा । समवेतोतुदुःखार्त्तोवागतोस्वगृहं पुन
स्वगृहागते विप्रेन्द्रे निर्जाता युधिष्ठिर । भूमौ प्रसुप्तो गोविन्द पुत्रशोकेनपीडित

यावन्निरीक्षते भार्या भर्त्तार तु सुपीडितम् ।
कृमिराशिगत सर्वं गोविन्द समपश्यत ॥ १४७ ॥
दुःखाद् दुःखतरे मग्ना दृष्ट्वा त पातकान्वितम् ।
एव दुःखनिमग्नाया शर्वरी विगता तदा ॥ १४८ ॥
पशुपालस्तु महिषीं मुक्त्वाऽरण्येऽगमद् गृहात् ।
अरण्ये महिषीं सदा रक्षयित्वा गृहागतः ॥ १४९ ॥
विज्ञप्त पशुपालेन गोविन्दो ब्राह्मणोत्तम ।
यावद्दोह्याम्यह स्वामिन्महिषीस्तनं च रक्ष से ॥ १५० ॥

तत सत्वरितोविप्रोगत्वाममहिषी प्रति । ततश्चमहिषीपश्येत्पश्चात्क्षेत्राभिसन्मुखम्
धावमानश्च विप्रन्तु परण्डीमद्रुमे गत । तत प्रविष्टस्तुमले रथैरण्डपोस्तुसगमे

तज्जल पीतमात्र तु त्वरया वातितर्षित ।
अकामात्सलिले पीत्वा प्रक्षाल्य नयने शुभे ॥ १५३ ॥

आचगामतत पश्चाद्वनदिवसक्षये । भुक्त्वादन्नान्वितोरात्रौगोविन्दःशयनयौ
निद्राभिभूत शोकेन धर्मेणैवमुखेदित । पुनस्तत्रार्धरात्रे तु तस्य भार्यायुधिष्ठिर

कृमिभिर्वेष्टित गात्र क्वचित्पश्यत्यवेष्टितम् ।
पुन सा विस्मयाऽविष्टा तस्य भार्या गुणान्विता ॥
उवाच दुःखेन तस्य साध्वमाविष्टचेतसा ॥ १५५ ॥

भार्योवाच

अनेनैपश्रमेघाहित्विन्धनक्षिपतस्तुते । गृहपश्चाद्गतावालो ह्यज्ञानाद्वातितस्त्वया

मया तत्पातक घोर रहस्य न प्रकाशितम् ।

तेन प्रच्छन्नपापेन दह्यमाना दिवानिशम् ॥ १५८ ॥
न सुखं तव गात्रस्य पश्यामि न हि चात्मनः ।
निद्रा मम शमं याता रतिश्चैव त्वया सह ॥ १५६ ॥
श्रूयते मानवे शास्त्रे श्लोको गीतो महर्षिभिः ।
स्मृत्वा स्मृत्वा तु तं चित्ते परितापो न शाम्यति ॥ १६० ॥
कीर्त्तनान्नश्यते धर्म्मो वर्धतेऽसौ निगूहनात् ।
इह लोके परे चैव पापस्याऽप्येवमेव च ॥ १६१ ॥
एवं सञ्चित्यमानाऽहं स्थिता रात्रौ भयातुरा ।
कृमिराशिगतं त्वां हि कस्याऽहं कथयामि किम् ॥ १६२ ॥
पुनस्त्वंचाऽद्यमेदृष्टोभ्रूणहत्याकृमिश्रितः । कश्चिद्भिन्दन्तितेगात्रंकश्चिन्नष्टाःसमन्ततः
एतत्संस्मृत्य संस्मृत्य विमृशामि पुनः पुनः ।
न जाने कारणं किञ्चित्पृच्छन्त्याः कथयस्व मे ॥ १६४ ॥
तडागं वा सरिद्वाऽपि तीर्थं वा देवतार्चनम् ।
यं गतोऽसि प्रभावोऽयं तस्य नाऽन्यस्य मे स्थितम् ॥ १६५ ॥
एवमुक्तस्तुविप्रोऽसौकथयामास भारत । भार्याया यद्दिवावृत्तं शङ्कमानोनृपोत्तम
अद्य! महिषीसार्थंएरण्डीसङ्गमं गतः । नाभिमात्रे जले गत्वापीतवान्सलिलंबहु
नान्यत्तीर्थं विजानामि सरितं सर एव वा ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं कथितं तव भामिनि !॥ १६८ ॥
एवं ज्ञात्वा सा सर्वमुपवासकृतक्षणा । सपत्नीको गतस्तत्र सङ्गमे वरवर्णिनि !॥
स्नात्वा तत्र जले रम्ये नत्वा देवं तु भास्करम् ।
स्नापयामास देवेशं शङ्करं चोमया सह ॥ १७० ॥
पञ्चगव्यघृतक्षीरैर्दधिक्षौद्रकृतैर्जलैः । गन्धमाल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्च सुशोभनैः ॥
पूज्यत्रयीमयंलिङ्गं देवींकात्यायनींशुभाम् । रात्रौजागरणंकृत्वापत्यासहपतिव्रता
ततः प्रभाते विमले द्विजान्सम्पूज्य यत्नतः । गोदानेन हिरण्येन वस्त्रेणान्नेन भारत

गोविन्दं पूजयामास स्वशक्त्या ब्राह्मणाञ्छ्रुमान् ।
मुक्तपापो गृहायातः स्वभार्यासहितो नृप ॥ १७५ ॥
एवं यः शृणुते भक्त्या गोविन्दाख्यानमुत्तमम् ।
पठते परया भक्त्या स गच्छति परं पदम् ॥ १७६ ॥
क्रीडते शाङ्कर लोके यावदाभूतसम्प्लवम् । यात्रीयाश्वयुजे मासि कौबेरा नृपसत्त
नमस्या च सिते पक्षे सोपवासो जितेन्द्रिय ॥
सान्निध्ये वामना कृत्वा यो धर्मेश्वरमन्दिरे ॥ १७७ ॥
ध्यायमाना विरूपाक्षं त्रिशूलकरसंस्थितम् ।
चक्रमातुर्गतिहन्तारं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १७८ ॥
पक्षिराजसमारूढं त्रैलोक्यवरदायकम् । पितामहं ततो ध्यायेद्धंसस्थं चतुराननं
सागरं समभ्यर्च्य कमलाकरवासिनम् । योऽर्चयेत् यतते सम्यक् स याति स्थानमुत्तमं
ततः प्रभाते विमले स्नात्वा नराधिप । ब्राह्मणान्पूजयेद्भक्त्या सर्वदोषविवर्जितान्
सपादयवसम्पूर्णान्स्वशास्त्रविशारदान् ।
यज्ञाध्ययनसंयुक्तान्स्वदारनिरतान्सदा ॥ १८२ ॥
श्राद्धदानैस्तैः सम्यग्ब्राह्मणान्पाण्डुनन्दन । प्रेतानां पूजनं तत्र देवपूर्वं समारभेत्
प्रत्यग्रान्मुख्यान शोभनैरण्या पिण्डतर्पणे ।
दानानि तत्र देयानि दानमुख्यानि सर्वदा ॥ १८४ ॥
हिरण्यभूमिकन्याश्च धेनवो शुभलक्षणाः ।
वारिण महिषी पार्थ धान्यं द्रोणकसंख्यया ॥ १८५ ॥
अलङ्कृता सवत्सा च क्षीरिणी तरुणी सिताम् ।
रक्ता वा कृष्णवर्णा वा पाटला कपिला तथा ॥ १८६ ॥
कांस्यदोहनसंयुक्ता रुक्मखुरविभूषणाम् ।
स्वर्णशृङ्गीं सवत्सां च ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १८७ ॥
प्रीयतां मे जगन्नाथो हरकृष्णपितामहाः । संसाररक्षणार्थं देवी सुरभी मां समुद्धरेत्

पुत्रार्थं याः स्त्रियःपार्थ! ह्येरण्डीसङ्गमे नृप। स्नाप्यन्तेरुद्रसूक्तैश्चचतुर्वेदोद्भवैस्तथा

चतुर्भिर्ब्राह्मणैःशस्तं ह्याभ्यां योग्यैश्च कारयेत्।

एकेन सार्द्रकुम्भेन दाम्पत्यमभिषेचयेत्॥ १६०॥

देवज्ञेनैव चैकेन अथवा सामगेन वा। पञ्चरत्नसमायुक्तं कुम्भे तत्रैव कारयेत्॥

गन्धतोयसमायुक्तं सर्वौषधिविमिश्रितम्। आम्रपल्लवसंयुक्तमश्वत्थमधुकं तथा

गुण्ठितं सितवस्त्रेणसितचन्दनचर्चितम्। सितपुष्पैस्तुसंछन्नंसिद्धार्थकृतमध्यमम्

कांस्यपात्रे तु संस्थाप्य पुत्रार्थी देशिकोत्तमः।

अङ्गलग्नं तु तद्वस्त्रं कटकाभरणं तथा॥ १६४॥

तत्सर्वं मण्डले त्याज्यं सिद्ध्यर्थं चात्मनस्तदा।

प्रणम्य भास्करं पश्चादाचार्यं रुद्ररूपिणम्॥ १६५॥

मधुरं च ततोऽश्नीयाद्देव्याभुवनउत्तमे। फलदानं च विप्राय छत्रं ताम्बूलमेव च

उपानहौ च यानंचसभवेद्दुःखवर्जितः। भास्करे क्रीडतेलोकेयावदाभूतसम्प्लवम्

दानं कोटिगुणं सर्वं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।

यथानदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति सङ्क्षयम्॥ १६८॥

एवं पापानिनश्यन्तिह्येरण्डीसङ्गमेनृणाम्। समन्ताच्छस्त्रपातेनह्येरण्डीसङ्गमेनृप

भ्रूणहत्यासमं पापं नश्यते शङ्करोऽब्रवीत्।

प्राणत्यागं च यो भक्त्या जातवेदसि कारयेत्॥ २००॥

अनाशकं नृपश्रेष्ठ! जले वा तदनन्तरम्। पञ्चसाहस्रिकं मानं वर्षाणां जातवेदसि

जलेत्रीणिसहस्राण्यनाशकेषष्टिभुञ्जते। काकावकाःकपोताश्चह्युलूकाःपशवस्तथा

सङ्गमोदकसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम्।

वृक्षाश्च तत्पदं ज्ञात्वा यां गतिं यान्ति योगिनः॥ २०३॥

एरण्डिका मया देवी दृष्टो मे मन्मथेश्वरः। किंसमर्थोयमोरुष्टोभद्रोभद्राणिपश्यति

मृत्तिकां सङ्गमोद्भूतां ये च गुण्ठन्ति नित्यशः।

भ्रूणहत्यादि पापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशयः॥ २०५॥

ततः स्वर्गावतीर्णस्तु जायते विशदे कुले ।
धनधान्यसमोपेतः पुनः स्मरति तज्जलम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

करञ्जाख्ये ततो गच्छेत्सोपवासो जितेन्द्रियः ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

अर्चयित्वामहादेवंदत्त्वादानंतुभक्तितः । सुवर्णंरजतंवाऽपि मणिमौक्तिकविद्रुमान्
पादुकोपानहौ छत्रं शय्यां प्रावरणानि च । कोटिकोटिगुणंसर्वंजायतेनात्रसंशयः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेकरञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम् । सौभाग्यकरणंदिव्यं नरनारीमनोरमम्
तत्रयादुर्भगानारीनरोवा नृपसत्तम । स्नात्वाऽर्चयेदुमारुद्रौसौभाग्यंतस्यजायते
तृतीयायामहोरात्रं सोपवासो जितेन्द्रियः ।

तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥ ३५ ॥

दिवास्वप्ने त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतत्रयम् । एकान्ते मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च
प्रत्यक्षलवणे प्रोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ ३६ ॥

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम् । तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तद्ध्यानपरमो भवेत्
यद्ब्रह्मपरमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् । योऽन्तरापरमं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः
एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः । तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम् ॥

यस्मान्महीयसो देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंस्थिते ।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ४० ॥

नान्यं देवं महादेवाद्व्यतिरिक्तं प्रपश्यति । तमेवात्मानमात्मेति यः स याति परमं पदम्
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः ॥ ४२ ॥

एकमेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम् । स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बाध्यते ।
तस्माद्यतेत नियतं यतिः संयतमानसः । ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ।
एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः । पितामहेन विभुना मुनीनां पूर्वमीरितम्
नाऽस्य शिष्यस्य यागिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम् ।
ज्ञानं स्वयम्भुवा प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम् ॥ ४५ ॥

इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं पशुपतिपरितोषे यद्भवेदेकहेतु ।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः प्रणिहितमनसा ये नित्यमेवाचरन्ति ॥ ४६

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु यतिधर्मवर्णनं
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

तःपरं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिंशुभम् । हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये

अकृत्वा विहितं कर्म्म कृत्वा निन्दितमेव च ।
दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २ ॥

प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद्ब्राह्मणः क्वचित् ।
यद्ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत्समाचरेत् ॥ ३ ॥

वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्म्मकामोऽग्निमान्द्विजः ।
स एव स्यात्परो धर्म्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति ॥ ४ ॥

अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः । यद्ब्रूयुर्धर्मकामांस्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधन

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः । वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्त्तित

मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः ।
एकविंशतिविख्याताः प्रायश्चित्तं वदन्ति वै ॥ ७ ॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च । महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह सम्विश

सम्वत्सरन्तु पतितैः संसर्गंकुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितोभ

याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः । सद्यः कृत्वा पतत्येव सह भोजनमेव

अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्यादध्यापनं द्विजः । सम्वत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव

ब्रह्महाद्वादशाब्दानिकुटिंकृत्वावनेवसेत् । भैक्षमात्मविशुद्ध्यर्थंकृत्वाशवशिरोध्वं

ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्ज्जयेत् ।
विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तञ्च संस्मरन् ॥ १३ ॥

असङ्कल्पितयोग्यानि सप्तागाराणिसम्विशेत् । विधूमेशनकैर्नित्यंव्यङ्गारेभुक्तवज

एककालं चरेद्भैक्षं दोषं विख्यापयन्नृणाम् । वन्यमूलफलैर्वापि वर्त्तयेद्वै समाश्रितः
कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः । पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति
अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।
कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित् ॥ १७ ॥
कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेव वा । ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत् स्वयम्
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु ॥ १९ ॥
दीर्घामयाविनं विप्रं कृत्वानामयमेव वा । दत्त्वा चान्नं सुविदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वै शुध्यते द्विजः । सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय तु
सरस्वत्यास्त्वरुणया सङ्गमे लोकविश्रुते ।
शुध्येत्त्रिषवणस्नानात्त्रिरात्रोपोषितो द्विजः ॥ २२ ॥
गत्वा रामेश्वरं पुण्यं स्नात्वाथ च महोदधौ । ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रं विमोचयेत्
कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः ।
स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २४ ॥
यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितौजसा । कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥
समभ्यर्च्य महादेवं तत्र भैरवरूपिणम् । तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तवर्णनं
नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणःकपालस्थापनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन रुद्रेण शङ्करेणातितेजसा। कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजम्भुवि ॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयःपुण्यांकथां पापप्रणाशिनीम्। माहात्म्यं देवदेवस्यमहादेवस्यधीमतः
पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः। प्रोचुः प्रणम्य लोकादिंकिमेकं तत्त्वमव्ययम्
समाययामहेशस्य मोहितो लोकसम्भवः। अविज्ञायपरम्भावंस्वात्मानंप्राहधर्षिणम्
अहंधाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः। अनादि मत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्यविमुच्यते
अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः। न विद्यते चाभ्यधिकोमत्तो लोकेषु कश्चन
तस्यैवंमन्यमानस्यजज्ञे नारायणांशजः। प्रोवाचप्रहसन्वाक्यं रोषितोऽयंत्रिलोचनः
किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्त्तते तव साम्प्रतम्। अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतत्त्वयि विद्यते
अहंकर्त्तादिलोकानांयज्ञे नरायणात्प्रभोः। न मामृतेऽस्यजगतो जीवनंसर्वथाक्वचित्
अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः। मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम् ॥
एवं विवदतोर्मोहात्परस्परजयैषिणोः। आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि
अन्वीक्ष्यदेवं ब्रह्माणंयज्ञात्मानञ्चसंस्थितम्। प्रोचुःसंविग्नहृदया याथात्म्यंपरमेष्ठिनः

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्व्वं प्रवर्त्तते।
यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः ॥ १३ ॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते। यमाहुरीश्वरं देवं स देवःस्यात्पिनाकधृक्

सामवेद उवाच

येनेदम्भ्राम्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम् । योगिभिर्विद्यते तत्त्वमहादेवः सशङ्करः

अथर्ववेद उवाच

यम्प्रपश्यन्ति देवेशं यजन्ते यतयः परम् । महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः

एवं स भगवान्ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम् । श्रुत्वा विहस्य विश्वात्मा ततश्चाह विमोहितः

कथं तत्परमं ब्रह्म सर्वसङ्गविवर्जितम् । रमते भार्यया सार्द्धं प्रमथैश्चातिगर्वितैः ॥ १८॥

इतीरितेऽथ भगवान्प्रणवात्मा सनातनः । अमूर्त्तो मूर्त्तिमान्भूत्वा वचः प्राह पितामहम्

प्रणव उवाच

न ह्येष भगवानीशः स्वात्मनो व्यतिरिक्तया । कदाचिद्रमते रुद्रस्तादृशो हि महेश्वरः

अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ॥ २० ॥

स्वानन्दभूता कथिता देवी आगन्तुका शिवा ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्तेऽपि तदा यज्ञमूर्त्तेरजस्य च । नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैव मायया ॥ २२ ॥

तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः । प्रापश्यदद्भुतं दिव्यम्पूरयन् गगनान्तरम्

तन्मध्यसंस्थितं ज्योतिर्मण्डलं तेजसोज्ज्वलम् ।

व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः ॥ २४ ॥

स दृष्ट्वा वदनं दिव्यमूर्ध्नि लोकपितामहः । तैजसं मण्डलं घोरमालोकयदनिन्दितः

प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । क्षणादपश्यत्स महान् पुरुषं नीललोहितम्

त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान् । तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शङ्करं नीललोहितम्

जानामि पूर्वं भवतो ललाटादद्य शङ्करम् । प्रादुर्भूतं महेशानं मामतः शरणं व्रज ॥ २८ ॥

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः । प्राहिणोत्पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम् ॥ २९ ॥

स कृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः । चकर्त्तास्य वदनं विरिञ्चस्याथ पञ्चमम्

निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना । ममार चेशो योगेन जीवितं प्राप विश्वसृक्

अथान्वपश्यद्गिरिशं मण्डलान्तरसंस्थितम् । समासीनं महादेव्या महादेवं सनातनम्

भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशं जटाजूटविराजितम् ॥ ३३ ॥

शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम् ।

त्रिशूलपाणिं पुरुषं योगिनं भूतिभूषणम् ॥ ३४ ॥
यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम् । तमादिमेकं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह ॥
यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंस्थिता ।
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल ॥ ३६ ॥
यस्याशेषजगद्बीजं विलयं याति मोहनम् । सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते
योऽथ नाचारनिरतास्तद्भक्तानेव केवलम् । विमोचयति लोकात्मा नायको दृश्यते किल
यस्य ब्रह्मादयो देवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः । अर्चयन्ति सदा लिङ्गं स शिवः खलु दृश्यते
यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरः । न मुञ्चति सदा पार्श्वं शङ्करोऽसौ स दृश्यते
विद्यासहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम् । हिरण्यगर्भपुत्रोऽसावीश्वरो दृश्यते परः
पुष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगले जलम् । दत्त्वा तरति संसारं रुद्रोऽसौ दृश्यते किल
तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः ।
कालं किल स योगात्मा कालकालो हि दृश्यते ॥ ४३ ॥
जीवनं सर्वलोकानां त्रिलोकस्यैव भूषणम् । सोमः स दृश्यते देवः सोमो यस्य विभूषणम्
देव्या सह सदा साक्षाद्यस्य योगः स्वभावतः । गीयते परमा मुक्तिर्महादेवः स दृश्यते
योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखोऽनिशम् ।
योगं ध्यायन्ति देव्यासौ स योगी दृश्यते किल ॥ ४६ ॥
सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम् । वरासने समासीनमवाप परमां स्मृतिम्
लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यां संस्मृतिं भगवानजः । तोषयामास वरदं सोमं सोमार्द्धभूषणम्

ब्रह्मोवाच

नमो देवाय महते महादेव्यै नमो नमः । नमः शिवाय शान्ताय शिवायै सततं नमः
ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यं विद्यायै ते नमो नमः । महेशाय नमस्तुभ्यं मूलप्रकृतये नमः ॥
नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमो नमः । नमोऽस्तु कालकालाय ईश्वरायै नमो नमः
नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमो नमः । नमो नमस्ते कालाय मायायै ते नमो नमः
नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमो नमः । नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च

योगदाय नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः । नमः संसारनाशाय संसारोत्पत्तये नमः
नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्त्तये । नमः कार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः
ओंकारमूर्त्तये तुभ्यं तदन्तः संस्थिताय च । नमस्ते व्योमसंस्थाय व्योमशक्त्यै नमो नमः
इति सोमाष्टकेनेशं प्रणिपत्य पितामहः । पपात दण्डवद्भूमौ गृणन्वै शतरुद्रियम्

अथ देवो महादेवः प्रणतार्त्तिहरो हरः ।
प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव साम्प्रतम् ॥ ५८ ॥

दत्वास्मै परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत् । प्रोवाचाग्रे स्थितं रुद्रं नीललोहितमीश्वरम्
एष ब्रह्मास्य जगतः सम्पूज्यः प्रथमः स्थितः । आत्मना रक्षणीयस्ते गुरुर्ज्येष्ठः पिता तव
अयं पुराणपुरुषो न हन्तव्यस्त्वयाऽनघ । स योगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेव शरणं गतः
अयं च यज्ञो भगवान् सगर्वो भवताऽनघ । शासितव्यो विरिञ्चस्य धारणीयं शिरस्त्वया
ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोके प्रदर्शयन् । चरस्व सततं भिक्षां संस्थापय सुरद्विजान्

इत्येतदुक्त्वा वचनं भगवान् परमेश्वरम् ।
स्थानं स्वाभाविकं दिव्यं ययौ तत्परमं पदम् ॥ ६४ ॥

ततः स भगवानीशः कपर्द्दी नीललोहितः । ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम्
चरस्व पापनाशार्थं व्रतं लोकहितावहम् । कपालहस्तो भगवान् भिक्षां गृह्णातु सर्वतः

उक्त्वैवं प्राहिणोत्कन्यां ब्रह्महत्येति विश्रुताम् ।
दंष्ट्राकरालवदनां ज्वालामालाविभूषणाम् ॥ ६७ ॥

यावद्वाराणसीं दिव्यां पुरीमेष गमिष्यति । तावद्विभीषणाकारा ह्यनुगच्छ त्रिशूलिनम्
एवमाभाष्य कालाग्निं प्राह लोकमहेश्वरम् । अटस्व लोकानखिलान्भिक्षार्थी मन्नियोगतः
यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम् । तदासौ वक्ष्यति स्पष्टमुपायं पापशोधनम्
स देवदेवतावाक्यमाकर्ण्य भगवान् हरः । कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम्
आस्थाय विकृतं वेषं दीप्यमानं स्वतेजसा । श्रीमत्पवित्रं रुचिरं लोचनत्रयसंयुतम्
सहस्रसूर्यप्रतिमैः सिद्धैः प्रमथपुङ्गवैः । भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः ॥
पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दं परमेष्ठिनः । लीलाविलासबहुलो लोकानागच्छतीश्वरः

तं दृष्ट्वा कालवदनं शङ्करं कालभैरवम् । रूपलावण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु ॥७५॥
गायन्ति गीतैर्विविधैर्नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः । सस्मितं प्रेक्ष्यवदनञ्चक्रुर्भ्रूभङ्गमेव च

स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक् ।
जगाम विष्णोर्भुवनं यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः ॥ ७७ ॥

सम्प्राप्य दिव्यभवनं शङ्करो लोकशङ्करः । सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥७८॥
अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्पारमेश्वरम् । न्यवारयत्त्रिशूलाङ्कं द्वारपालो महाबलः
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासामहाभुजः । विष्वक्सेनइतिख्यातोविष्णोरंशसमुद्भवः
(अथ त शङ्करगणं युयुधेविष्णुसम्भवः । भीषणो भैरवादेशात्कालवेगइतिस्मृतः)
विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः । दुद्रावाभिमुखं रुद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम्
अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत् । तमापतन्तं सावज्ञमालोकयदमित्रजित्
तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम् । शूलेनोरसिनिर्भिद्य पातयामास तं भुवि ॥

स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वम्परमं बलम् ।
तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव ॥ ८४ ॥

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्द्धं प्रमथपुङ्गवैः । विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम् ॥
वीक्ष्यतं जगतो हेतुमीश्वरं भगवान्हरिः । शिरांललाटात्सम्भिद्यरक्तधारामपातयत्
गृहाणभिक्षां भगवन् !मदीयाममितद्युते !। न विद्यतेऽन्या ह्युचिता तव त्रिपुरमर्द्दन!
न सम्पूर्णं कपालं तद्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सा च धारा प्रवाहिता
अथाब्रवीत्कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः । संस्तूय विविधैर्भावैर्बहुमानपुरःसरम् ॥
किमर्थमेतद्वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम् । प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः ॥६०॥
समाहूय हृषीकेशोब्रह्महत्यामथाच्युतः । प्रार्थयामास भगवान्विमुञ्चेतित्रिशूलिनम्

न तत्याजाऽथ सा पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ।
चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शङ्करं प्राह सर्ववित् ॥ ६२ ॥

व्रजत्वदिव्यां भगवन्पुरींवाराणसीं शुभाम् । यत्राखिलजगद्दोषात्क्षिप्रन्नाशयतीश्वरः
ततः सर्वाणिभूतानितीर्थान्यायतनानिच । जगामलीलयादेवोलोकानांहितकाम्यया

संनृत्यमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः । नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः
तमभ्यधावद्भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः । समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः ॥

निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः ।
सस्मितोऽनन्तयोगात्मा नृत्यति स्म पुनः पुनः ॥ ९७ ॥

अथ सानुचरो रुद्रः स हरिर्धर्मवाहनः । भेजे महादेवपुरीं वाराणसीति विश्रुताम् ॥
प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि । हाहेत्युक्त्वा सनादं वै पातालं प्रापदुःखिता
प्रविश्य परमं स्थानं कपालं ब्रह्मणो हरः । गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शङ्करः

स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम् ।
उक्त्वा सजीवमस्त्विति विष्णवेऽसौ घृणानिधिः ॥ १०१ ॥

ये स्मरन्ति ममाजस्रं कापालं वेषमुत्तमम् । तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्
आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः । तर्पयित्वा पितॄन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया
अशाश्वतं जगज्ज्ञात्वा प्रसज्य परमां पुरीम् । देहान्ते तत्परं ज्ञानं ददाति परमं पदम्
इत्येवमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्य जनार्दनम् । सहैव प्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयत

स लब्ध्वा भगवान्कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः ।
स्वं देशमगमत्तूर्णं गृहीत्वा परमं वपुः ॥ १०९ ॥

एतद्वः कथितं पुण्यं महापातकनाशनम् । कपालमोचनं तीर्थं स्थाणोः प्रियकरं शुभम्
य इमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः । मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च प्रमुच्यते

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु कपालमोचनमाहात्म्यं
नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम्

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरांतप्तामग्निवर्णांम्पिबेत्तदा । निर्दग्धकायःस तयामुच्यते च द्विजोत्तमः
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा । पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात्ततः
जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वानारायणं हरिम् । ब्रह्महत्याव्रतञ्चाथ चरेत्पापप्रशान्तये

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्माम्भवाननुशास्त्विति ॥ ४ ॥

गृहीत्वामुसलं राजासकृद्धन्यात्तुतंस्वयम् । वधेतुशुद्ध्यतेऽस्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा
स्कन्धेनादायमुसलंलगुडंचापिखादिरम् । शक्तिञ्चादायतीक्ष्णाग्रामायसंदण्डमेववा
राजातेनचगन्तव्यो मुक्तकेशेनधावता । आचक्षाणेनतत्पापमेतत्कर्म्मास्मिशाधिमाम्

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥ ८ ॥
तपसापनोत्तुमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ॥ ६ ॥

त्वाश्वमेधावृथेपूतःस्याद्थवाद्विजः । प्रदद्याद्वाथविप्रेभ्यःस्वात्मतुल्यंहिरण्यकम्
रेद्वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यपरायणः । ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये

गुरोर्भार्य्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः ।
अवगूहेत्स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम् ॥ १२ ॥
स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ।
अभिगच्छेद्दक्षिणाशामानिपातादजिह्मगः ॥ १३ ॥
गुर्वङ्गनागमः शुद्ध्यै चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ।

शाखा वा कण्टकोपेतां परित्यज्याथ वत्सरम् ॥ १४ ॥

अथ शर्वात नियतोमुच्यते गुरुतल्पगः । कृच्छ्रं चान्द्रश्चरेद्विप्रश्चीरवासा समाहित

अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुद्ध्यते द्विज । कालेऽष्टमे वा भुञ्जानो ब्रह्मचारी सदाव्रती

स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।

अध शायी त्रिभिर्वर्षैस्तद्व्यपोहति पातकम् ॥ १७ ॥

चान्द्रायणानि वा कुर्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः ।

पतितैः सम्प्रयुक्तानामथ वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ १८ ॥

पतितेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विज । स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्

तप्तकृच्छ्रं चरेद्वाथ संवत्सरमतन्द्रित । षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्धमाचरेत्

एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम् ।

पुण्यतीर्थाभिगमनात्पृथिव्यां वाथ निष्कृति ॥ २१ ॥ ।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमम् । कृत्वाऽप्येतानि सर्वाणि ब्राह्मणः कामचारत

कुर्यादनशनं विप्र पुण्यतीर्थे समाहित ।

ज्वलन्तं वा विशेदग्निं ध्यात्वा देवं कपर्दिनम् ॥ २३ ॥

न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्धर्मवादिभि

तस्मात्पुण्येषु तीर्थेषु दहन्वापि स्वदेहकम् ॥ २४ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु प्रायश्चित्तवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तकथनम्

व्यास उवाच

गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्नुषामपि ।
प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थितिः ॥ १ ॥
मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम् ।
भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ ॥ २ ॥

चान्द्रायणञ्च कुर्वीततस्यपापस्य शान्तये । ध्यायन्देवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम्
भ्रातृभार्य्यां समारुह्यकुर्यात्तत्पापशान्तये । चन्द्रायणानिचत्वारि पञ्चवासुसमाहितः
पितृष्वस्रेयींगत्वातुस्वस्रीयांमातुरेवच । मातुलस्यसुतांवापिगत्वाचान्द्रायणञ्चरेत्

सखिभार्य्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा ततः कृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ६ ॥

उदक्या गमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति । चाण्डालीगमने चैव ततकृच्छ्रत्रयं विदुः
शुद्धिःसान्तपनेनस्यान्नान्यथानिष्कृतिःस्मृता । मातृगोत्रांसमारुह्यसमानप्रवरांतथा
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मासमाहितः । ब्राह्मणोब्राह्मणींगत्वा कृच्छ्रमेकंसमाचरेत्
कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु
रेतःसिक्त्वाजलेचैवकृच्छ्रंसान्तपनञ्चरेत् । वार्द्धिकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेणविशुद्ध्यति
गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । वेश्यायांमैथुनं कृत्वाप्राजापत्यंचरेद्द्विजः

पतिताञ्च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ।
पुल्कसीगमने चैव कृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ १३ ॥

नटींशैलूषकीञ्चैवरजकींवेणुजीविनीम् । गत्वाचान्द्रायणंकुर्यात्तथा चर्मोपजीविनीम्
ब्रह्मचारी स्त्रियंगच्छेत्कथञ्चित्काममोहितः । सप्तागारञ्चरेद्भैक्षंवसित्वा गर्दभाजिनम्

उपस्पृशेत्त्रिषवणं स्वपापपरिकीर्त्तयन् । सम्वत्सरेणचैकेन तस्मात्पापात्प्रमुच्यते
ब्रह्महत्यामतश्चापि षण्मासान्निचरन्यमी । मुच्यते ह्यवकीर्णोऽपि ब्राह्मणानुमते स्थित
सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम् । रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।

ओङ्कारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा ।
सम्वत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तम्भिक्षाशन शुचि ॥ १६ ॥

सावित्रीञ्च जपेन्नित्यं सम्यक् क्रोधवर्जित । नदीतीरेषुतीर्थेषु तस्मात्पापाद्विमुच्यते
हत्वातु क्षत्रियं विप्रः कुर्याद्ब्रह्महणो व्रतम् । अकामतो वै षण्मासान्दद्यात्पञ्चशतं गवाम्
अब्दं चरेद्वा नियतो वनवासी समाहित । प्राजापत्यं सान्तपनं तप्तकृच्छ्रन्तु वा स्वयम्
प्रमादात्कामतो वैश्यं कुर्यात्सम्वत्सरत्रयम् । गोसहस्रन्तु पादन्तु दद्याद्ब्रह्महणो व्रतम्

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ।
सम्वत्सरं व्रतं कुर्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादत ॥ २४ ॥

गोसहस्रार्धपादञ्च दद्यात्तत्पापशान्तये । अष्टौ वर्षाणि वा त्रीणि कुर्याद्ब्रह्महणो व्रतम्

हत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्चैव यथाक्रमम् ॥ २५ ॥

निहत्य ब्राह्मणीं विप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतञ्चरेत् । राजन्यां वर्षषट्कन्तु वैश्यां सम्वत्सरत्रयम्

वत्सरेण विशुद्ध्येत शूद्रीं हत्वा द्विजोत्तम ।
वैश्यां हत्वा द्विजातिस्तु किञ्चिद्दद्याद् द्विजातये ॥ २७ ॥

अन्त्यजानां वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम् । पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानज
मण्डूकं नकुलं काकं विडालं खरमूषकौ । श्वानं हत्वा द्विजः कुर्यात्षोडशांशं महाव्रतम्
पयः पिबेत्त्रिरात्रन्तु श्वानं हत्वा ह्ययन्त्रित । मार्जारं वाथ नकुलं योजनञ्चाध्वनो व्रजेत्
कृच्छ्रं द्वादशरात्रन्तु कुर्यादश्ववधे द्विज । अर्च्चां कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तम
पलालभारकं षण्ढे सीसकञ्चैकमाषकम् । घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरे
शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम् । हत्वा हंसं बलाकाञ्च बकं बर्हिणमेव च

वानरं श्येनभासञ्च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम् ।
क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ३४ ॥

अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वातुकृष्णलम् । किञ्चिद्देयन्तु विप्रायदद्यादस्थिमतांवधे
अनस्थ्नाञ्चैव हिंसायांप्राणायामेनशुध्यति । फलदानांतुवृक्षाणां छेदनेजप्यमृक्शतम्
गुल्मवल्लीलतानांतु पुष्पितानाञ्चवीरुधाम् । अण्डजानांचसर्व्वेषां स्वेदजानांचसर्वशः
फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् । हस्तिनाञ्च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रंविशोधनम्

चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः ।
मतिपूर्व्ववधे चाऽस्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३६ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुप्रायश्चित्तनिरूपणंनाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रायश्चित्तवर्णनम्

व्यास उवाच

मनुष्याणांतुहरणंकृत्वास्त्रीणांगृहस्य च । वापीकूपजलानाञ्चशुद्ध्येच्चान्द्रायणेनतु

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ २ ॥
धान्यान्नधनचौर्यंतु कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥ ३ ॥

भक्ष्यभोज्योपहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनम्
तृणकाष्ठद्रुमाणाञ्च शुष्कान्नस्यगुडस्यच । चैलचर्मामिषाणाञ्चत्रिरात्रंस्यादभोजनम्
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्यरजतस्य च । अयस्कान्तोपलानाञ्चद्वादशाहंकणाशनम्
कार्पासस्यैव हरणे द्विशफैकशफस्यच । पुष्पगन्धौषधीनाञ्च पिबेच्चैव त्र्यहं पयः
नरमांसाशनंकृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् । काकञ्चैव तथाश्वानञ्जग्ध्वाहस्तिनमेववा

वराहं कुक्कुटं चाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । क्रव्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव वा
गोगोमायुकपीनाञ्च तदेव व्रतमाचरेत् । शिशुमारं तथा चाथ मत्स्यमांसं तथैव च
उपोष्यद्वादशाहञ्च कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् । नकुलोलूकमार्जारांश्च जग्ध्वा सान्तपनञ्चरेत्
श्वापदोष्ट्रखरान्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । व्रतं कुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु

चक्रश्चैव बलाकाञ्च हंसकारण्डवांस्तथा ।
चक्रवाकप्लवं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम् ॥ १३ ॥

कपोतटिट्टिभाश्चैव शुकं सारसमेव च । उलूकं जालपादञ्च जग्ध्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् ॥
शिशुमारं तथा चाथ मत्स्यमांसं तथैव च । जग्ध्वा चैव कटाहारमेतदेव व्रतञ्चरेत्
कोकिलञ्चैव मत्स्यादान्मण्डूकं भुजगं तथा । गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति
जलेचरांश्च जलजान्प्रणुदानथ चिप्पिकान् । रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहञ्चैतदाचरेत्
शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थञ्च तथा कृतम् । भुक्त्वा मासञ्चरेदेतत्तत्पापस्यापनुत्तये
वृन्ताकं भूस्तृणं शिग्रुं कुटकञ्जुटकं तथा । प्राजापत्यञ्चरेज्जग्ध्वा खड्गं कुम्भीकमेव च
पलाण्डुं लशुनञ्चैव भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् । नालिका तण्डुलीयञ्च प्राजापत्येन शुध्यति

अश्मान्तकं तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्कुसुम्भस्य च भक्षणे ॥ २१ ॥

अलाबुं किंशुकञ्चैव भुक्त्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् । पनैवाश्च विकाराणि पीत्वा माहिषतापुनः
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति । उदुम्बरञ्च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥

भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा ॥ २३ ॥

चान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणः सुसमाहितः । यस्याग्नौ हूयते नित्यमन्नस्याग्रं न दीयते

चान्द्रायणञ्चरेत्सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः ।
अभोज्यान्नन्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम् ॥ २५ ॥
अन्तावसायिनाञ्चैव तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।
चण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ २६ ॥

बुद्धिपूर्वन्तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च । असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्

अभोज्यान्नन्तुभुक्त्वाच प्राजापत्येन शुध्यति । विण्मूत्रप्राशनंकृत्वारेतसश्चैतदाचरेत्
अनादिष्टेतुचैकाहं सर्वत्रतुयथार्थतः । विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः
प्राश्यमूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् । अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रंसुरासंस्पृष्टमेवच
पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजातयः । क्रव्यादांपक्षिणाञ्चैवप्राश्यमूत्रपुरीषकम्
महासान्तपनं मोहात्तथा कुर्याद्द्विजोत्तमः । भासमण्डूककुररेविष्किरेकृच्छ्रमाचरेत्

प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने ।
क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद्वैश्ये चैवाऽतिकृच्छ्रकम् ॥ ३३ ॥
शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ।
सुराया भाण्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ३४ ॥

समुच्छिष्टंद्विजोभुक्त्वात्रिरात्रेणविशुध्यति । गोमूत्रयावकाहारःपीतशेषञ्चवागवाम्
अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद्यदि । तदा सान्तपनं कृच्छ्रं व्रतम्पापविशोधनम्
चाण्डालकूपेभाण्डेषुयद्यज्ञानात्पिवेज्जलम् । चरेत्सान्तपनंकृच्छ्रंब्राह्मणःपापशोधनम्
चाण्डालेनतु संस्पृष्टम्पीत्वावारिद्विजोत्तमः । त्रिरात्रव्रतमुख्येनपञ्चगव्येन शुध्यति
महापातकिसंस्पर्शेभुक्त्वास्नात्वाद्विजोयदि । बुद्धिपूर्वं यदामोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्
स्पृष्ट्वा महापातकिनंचण्डालञ्चरजस्वलाम् । प्रमादाद्भोजनंकृत्वात्रिरात्रेणविशुध्यति
स्नानार्हो यदिभुञ्जीत ह्यहोरात्रेण शुध्यति । बुद्धिपूर्वंतु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः

भुक्त्वा पर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषिताः ।
भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा ॥ ४२ ॥

सम्वत्सरान्ते कृच्छ्रन्तु चरेद्विप्रः पुनः पुनः । अज्ञानभुक्तशुद्ध्यर्थंज्ञातस्यतुविशेषतः
व्रात्यानां याजनं कृत्वापरेषामन्त्यकर्मच । अभिचारमहीनञ्चत्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुध्यति
ब्राह्मणादिहतानांतु कृत्वादाहादिकं द्विजः । गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येनशुध्यति
तैलाभ्यक्तोऽथवान्तोवा कुर्यान्मूत्रपुरीषके । अहोरात्रेण शुद्ध्येत श्मश्रुकर्मणिमैथुने
एकाहेन विहायाग्निपरिहाप्य द्विजोत्तमः । त्रिरात्रेणविशुद्ध्येतत्रिरात्रात्षडहःपरम्
दशाहं द्वादशाहं वा परिहाप्य प्रमादतः । कृच्छ्रञ्चान्द्रायणंकुर्यात्तत्पापस्योपशान्तये

पतिवादुद्द्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति । चरेच्चविधिनाऽकृच्छ्रमित्याह भगवान्मनुः
अनाशकान्निवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा ।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ॥ ५० ॥
पुनश्च जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः । शुद्ध्येयुस्तद्व्रतं सम्यक् चरेयुर्धर्मदर्शिनः
अनुपासितसन्ध्यस्तु तदहर्यावके भवेत् । अनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद्रात्रिमेव हि
अहुत्वा समिदाधानमशुचि स्नात्वा समाहितः । गायत्र्यष्टसहस्रस्य जप्यं कुर्याद्विशुद्धये
उपवासी चरेत्सन्ध्यां गृहस्थो हि प्रमादतः ।
स्नात्वा विशुध्यते सद्यः परिश्रान्तश्च संयतः ॥ ५५ ॥
वेदोदितानि नित्यानि कर्माणि च विलोप्य तु । स्नातकोव्रतलोपं तु कृत्वा चोपवसेद्दिनम्
सम्वत्सरञ्चरेत्कृच्छ्रमग्न्युत्सादी द्विजोत्तमः ।
चान्द्रायणञ्चरेद्व्रात्यो गोप्रदानेन शुध्यति ॥ ५९ ॥
नास्तिक्यं यदि कुर्वीत प्राजापत्यञ्चरेद्द्विजः । देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानञ्च कामतः । त्रिरात्रेण विशुध्येत्तु नग्नो वा प्रविशेज्जलम्
षष्ठान्नकालतामासं संहिताजप एव च । होमाश्च शाकला नित्यमपाङ्क्तानां विशोधनम्
नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि । अहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शुध्यति
वेदधर्मपुराणानां चण्डालस्य तु भाषणे । चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्नह्यन्यास्य निष्कृतिः
उद्बन्धनादिनिहतं संस्पृश्य ब्राह्मणः क्वचित् । चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात्प्राजापत्येन वा पुनः
उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन्स्पृशेद् द्विजः ।
प्रमादाद्वै जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥ ६३ ॥
द्रुपदानां शतं वापि ब्रह्मचारी समाहितः । त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति
चाण्डालपतितादींस्तु कामाद्यः संस्पृशेद् द्विजः ।
उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये ॥ ६५ ॥
चाण्डालसूतकिशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम् ।
स्पृष्ट्वा स्नायाद्विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टपतितांस्तथा ॥ ६६ ॥

चाण्डालसूतकिशवैःसंस्पृष्टंसंस्पृशेद्यदि । ततःस्नात्वाथआचम्यजपंकुर्यात्समाहितः
तत्स्पृष्टस्पर्शिनंस्पृष्ट्वाबुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः। स्नात्वाचामेद्विशुद्ध्यर्थंप्राहदेवःपितामहः

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्संस्पृशेद्यदि ।
कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद् व्रतम् ॥ ६६ ॥
चाण्डालन्तु शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद्विशुद्ध्यति ।
स्पृष्ट्वाऽभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्य अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ७० ॥

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजःकुर्यात्प्राणायामत्रयंशुचिः । पलाण्डुं लशुनञ्चैवघृतंप्राश्यततःशुचिः
ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायम्पयःपिबेत् । नाभेरूर्द्ध्वन्तुदष्टस्य तदेव द्विगुणंभवेत्

स्यादेतत्त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम् ।
स्नात्वा जपेद्वा सावित्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तमः ॥ ७२ ॥

अनिर्वर्त्यमहायज्ञान्यो भुङ्क्तेतुद्विजोत्तमः । अनातुरःसतिधनेकृच्छ्रार्द्धेनसशुद्ध्यति

आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि ।
ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोऽपिकृच्छ्रार्द्धमाचरेत् ॥ ७५ ॥

विनाद्भिरप्सुनाप्यार्त्तःशरीरंसन्निवेश्यच । सचैलोजलमाप्लुत्यगामालभ्यविशुध्यति
बुद्धिपूर्वन्त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः । गायत्र्यष्टसहस्रन्तु त्र्यहं चोपवसेद्द्विजः
अनुगम्येच्छया शूद्रंप्रेतभूतंद्विजोत्तमः । गायत्र्यष्टसहस्रञ्चजपंकुर्यान्नदीषु च ॥ ७८॥
कृत्वातुशपथंविप्रोविप्रस्यावधिसंयुतम् । स चैवयावकान्नेनकुर्याच्चान्द्रायणंव्रतम्

पङ्क्तौ विषमदानं तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ।
छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम् ॥ ८० ॥
ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाऽग्निञ्चन्द्रमेव वा ।
मानुषञ्चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ८१ ॥

कृत्वा तु मिथ्याध्ययनञ्चरेद्भैक्षन्तु वत्सरम् । कृतघ्नो ब्राह्मणगृहेपञ्चसंवत्सरव्रती
हुङ्कारंब्राह्मणस्योक्त्वात्वङ्कारञ्चगरीयसः । स्नात्वानाश्नन्नहःशेषंप्रणिपत्यप्रसादयेत्
ताडयित्वातृणेनापिकण्ठंबद्ध्वाथवाससा। विवादेवापिनिर्जित्यप्रणिपत्यप्रसादयेत्

मयगूर्य (ह) चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ ८७ ॥

गुरोराक्रोशमनृतं कृत्वा कुर्याद्विशोधनम्। एकरात्रं निराहार तत्पापस्यापनुत्तये
देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते। उल्मुकेन दहेज्जिह्वां दातव्यञ्च हिरण्यकम्

देवोद्यानेषु च कुर्याद्मूत्रोच्चारं सकृद् द्विज।

छिन्द्याच्छिश्नं विशुध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ ८८ ॥

देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तम।

शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् ॥ ८९ ॥

देवतानामृषीणाञ्च देवानाञ्चैव कुत्सनम्। कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्यं द्विजोत्तम

तैस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्चयेत्।

दृष्ट्वा वीक्षेत मार्त्तण्डं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरेत् ॥ ९१ ॥

य सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति। न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि
चान्द्रायणं चरेत्पूर्वं कृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम्। प्रपन्नः शरणं देवं तस्मात्पापाद्विमुच्यते
सर्वस्वदानं विधिवत्सर्वपापविशोधनम्। चान्द्रायणञ्च विधिना कृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम्

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविशोधनम्।

अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद् भवम् ॥ ९५ ॥

ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९६ ॥

कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथा कृष्णचतुर्दशीम्। सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते
त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम्। दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः
उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च। प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन्

स्नात्वा दद्याच्च पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः।

ब्रह्मचर्यमधः शय्या उपवासो द्विजार्चनम् ॥ १०१ ॥

व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः।

अमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम् ॥ १०२ ॥
ब्राह्मणांस्त्रीन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः । षष्ठ्यामुपोषितोदेवंशुक्लपक्षेसमाहितः
सप्तम्यामर्च्चयेद्भानुं मुच्यते सर्वपातकैः । भरण्याञ्चचतुर्थ्याञ्च शनैश्चरदिने यमम्
पूजयेत्सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नरः । एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्यजनार्द्दनम्
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते । तपोजपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् ॥
ग्रहणादिषु कालेषुमहापातकशोधनम् । यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः
नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकैः । ब्रह्मघ्नंवाकृतघ्नं वा महापातकदूषितम्
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टासह पावकम् । एतदेव परंस्त्रीणाम्प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणे रता । न तस्या विद्यतेपापमिहलोके परत्र च
(सर्वपापविनिर्मुक्ता नास्ति कार्या विचारणा ।
पातिव्रत्यसमायुक्ता भर्तृशुश्रूषणोत्सुका । न यास्तुपातकंतस्यामिहलोके परत्रच)
पतिव्रता धर्मरता भद्राण्येव लभेत्सदा । नास्याःपराभवंकर्त्तुं शक्नोतीहजनःक्वचित्
यथा रामस्य सुभगासीतात्रैलोक्यविश्रुता । पत्नीदाशरथेर्देवीविजिग्येराक्षसेश्वरम्
रामस्य भार्या सुभगां रावणोराक्षसेश्वरः । सीतांविशालनयनांचकमे कालनोदितः
गृहीत्वा माययावेषं चरन्तीं विजनेवने । समाहर्त्तुं मतिं चक्रेतापसःकिलकामिनीम्
विज्ञायसा चतद्भावंस्मृत्वादाशरथिम्पतिम् । जगामशरणंवह्निमावसथ्यंशुचिस्मिता
उपतस्थेमहायोगंसर्वलोकविदाहकम् । कृताञ्जलीरामपत्नीसाक्षात्पतिमिवाच्युतम्
नमस्यामि महायोगं कृशानुं गह्वरम्परम् । दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम्
प्रपद्ये पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम् । योगिनं कृत्तिवसनं भूतेशं परमम्पदम्
आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम् । तम्प्रपद्ये जगन्मूर्त्तिं प्रथमं सर्वतेजसाम्
महायोगीश्वरं वह्निमादित्यम्परमेष्ठिनम् ॥ ११६ ॥
प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम् । कालाग्निं योगिनामीशंभोगमोक्षफलप्रदम्
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भूर्भुवःस्वः स्वरूपिणम् ।
हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम् ॥ १२१ ॥

वैश्वानरं प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम् । हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम् ॥
प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं वरेण्यं सवितुः शिवम् । भर्गमग्निपरं ज्योतिः रक्ष मां हव्यवाहन ॥

इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी ।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा ॥ १२४ ॥

अथावसथ्याद् भगवान् हव्यवाहो महेश्वरः । आविरासीत् सुदीप्तात्मा तेजसैव दहन्निव ॥
सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेच्छया । सीतामादाय धर्मिष्ठां पावकोऽन्तरधीयत ॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः ।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम् ॥ १२७ ॥

कृत्वाथ रावणवधं रामो लक्ष्मणसंयुतः । समादायाभवत् सीतां शङ्काकुलितमानसः ॥
सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पुनः । विवेश पावकं दीप्तं ददाह ज्वलनोऽपि ताम् ॥

दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुग्रदीधितिः ।
रामायादर्शयत् सीतां पावकोऽभूत् सुरप्रियः ॥ १३० ॥

प्रगृह्य भर्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा । चकार प्रणतिं भूमौ रामाय जनकात्मजा ॥
दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः । प्रणम्य वह्निं शिरसा तोषयामास राघवः ॥
उवाच वह्निं भगवान् किमेषा वरवर्णिनी । दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता ॥
तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः । यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव सन्निधौ ॥

इयं सा परमा साध्वी पार्वतीव प्रिया तव ।
आराध्य रुद्रं तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा ॥ १३५ ॥

भर्तुः शुश्रूषणोपेता सुशीलेयं पतिव्रता । भवानीवेश्वरे गुप्ता माया रावणकामिता ॥

या नीता राक्षसेशेन सीता भगवती हुता ।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधेच्छया ॥ १३७ ॥

तदर्थं भवता दुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः । मयोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशनः ॥
गृहाण चैनां विमलां जानकीं वचनान्मम । पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम् ॥

इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः ।

मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत ॥ १४० ॥

एतत्पतिव्रतानांवैमाहात्म्यंकथितंमया। स्त्रीणांसर्वाघशमनम्प्रायश्चित्तमिदंम्स्मृतम्
अशेषपापसंयुक्तः पुरुषोऽपि सुसंयुतः। स्वदेहंपुण्यतीर्थेषुत्यक्त्वामुच्येतकिल्बिषात्
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वापुण्येषु वा द्विजः। मुच्यतेपातकैःसर्वैःसञ्चितैरपिपूरुषः

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकंकथितोमया। महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगश्च शाश्वतः
योगेन विधिनायुक्तो ज्ञानयोगं समाचरेत्। स पश्यति महादेवं नान्यःकल्पशतैरपि
स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानंतत्पारमेश्वरम्। न तस्मादधिकोलोके स योगीपरमोमतः
यःसंस्थापयितुंशक्तोनकुर्यान्मोहितोजनः। सयोगयुक्तोऽपिमुनिर्नात्यर्थंभगवत्प्रियः
तस्मात्सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः। धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै
यः पठेद्भवतांनित्यं सम्वादं मम चैव हि। सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमांगतिम्

श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ।
पठेत नित्यं सुमनाः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥ १५० ॥
योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद्वा द्विजान् शुचीन्।
स दोषकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम् ॥ १५१ ॥

एतावदुक्त्वाभगवान्व्यासःसत्यवतीसुतः। समाश्वास्यमुनीन्सूतंजगामचयथागतम्

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासुप्रायश्चित्तवर्णनंनाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

समाप्ता व्यासगीता।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

गयादिनानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन्विश्रुतानि महान्त्यपि ।
तानि त्वं कथयाऽस्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम् ॥ १ ॥

रोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं कथयिष्येऽहं तीर्थानि विविधानि च । कथितानि पुराणेषु मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः
यत्र स्नानं जपो होमः श्राद्धदानादिकं कृतम् । एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमं कुलम्
पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रयागं प्रथितं तीर्थं तस्य माहात्म्यमीरितम्
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कुरूणां देववन्दितम् । ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम्

तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः ।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम् ॥ ६ ॥

परं गुह्यं गयातीर्थं पितॄणां चातिदुर्लभम् । कृत्वा पिण्डप्रदानं तु न भूयो जायते नरः
सकृद्गयाभिगमनं कृत्वा पिण्डं ददाति यः । तारिताः पितरस्तेन यास्यन्ति परमां गतिम्
तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना । शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितॄन्प्रसादयेत्
गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्तो नाभिगच्छति । शोचन्ति पितरस्तं वै वृथा तस्य परिश्रमः

गायन्ति पितरो गाथाः कीर्तयन्ति महर्षयः ।
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ ११ ॥
यदि स्यात्पातकोपेतः स्वधर्मपरिवर्जितः ।
गयां यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ १२ ॥

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः । तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः । प्रदद्याद्विधिवत्पिण्डान्गयां गत्वा समाहितः

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः ।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याऽऽप्नुयुः परम् ॥ १५ ॥

अन्यच्चतीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम् । प्रभासमिति विख्यातंयत्रास्तेभगवान्भवः

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्राह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥

तीर्थन्त्रैयम्बकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम् । पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलंलभेत्

सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्दिनम् । ब्राह्मणान्पूजयित्वाच गाणपत्यंलभेततः

सोमेश्वरं तीर्थवरं रुद्रस्य परमेष्ठिनः । सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रसालोक्यकारणम् ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयंनामशोभनम् । तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयंनामविश्रुतम्

षण्मासनियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः ।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमम्पदम् ॥ २२ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशेषु शोभनम् । एकान्तं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम् ॥२३

दत्त्वाऽत्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम् ।
सार्वभौमो भवेद्राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् । ग्रहणेतदुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥२५

अन्याचविरजानामनदीत्रैलोक्यविश्रुता । तस्यां स्नात्वा नरोविप्रोब्रह्मलोकेमहीयते

तीर्थं नारायणस्यान्यंनाम्ना तु पुरुषोत्तमम् । तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपूरुषः

पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः ।
ब्राह्मणान्पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ २८ ॥

तीर्थानाम्परमं तीर्थंगोकर्णंनाम विश्रुतम् । सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः

दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णम्परमुत्तमम् । ईप्सितांल्लभते कामान्रुद्रस्यदयितोभवेत्

उत्तरञ्चापिगोकर्णं लिङ्गंदेवस्य शूलिनः । महादेवञ्चार्चयित्वाशिवसायुज्यमाप्नुयात्

तत्र देवो महादेवःस्थाणुरित्यभिविश्रुतः । तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणान्मुच्यतेनरः

अन्यत्कुब्जाश्रमम्पुण्यं स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।

समभ्यर्च्य पुरुषं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयते ॥ ३३ ॥

यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा । कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्य तु विसर्जितः
समन्ताद्योजनक्षेत्रं सिद्धर्षिगणसेवितम् । पुण्यमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः

अन्यच्च तीर्थमतुलं विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः ।
मुक्तोऽत्र पातकैर्मर्त्यो विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥
शालिग्रामं महातीर्थं विष्णोः प्रीतिविवर्द्धनम् ।
प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशमपश्यति ॥ ३७ ॥
अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम् ।
आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणः स्वयम् ॥ ३८ ॥
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं सिद्धवासं सुशोभनम् ।
तत्राऽस्ति पुण्यदं तीर्थं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ३९ ॥

पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम् । मनसा संस्मरेद्यस्तु पुष्करं वै द्विजोत्तमः
पूयते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते । तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः
उपासते सिद्धसङ्घा ब्रह्माणं पद्मसम्भवम् । तत्र स्नात्वा भवेच्छुद्धो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्
पूजयित्वा द्विजवरं ब्रह्माणं सम्प्रपश्यति । तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम्

तद्रूपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम् ॥ ४४ ॥

पूजयित्वा तत्र रुद्रमश्वमेधफलं भवेत् । यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नः परमेश्वरम् ॥४५॥
आराधयामास शिवं तपसा गोवृषध्वजम् । प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा
ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समागतम् । तं प्राह भगवान्रुद्रः किमर्थं नर्तितं त्वया४७
दृष्ट्वापि देवमीशानं नृत्यति स्म पुनः पुनः । सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगर्वं गर्वशान्तये
स्वकं देहं विदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत् । पश्येममच्छरीरोत्थं भस्मराशिं द्विजोत्तम

माहात्म्यमेतत्तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते ।
यत्सगर्वं हि भवता नर्तितं मुनिपुङ्गव ॥ ५० ॥

न युक्तं तापसस्यैतत्त्वत्तोऽप्यभ्यधिको ह्यहम्।
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रोऽखिलविश्वदृक्॥ ५१॥

आख्याय परमं भावं ननर्त्त जगतो हरः। सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षःसहस्रपात्
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामालीभयङ्करः। सोऽन्वपश्यदथेशस्य पार्श्वे तस्य त्रिशूलिनः
विशाललोचनामेकां देवीं चारुविलासिनीम्। सूर्यायुतसमाकारां प्रसन्नवदनां शिवाम्
सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशं तिष्ठन्तममितद्युतिम्। दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयो वेपमानो मुनीश्वरः
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायञ्जपन्वशी। प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः
पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत्। आलिङ्ग्य भक्तम्प्रणतं देवदेवःस्वयं शिवः
न भेतव्यं त्वया वत्स! प्राह किन्ते ददाम्यहम्। प्रणम्य मूर्ध्ना गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम्
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः। नमोऽस्तु ते महादेव महेश्वर नमोऽस्तु ते
किमेतद्भगवद्रूपं सुघोरं विश्वतोमुखम्। का च सा भगवत्पार्श्वे राजमाना व्यवस्थिता
अन्तर्हिते च सहसा सर्वमिच्छामि वेदितुम्। इत्युक्ते व्याजहारेशस्तदा मङ्कणकं हरः
महेशः स्वात्मनो योगं देवीञ्च त्रिपुरानलः। अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः
दाहकः सर्वपाशानां कालः कालकरो हरः। मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम्

सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः।
तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥ ६४॥
प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनीः सनातनी।
स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्वकृत्॥ ६५॥

नारायणःपरोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रुतिः। एवमेतज्जगत्सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम्
योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पञ्चविंशकम्। तथा वै सङ्गतो देवः कूटस्थःसर्वगोऽमलः
सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्तेः प्रकृतेरजः। स देवो भगवान्ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः॥
तवैतत्कथितं सम्यक्स्रष्टृत्वं परमात्मनः। एकोऽहं भगवान्कालो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः
समास्थाय परम्भावं प्रोक्तो रुद्रो मनीषिभिः। ममैव सा पराशक्तिर्देवी विद्येति विश्रुता
दृष्टो हि भवता नूनं विद्यादेहः स्वयं ततः। एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वरः॥

विष्णुर्ब्रह्मा च भगवान्रुद्रः काल इति श्रुतिः । त्रयमेतदनाद्यन्तं ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम्
तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः । आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परमं पदम्
आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ।
एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु ॥ ३४ ॥
सम्पूज्यो वन्दनीयोऽहं ततस्तं पश्य शाश्वतम् । एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शनं हरः
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः । एतत्पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम् ।
संसेव्य ब्राह्मणो विद्वान्मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३५ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे गयातीर्थकालाग्निरुद्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्रकोटि कालञ्जरतीर्थवर्णने कालरवर्णनम्

सूत उवाच

अन्यत्पवित्रं विपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । रुद्रकोटिरिति ख्यातं रुद्रस्य परमेष्ठिनः
पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्पराः । कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमन्परम् ॥
अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम् ।
अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां व्याघातोऽभून्महान्किल ॥ ३ ॥
तेषां भक्तिं तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः ।
कोटिरूपोऽभवद्रुद्रो रुद्रकोटिस्ततोऽभवत् ॥ ४ ॥
ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम् । अपश्यन्पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन्
अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम् । दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन्
अथान्तरिक्षे विमलं पश्यन्ति स्म महत्तरम् । ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्तः परं पदम्
एतत्स देवोऽनुगुणिनस्तीर्थं पुण्यतमं शुभम् ।

दृष्ट्वा रुद्रान्समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयुः ॥ ८ ॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं शुभम्। तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत्
अथान्या पद्मनगरी देशः पुण्यतमः शुभः। तत्रगत्वापितॄन्पूज्यकुलानां तारयेच्छतम्
कालञ्जरं महातीर्थं रुद्रलोके महेश्वरः। कालञ्जरं भजन्देवं तत्र भक्तप्रियो हरः ॥११
श्वेतो नाम शिवेभक्तो राजर्षिप्रवरःपुरा। तदाशीस्तन्नमस्कारैःपूजयामास शूलिनम्
संस्थाप्य विधिनारुद्रं भक्तियोगपुरःसरः। जजाप रुद्रमनिशं तत्र सन्न्यस्तमानसः
सितंकार्ष्णाजिनं दीप्तं शूलमादायभीषणम्। नेतुमभ्यागतोदेशंस राजा यत्रतिष्ठति
वीक्ष्य राजा विप्रः शूलहस्तं समागतम्। कालंकालकरंघोरं भीषणं चण्डदीपितम्
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽसौ लिङ्गमुत्तमम्।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ॥ १६ ॥
जपन्तमाह राजानं नमन्तं मनसा भवम्। एह्येहीति पुरः स्थित्वाकृतान्तःप्रहसन्निव
तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः। एकमीशार्च्चनरतं विहायान्यान्निषूदय ॥
इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद्भीतमानसम्। रुद्रार्च्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति
एवमुक्त्वास राजानं कालो लोकप्रकालनः। ववन्ध पाशै राजापि जजापशतरुद्रियम्
अथाऽन्तरिक्षे विपुलं दीप्यमानं तेजोराशिं भूतभर्त्तुः पुराणम्।
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं प्रादुर्भूतं संस्थितं संददर्श ॥ २१ ॥
तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम्।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो मेने चात्मानमप्यागच्छतीति ॥ २२ ॥
आगच्छन्तं नाऽतिदूरेति दृष्ट्वा कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम्।
व्यपेतभीरखिलेशैकनाथं राजर्षिस्तन्नेतुमभ्याजगाम ॥ २३ ॥
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्म्मा देवो रुद्रो भूतभर्त्ता पुराणः।
एवं भक्तं सत्वरं मां स्मरन्तं देहीतीमं कालरूपं ममेति ॥ २४ ॥
श्रुत्वा वाक्यं गोपते रुद्रभावः कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम्।
बद्ध्वा भक्तं पुनरेवाथ पाशै रुद्रो रौद्रं स्माभिदुद्राव वेगात् ॥ २५ ॥

प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञः ।
सावज्ञं वै वामपादेन कालं त्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान ॥ २६ ॥

ममार सोऽभिमान्यणो महेशपादघातितः । विराजते सहोमया महेश्वरः पिनाकधृक्
निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम् । ननाम वै तमव्ययं स राजपुङ्गवस्तदा ॥
नमो भवाय हेतवे हराय विश्वशम्भवे । नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने ॥
नमो नमो नमो नमो महाविभूतये नमः । विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते ॥
नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदुःखशासन । अनादिनित्यभूतये वराहशृङ्गधारिणे ॥
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः । नमो महानटाय ते शिवाय शङ्कराय ते
अथानुगृह्य शङ्करः प्रणामतत्परं नृपम् । स्वगाणपत्यमव्ययं स्वरूपतामथो ददौ
सहोमया सपार्षदः सराजपुङ्गवो हरः । मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात् ॥
काले महेशाभिहते लोकनाथः पितामहः । अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवत्विति

नाऽस्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज ।
कृतान्तस्यैव भविता तत्कार्यं विनियोजितः ॥ ३६ ॥
स देवदेववचनाद्देवदेवेश्वरो हरः ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत् ॥ ३७ ॥

इत्येतत्परमं तीर्थं कालञ्जरमिति श्रुतम् । गत्वाभ्यर्च्य महादेवं गाणपत्यं स विन्दति

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे रुद्रकोटि-कालञ्जरतीर्थवर्णनकालवधवर्णनं
नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

महालयादितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

इदमन्यत्परंस्थानं गुह्याद्गुह्यतरं महत् । महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम्
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा । शिवातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम्
तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः । उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः
स्नात्वा तत्र पदं शार्व्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम् ।
नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ४ ॥
अन्यच्चदेवदेवस्यस्थानं शम्भोर्महात्मनः । केदारमितिविख्यातं सिद्धानामालयंशुभम्
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम् । पीत्वा चैवोदकंशुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात्
श्राद्धदानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभतेफलम् । द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्जितमानसैः
तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम् । तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते
अन्यच्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम् । अक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वाद्विजोत्तमः
तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम् । यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः ॥
तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः । मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः
महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम् ।
तत्राऽभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥ १२
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्नाश्रीपर्वतं शुभम् । अत्रप्राणान्परित्यज्य रुद्रस्यदयितो भवेत्
तत्र सन्निहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः । स्नानपिण्डादिकं तत्र दत्तमक्षयमुत्तमम्
गोदावरीनदीपुण्या सर्वपापप्रणाशिनी । तत्रस्नात्वापितॄन्देवांस्तर्पयित्वायथाविधि
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत् । पवित्रसलिला पुण्याकावेरी विपुला नदी
तस्यां स्नात्वोदकंकृत्वामुच्यते सर्वपातकैः । त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेनवा

द्विजातीनां तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम् ।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ ॥ १८ ॥

अलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमाप्नुयात् । स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुत
तत्र सन्निहितो नित्यं स्कन्दोऽमरनमस्कृतः । स्नात्वा कुमारधारायां कृत्वा देवादितर्पण
आराध्य षण्मुखं देवं स्कन्देन सह मोदते । नदी त्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीति नाम
तत्र स्नात्वा पितॄन् भक्त्या तर्पयित्वा यथाविधि । पापकर्तॄनपि पितॄन् तारयेन्नात्र संशय
चन्द्रतीर्थमिति ख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम् । तीर्थे तत्र भवेद्दत्तं मृतानां तत्र निश्च
विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम् । भक्त्या ये तेन पश्यन्ति यमस्य पुरुषा द्विज

देविकायां वृषा नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वोदकं दत्त्वा योगसिद्धिं च विन्दति ॥ १९ ॥

स्नानाभिषेकं तीर्थं सर्वपापविनाशनम् । दशानामश्वमेधानां तत्प्राप्नोति फलं न
पुण्डरीकं तथा तीर्थं ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तदाभिगम्य युक्तात्मा पौण्डरीकफलं लभे
तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम् । ब्रह्माणमर्चयित्वात्र ब्रह्मलोके महीय

सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम् ।
व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकश्च नगोत्तमः ॥ २० ॥

यमुनाप्रभवं चैव सर्वपापविनाशनम् । पितॄणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुत

तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत् ।
कुबेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २१ ॥

प्राणांस्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत् । उमातुङ्गमिति ख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभ
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत् । भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धं दानं तथा कृत
कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति मतिर्मम । काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुत

तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया ।
दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमो जपस्तथा ॥ २२ ॥

अक्षयं चाव्ययं चैव कृतं भवति सर्वदा । तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्ना वै कुरुजाङ्गल

[द]त्वा तु दानं विधिवद्ब्रह्मलोके महीयते । वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैवच
[ध]र्मपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे । भरतस्याश्रमे पुण्येपुण्येगृध्रवनेशुभे ॥ ३८ ॥
[म]हाहृदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम् । मुण्डपृष्ठे पदंन्यस्तंमहादेवेन धीमता
हिताय सर्वभूतानां नस्तिकानां निदर्शनम् । अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः

पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ।
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ४१ ॥

उदीच्यां ब्रह्मपृष्ठस्यब्रह्मर्षिगणसेवितम् । तत्रस्नात्वादिवंयान्तिसशरीराद्विजातयः
दत्तं वापिसदाश्राद्धमक्षयंसमुदाहृतम् । ऋणैस्त्रिभिर्नरःस्नात्वामुच्यतेक्षीणकल्मषः

मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ ४४ ॥
तस्मान्निर्वर्त्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् ।
स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥ ४५ ॥
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः ।
योजनानां सहस्राणि साशीतिस्त्वायतो गिरिः ॥ ४६ ॥

सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवितः । तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्नानामनामतः

तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्ब्रह्महत्यां विमुञ्चति ।
श्राद्धं भवति चाक्षयं तत्र दत्तं महोदयम् ॥ ४८ ॥

तारयेच्च पितॄन्सम्यग्दशपूर्वान्दशापरान् । सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गापुण्यासमन्ततः
नद्यःसमुद्रगाः पुण्याःसमुद्रश्चविशेषतः । बदर्याश्रममासाद्य मुच्यतेसर्वकिल्बिषात्
तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः । अक्षयं तत्रदानंस्याच्छ्राद्धदानादिकञ्चयत्
महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद्विशेषतः । तारयेच्च पितॄन्सर्वान्दत्त्वा श्राद्धं समाहितः
देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । महता देवदेवेन तत्र दत्तंमहेश्वरम् ॥ ५३ ॥

मोहयित्वा मुनीन्सर्वान्समस्तैः सम्प्रपूजितः ।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान् ॥ ५४ ॥

इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा। मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ
यत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणाः। तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम्

अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन तु।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म चाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगता जनाः। तेषाञ्च सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमाः
श्राद्धं दानं तपो होमं पिण्डनिर्वपणं तथा। ध्यानं जपश्च नियमः सर्वमत्राक्षयं कृतम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः। देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम्
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः। तत्र सन्निहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे महालयादितीर्थवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दारुवनाख्यानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान्गोवृषध्वजः। मोहयामास विप्रेन्द्रान्सूत वक्तुमर्हसि ॥

सूत उवाच

पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते। सपुत्रदारतनयास्तपश्चेरुः सहस्रशः ॥ २ ॥
प्रवृत्तं विविधं कर्म प्रकुर्वाणा यथाविधि। यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः
तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलधृक्। व्याख्यापयन्सदा दोषं ययौ दारुवनं हरः
कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पार्श्वे देवो महेश्वरः। ययौ निवृत्तविज्ञानस्थापनार्थं च शङ्करः
आस्थाय विपुलं वेषं ऊनविंशतिवत्सरम्। लीलालसो महाबाहुः पीनाङ्गश्चारुलोचनः
चामीकरवपुः श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभाननः। मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः
जातरूपमयीं मालां सर्वरत्नैरलङ्कृताम्। दधानो भगवानीशः समागच्छति सस्मितः

योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययोहरिः ।
स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शोभनम् (शूलिनम्)॥ ९ ॥
सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम् । शुचिस्मितं सुप्रसन्नंरणन्नूपुरकद्वयम् ॥ १०॥
सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलञ्चारुलोचनम् । उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम् ॥
एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हरः । चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत् ॥
दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम् । मायया मोहिता नार्योदेवदेवंसमन्वयुः
विस्रस्ताभरणाः सर्वास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः ।
सहैव तेन कामार्त्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥ १४ ॥
ऋषीणां पुत्रकायेस्युर्युवानोजितमानसाः । अन्वागमन्हृषीकेशंसर्वेकामप्रपीडिताः
गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणा नायकमेकमीशम् ।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्तमिष्टं तथालिङ्गितमाचरन्ति ॥ १६ ॥
ते सन्निपत्य स्मितमाचरन्ति गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः ।
आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं शुभाङ्ग (भ्रूभङ्ग) मन्ये विचरन्ति तेन ॥ १७ ॥
आशारमथैकामपि वासुदेवो मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्टः ।
करोति भोगान्मनसि प्रवृत्ति मायानुभूयन्त इतीव सम्यक् ॥ १८ ॥
विभाति विश्वामरविश्वनाथः समाधवस्त्रीगणसन्निविष्टः ।
अशेषशक्त्या समयं निविष्टो यथैकशक्त्या सह देवदेवः ॥ १९॥
करोति नित्यं परमं प्रधानं तदा विरूढः पुनरेव भूयः ।
ययौ समारुह्य हरिः स्वभावं तमीदृशं नाम तमादिदेवम् ॥ २० ॥
दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्रानपि च केशवम् ।
मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं सन्दधिरे भृशम्॥ २१ ॥
अतीवपरुषं वाक्यं प्रोचुर्देवंकपर्द्दिनम् । शेपुश्चविविधैर्वाक्यैर्मायायातस्यमोहिताः
तपांसि तेषां सर्वेषांप्रत्याहन्यन्तशङ्करे । यथादित्यप्रतीकाशेतारकानभसिस्थिताः
तं भर्त्स्य तापसा विप्राः समेत्य [illegible] ।

को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिताः ॥ २४ ॥

सोऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः । इदानीं भार्यया देशे भवद्भिरिह सु

तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुङ्गवाः ।
ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर ॥ २५ ॥
अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीललोहितः ।
सम्प्रेक्ष्य जगतां योनिं पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम् ॥ २६ ॥
कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्सुकैः ।
त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मज्ञैः शान्तमानसैः ॥ २७ ॥

ऋषय(मुनय) ऊचुः

व्यभिचाररता भार्या सन्त्याज्या पतिनेरिता ।
अस्माभिरेषा सुभगा नेदृशास्त्याज्यमर्हति ॥ २८ ॥

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रा मनसाप्यन्यमिच्छति । नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामि कदा

ऋषय ऊचुः

दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभिः पुरुषाधम । उक्तं ह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमे
एवमुक्ते महादेवः सत्यमेव मयेरितम् । भवता प्रतिभा ह्येषा त्युक्त्वासौ विचच
सोऽगच्छद्धरिणा सार्द्धं मुनीन्द्रस्य महात्मनः । वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थी परमे
दृष्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती । वसिष्ठस्य प्रिया भार्या प्रत्युद्गम्य ननाम
प्रक्षाल्य पादौ विमलं दत्त्वा चासनमुत्तमम् । सम्प्रेक्ष्य शिथिलं गात्रमभिघातहतं द्वि
सन्धयामास भैषज्यैर्विषण्णवदना सती ॥ ३५ ॥
चकार महतीं पूजां प्रार्थयामास भार्यया । को भवान्कुत आयातः किमाचारो भवा
उच्यतामाह भगवान्सिद्धानां प्रवरो ह्यहम् ॥ ३६ ॥
यदेतन्मण्डलं शुभ्रं भाति ब्रह्ममयं सदा । एषैव देवता मह्यं धारयामि सदैव तु ॥ ३
इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमाननुगृह्य पतिव्रताम् । ताडयाञ्चक्रिरे दण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्वि

दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतिलक्षणम् । प्रोचुरेतद्भवल्लिङ्गमुत्पाटय सुदुर्मते! ॥
तानब्रवीन्महायोगी करिष्यामीतिशङ्करः । युष्माकं मामकेलिङ्गेयदिद्वेषोऽभिजायते
उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान्भगनेत्रहा । नापश्यंस्तत्क्षणादीशं केशवं लिङ्गमेव च
तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः । न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुनः
निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधिः ॥ ४२ ॥
अपश्यच्चानुसूयात्रेः स्वप्नं भार्यापतिव्रता । कथयामासविप्राणांभयादाकुलितेन्द्रिया
तेजसा भासयन्कृत्स्नं नारायणसहायवान् ।
भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति ॥ ४४ ॥
तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः । सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम्
उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः । चतुर्वेदैर्मूर्त्तिमद्भिः सावित्र्यासहितंप्रभुम
आसीनमासनेरम्येनानाश्चर्यसमन्विते । प्रभासहस्रकलिलेज्ञानैश्वर्य्यादिसंयुते ॥ ४७
विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम् ।
चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम् ॥ ४८ ॥
विलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम् । शिरोभिर्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम्
तान्प्रसन्नोमहादेवश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्मुखः । व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्॥
तत्तस्य वृत्तमखिलंब्रह्मणःपरमात्मनः । ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसिवाञ्जलिम्

ऋषय ऊचुः

कश्चिद्दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः । भार्य्ययाचारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्नएवहि
मोहयामास वपुषा नारीणांकुलमीश्वरः । कन्यकानांप्रियोयस्तुदूषयामासपुत्रकान्
अस्माभिर्विविधाः शापाः(वाताःप्रवृत्ताः) प्रवृत्तास्ते पराहताः ।
ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गन्तु विनिपातितम् ॥ ५४
अन्तर्हितश्च भगवान्सभार्यो लिङ्गमेव च । उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयङ्कराः
क एष पुरुषो देवः भीताः स्मः पुरुषोत्तम !॥ भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत!॥
त्वंहिवेत्सिजगत्यस्मिन्यत्किञ्चिदिह चेष्टितम् । अनुग्रहेण युक्तेन तदस्माननुपालय

विज्ञापितोमुनिगणैर्विश्वारमाकमलोद्भव । ध्यात्वादेव त्रिशूलाङ्कं कृताञ्जलिरभाषत

ब्रह्मोवाच

कष्टमधतामद्य आर्तसर्वार्थनाशनम् । धिग्बलं धिक्तपश्चर्यां मिथ्यैव भवतामिह
सम्प्राप्य पुण्यसंस्काराविधीनापरमनिधिम् । उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिहमोहितैः
काङ्क्षन्तेयोगिनोनित्यंयतन्तोयतयोनिधिम् । यमेव त समासाद्यहामवद्भिरुपेक्षितम्
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्तेर्वेदवादिन । महानिधिं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्
यमचर्चयित्वासततविश्वैश्वर्यमिदमम । स दृष्टापेक्षितो दृष्टा निधानन्भाग्यवर्जिता
यस्मिन्समाहिते दिव्यमैश्वर्यं यत्तदव्ययम् ।
समासाद्य निधिं ब्रह्म हा भवद्भिर्वृथाकृतम् ॥ ६४ ॥

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वर । न तस्य परमं किञ्चित्पदं समधिगम्यते ॥
देवतानामृषीणां च पितृणाञ्चापिशाश्वत । सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम् ॥
संहरत्येष भगवान्कालो भूत्वा महेश्वर । एष चैव प्रजा सर्वाः सृजत्येष स्वतेजसा
एष चक्री चक्रवर्ती श्रीवत्सकृतलक्षण । योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ एव च
द्वापरे भगवान्कालो धर्मकेतु कलौ युगे (भव)॥ ६८ ॥
रुद्रस्य मूर्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम् ।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति स्मृतिः ॥ ६९ ॥
मूर्तिरन्यास्मृताचास्य दिग्वासा वै शिवा ध्रुवा ।
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ॥ ७० ॥

याचास्य पार्श्वगा भार्याभवद्भिरभिभाषिता । सहिनारायणोदेव परमात्मासनातन
तस्मात्सर्वमिदं जात तत्रैव च लयमेत् । स एषमोचयेत्तत्त्वं स एवच परागति
सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् । एकशृङ्गो महानात्मानारायण इतिश्रुति
रेतोऽस्यगर्भोभगवानापोमायातनु प्रभु । स्तूयतेविविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्मोक्षकाङ्क्षिभि
संहृत्य सकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तम ।
शेते योगामृतं पीत्वा यत्र विष्णो परम्पदम् ॥ ७५ ॥

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा । अत्रानन्तरं भावं वीतरागा विमत्सराः
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतेषु गुहासु च । नदीनां च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च

शैवालभोजनाः केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः ।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठे ह्यधिष्ठिताः ॥ १० ॥
दन्तोलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथापरे ।
शाकपर्णाशनाः केचित्सम्प्रक्षाला मरीचिपाः ॥ ११ ॥

वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे । कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम्
ततस्तेषां प्रसादार्थं प्रपन्नार्तिहरो हरः । चकार भगवान्बुद्धिं बोधयन्वृषभध्वजः ।
देवः कृतयुगे ह्यस्मिञ्छृङ्गे हिमवतः शुभे । देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः ।
भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः । उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः
क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद्गायति विस्मितः । क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारं क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः
आश्रमे ह्यटते भिक्षुर्याचते च पुनः पुनः । मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागतः
कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पार्श्वे देवः पिनाकधृक् । सा च पूर्ववद्देवेशी देवदारुवनं गता ।
दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्दिनम् । प्रणेमुः शिरसा भूमौ तोषयामासुरीश्वरम्
वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैः स्तोत्रैर्माहेश्वरैः शुभैः । अथर्वशिरसा चान्ये रुद्राद्यैरर्चयन्भवम् ।
नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः । त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे ।
नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने । सर्वप्रणतदेवाय स्वयमप्रणतात्मने ।
अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च । नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे
नरनारीशरीराय योगिनां गुरवे नमः । नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च

विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे ।
नमस्ते लेलिहानाय शितिकण्ठाय ते नमः ॥ २५ ॥

अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः । नमः कनकमालाय देव्याः प्रियकराय च ॥२६॥
गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने । नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः ॥
प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गधारिणे । नमस्ते हव्यवाहाय दंष्ट्रिणे हव्यरेतसे

ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे । आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च

विश्वेश्वर! महादेव! योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ।

नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम् ॥ ३० ॥

कपालपाणये तुभ्यं नमो गुह्यतमाय ते । नमः कनकलिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः ॥

नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः । नमो भुजङ्गहाराय कर्णिकारप्रियाय च

किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः ॥ ३२ ॥

महादेव! महादेव! देवदेव! त्रिलोचन !। क्षम्यतां यत्कृतं मोहात्त्वमेव शरणं हि नः ॥

चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च । ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽसि शङ्कर

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यत्किञ्चित्कुरुते नरः । तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं प्रहृष्टेनान्तरात्मभिः । ऊचुः प्रणम्य गिरिशं पश्यामस्त्वां यथापुरा

तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोमः सोमविभूषणः । स्वमेव परमं रूपं दर्शयामास शङ्करः ॥

तं ते दृष्ट्वाथ गिरिशं देव्या सह पिनाकिनम् । यथापूर्वं स्थिता विप्राः प्रणेमुर्हृष्टमानसाः

ततस्ते मुनयः सर्वे संस्तूय च महेश्वरम् । भृग्वङ्गिरा वसिष्ठस्तु विश्वामित्रस्तथैव च

गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । मरीचिः कश्यपश्चापि संवर्तकमहातपाः

प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४० ॥

कथं त्वां देवदेवेश! कर्मयोगेन वा प्रभो । ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सदैव हि ॥

केन वा देवमार्गेण सम्पूज्यो भगवानिह । किं तत्सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद्ब्रवीहि नः

देवदेव उवाच

एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम् । ब्रह्मणा कथितम्पूर्वं महादेवे महर्षयः ॥

साङ्ख्ययोगाद्द्विधा ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम् ।

योगेन सहितं साङ्ख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम् ॥ ४४ ॥

न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुषः परः । ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम् ॥४५॥

भवन्तः केवलं योगं समाश्रित्य विमुक्तये । विहाय साङ्ख्यं विमलमकुर्वत परिश्रमम्

एतस्मात्कारणाद्विप्रा नृणां केवलकर्मणाम् ।

भागतोऽहमिम देशं ज्ञापयन्मोहसम्भवम् ॥ ४७ ॥

तस्माद्युष्मद्विविमल ज्ञान कैवल्यसाधनम् । ज्ञातव्य हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं द्रष्टव्यमेव च

एक सर्वगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रक ।

आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै साङ्ख्यदर्शनम् ॥ ४९ ॥

एतदेव पर ज्ञानमेष मोक्षोऽनुगीयते । एतत् कैवल्यममल ब्रह्मभावश्च वर्णित ॥ ५०

आश्रित्य चैन परम तन्निष्ठास्तत्परायणा ।

पश्यन्ति मा महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥ ५१ ॥

एतत्तत्परम ज्ञान केवल सन्निरञ्जनम् । अह हि वेद्यो भगवान्मम मूर्तिरिय शिवा

बहूनि साधनानीह सिद्धये कथितानि तु । तेषामभ्यधिक ज्ञान मामक द्विजपुङ्गवा

ज्ञानयोगरता शान्ता मामेव शरण गता । ये हि मा भस्मनिरता ध्यायन्ति सततं हृदि

मद्भक्तितत्परा नित्य यतय क्षीणकल्मषा । नाशयाम्यचिरात्तेषां घोर ससारसागरम्

निर्मित हि मया पूर्व व्रत पाशुपत शुभम् । गुह्याद्गुह्यतम सूक्ष्म वेदसार विमुक्तये

प्रशान्त सयतमना भस्मोद्धूलितविग्रह । ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रत पाशुपत चरेत् ॥

यद्वा कौपीनवसन स्यादेकवसनो मुनि । वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पशुपतिं शिवम्

एष पाशुपतो योग सेवनीयो मुमुक्षुभि । तन्निष्ठैर्नित्यतैस्तु पण्डितैर्निष्कामैरिति हि श्रुतम्

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता । बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागता ॥

अ यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु ।

वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु ॥ ६१ ॥

वाम पाशुपत सोम लाकुल चैव भैरवम् । असेव्यमेतत्कथित वेदबाह्य तथेतरम् ॥

वेदमूर्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभि । ज्ञायते मत्स्वरूपन्तु मुक्त्वा वेद सनातनम्

स्थापयध्वमिद मार्गं पूजयध्व महेश्वरम् । ततोऽचिराद्वैश्वर ज्ञानमुत्पत्स्यति न सशय

मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमा ।

ध्यानमात्रे हि सान्निध्य दास्यामि मुनिसत्तमा ॥ ६५ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।

तेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शङ्करम् ॥ ६६ ॥
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः । समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः
विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ।
किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ॥ ६८ ॥
कोऽपिस्यात्सर्वभावानांहेतुरीश्वरएवच । इत्येवंमन्यमानानांध्यानमार्गावलम्बिनाम्
आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥ ६९ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता ।
स्वभाभिर्निर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम् ॥ ७० ॥
तामन्वपश्यद्गिरिजाममेयां ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।
प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति चैतत्परमस्य बीजम् ॥ ७१ ॥
अस्माकमेषा परमस्य पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।
पश्यन्त्यथात्मानमिदञ्च कृत्स्नं तस्यामथैते मुनयः प्रहृष्टाः ॥ ७२ ॥
निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम्
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥ ७३ ॥
आलोक्य देवीमथ देवमीशं प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम् ।
ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादादाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु ॥ ७४ ॥
इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।
माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिधाना दिवि राजतीव ॥ ७५ ॥
अस्यां महान्परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः ।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः ॥ ७६ ॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥ ७७ ॥
अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो देव्या तयासह देवाधिदेवः ।
आराधयन्ति स्म तमादिदेवं वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥ ७८ ॥

आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन्मोहसम्भवम् ॥ ५३ ॥

तस्माद्भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम् । ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं द्रष्टव्यमेव च ॥

एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः ।

आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै सांख्यदर्शनम् ॥ ५४ ॥

एतदेव परं ज्ञानमेष मोक्षोऽनुगीयते । एतत्कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः ॥५५॥

आश्रित्य चैतत्परमं तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।

पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥ ५६ ॥

एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम् । अहं हि वेद्यो भगवान्मम मूर्तिरियं शिवा ॥ बहूनि साधनानीह सिद्धये कथितानि तु । तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गवाः ॥ ज्ञानयोगरताः शान्ता मामेव शरणं गताः । ये हि मां भस्मनिरता ध्यायन्ति सततं हृदि ॥ मद्भक्तितत्परा नित्यं यतयः क्षीणकल्मषाः । नाशयाम्यचिरात्तेषां घोरं संसारसागरम् ॥ निर्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं शुभम् । गुह्याद्गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये ॥ प्रशान्तः संयतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः । ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥ यद्वा कौपीनवसनः स्याद्वैकवसनो मुनिः । वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पशुपतिं शिवम् ॥ एष पाशुपतो योगः सेवनीयो मुमुक्षुभिः । तस्मिन्नित्यरतैस्तु पठितं निष्कामैरिति हि श्रुतम् ॥ वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः । बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः ॥

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु ।

वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु ॥ ६१ ॥

वामं पाशुपतं सोमं लाकुलं चैव भैरवम् । असेव्यमेतत्कथितं वेदबाह्यं तथेतरम् ॥ वेदमूर्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः । ज्ञायते मत्स्वरूपं तु मुक्त्वा वेदं सनातनम् ॥ स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम् । अचिरादैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः ॥

मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः ।

ध्यानमात्राद्धि सान्निध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः ॥ ६५ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।

तेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शङ्करम् ॥ ६६ ॥
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः । समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः
विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ।
किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ॥ ६८ ॥
कोऽपिस्यात्सर्वभावानांहेतुरीश्वरएवच । इत्येवंमन्यमानानांध्यानमार्गावलम्बिनाम्
आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥ ६९ ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता ।
स्वभाभिर्निर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम् ॥ ७० ॥
तामन्वपश्यद्गिरिजाममेयां ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।
प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति चैतत्परमस्य बीजम् ॥ ७१ ॥
अस्माकमेषा परमस्य पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।
पश्यन्त्यथात्मानमिदञ्च कृत्स्नं तस्यामथैते मुनयः प्रहृष्टाः ॥ ७२ ॥
निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम्
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥ ७३ ॥
आलोक्य देवीमथ देवमीशं प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम् ।
ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादादाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु ॥ ७४ ॥
इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।
माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिधाना दिवि राजतीव ॥ ७५ ॥
अस्यां महान्परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः ।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः ॥ ७६ ॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥ ७७ ॥
अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो देव्या तयासह देवाधिदेवः ।
आराधयन्ति स्म तमादिदेवं वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥ ७

एतद्वः कथितं सर्वं दक्षयज्ञस्य चेष्टितम् । देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम् ॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि मुच्यते सर्वपातकैः ।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान् स याति परमां गतिम् ॥ ८० ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे देवदारुवनप्रवेशो नामैकोन-
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेययुधिष्ठिरसम्वादनर्मदामाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

एषा पुण्यतमा देवी देवगन्धर्वसेविता । नर्मदा लोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी ॥ तस्याः शृणुध्वं माहात्म्यं मार्कण्डेयेन भाषितम् । युधिष्ठिराय तु शुभं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतास्ते विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादान्महामुने ।
माहात्म्यञ्च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च ॥ ३ ॥

नर्मदा सर्वतीर्थानां मुख्या हि भवतेरिता । तस्यास्त्विदानीं माहात्म्यं वक्तुमर्हसि सत्तम ॥

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता । तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम् । इदानीं तत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः शुभम् ॥ पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥ त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् । सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ॥ कलिङ्गदेशपश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके । पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ॥ ॥ सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र सिद्धिं तु परमां गताः

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥ १६ ॥

योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा । विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च । पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके

ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
सर्व्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्व्वभूतहिते रतः ॥ १९ ॥

एवंशुद्धसमाचारोयस्तु प्राणान्परित्यजेत् । तस्यपुण्यफलंराजञ्छृणुष्वावहितोऽनघ
शतंवर्षसहस्राणिस्वर्गे मोदतिपाण्डव ॥ अप्सरोगणसङ्कीर्णोदिव्यस्त्रीपरिवारितः
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः । क्रीडतेदिव्यलोके तुविबुधैः सहमोदते
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टोराजाभवतिधार्मिकः । गृहंतु लभतेऽसौवैनानारत्नसमन्वितम्
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम् । आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीशतसमन्वितम्
राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः । जीवेद्वर्षशतं साग्रंतत्र भोगसमन्वितः ॥
अग्निप्रवेशेऽथ जले वाथवानशने कृते । अनिवर्त्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा
पश्चिमे पर्वततटेसर्वपापविनाशनः । ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२२
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा । दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्न संशयः
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्यामहानदी । सरलार्जुनसञ्छन्नानातिदूरे व्यवस्थिता
सा तु पुण्यामहाभागात्रिषुलोकेषुविश्रुता । तत्रकोटिशतंसाग्रंतीर्थानान्तुयुधिष्ठिर

तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमाङ्गतिम् ॥ २६ ॥

द्वितीयातुमहाभागाविशल्यकरणीशुभा । तत्रतीर्थेनरःस्नात्वाविशल्योभवतिक्षणात्
कपिला च विशल्या च श्रूयेते सरिदुत्तमे । ईश्वरेण पुराप्रोक्ते लोकानांहितकाम्यया
अनाशकन्तुयः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ सर्वपापविशुद्धात्मारुद्रलोकेसगच्छति
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् । ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्तिते
सरस्वत्याञ्च गङ्गायांनर्मदायांयुधिष्ठिर ॥ समं स्नानञ्च दानञ्च यथामेशङ्करोऽब्रवीत्

परित्यजन्ति ये प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके । वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥
नर्मदायां जलं पुण्यं फेनोर्मिसमलंकृतम् । पवित्रं शिरसा धृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी । अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया
जालेश्वरं तीर्थवरं सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र गत्वा नियमवान्सर्वकामाल्लभेन्नर
चन्द्रसूर्योपरागे च गत्वा ह्यमरकण्टकम् । अश्वमेधाद्दशगुणं पुण्यमाप्नोति मानवः
एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः । नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः
तत्र सन्निहितो राजन्देव्या सह महेश्वरः । ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैः सह
प्रदक्षिणन्तु यः कुर्यात्पर्वतेऽमरकण्टके । पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः
कावेरी नाम विख्याता नदी कल्मषनाशिनी । तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयेद्वृषभध्वजम्
सङ्गमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते ॥ ४० ॥

इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे मार्कण्डेययुधिष्ठिरसंवादे नर्म्मदामाहात्म्य
वर्णननाम चत्वारिंशोऽध्यायः

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्यवर्णनेनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी । मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुवा
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी । रुद्रगात्राद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता । संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च ॥ ३ ॥
उत्तरे चैव कूले च तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतं । नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते । ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् । ततोऽङ्गारकेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! केदारं नाम पुण्यदम्

तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
निष्फलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ॥ ८ ॥

तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! बाणतीर्थमनुत्तमम्

तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।
ततः पुष्करिणीं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ १० ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्सिंहासनपतिर्भवेत् । शक्रतीर्थं ततो गच्छेत्कूलेचैवतुदक्षिणे
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्रशूलभेदइतिश्रुतिः
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचगोसहस्रफलंलभेत् । उपोष्यरजनीमेकांस्नानंकृत्वायथाविधि
आराधयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः । गोसहस्रफलम्प्राप्य विष्णुलोकंसगच्छति
ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकेमहीयते
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्
यत्रतप्तंतपः पूर्वंनारदेन सुरर्षिणा । प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः ॥१७॥

ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम् ।
यत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते ॥ १८ ॥

ऋणतीर्थं ततोगच्छेदृणान्मुच्येन्नरो ध्रुवम् । वटेश्वरंततोगच्छेत्पर्याप्तं जन्मनःफलम्
भीमेश्वरं ततोगच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैःप्रमुच्यते
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र! कपिलां यः प्रयच्छति ।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥ २२ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप !॥
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठन्ति मानवाः

ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।
ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद्व्यासतीर्थं तपोवनम् ॥ २५ ॥

निवर्तिता पुरा तत्र व्यासार्थाय महानदी । हुङ्कारिता तु व्यासेन दक्षिणेनैव गच्छति ।
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर ।
प्रीतस्तस्य भवेद्व्यासो वाञ्छितं लभते फलम् ॥ २९ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु सङ्गमम् । त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्र सन्निहितः शिवः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात् ।
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३१ ॥

आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति । तत्रैव सङ्गमः पुण्यं ततोऽप्यमृतमुत्तमम्
उपासते महात्मानं स्कन्दं शक्तिधरं प्रभुम् । ततो गच्छेदाङ्गिरसं स्नानं तत्र समाचरेत्
गोसहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति । अङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम्
तपसाऽऽराध्य विश्वेशं लब्धवान्योगमुत्तमम् ।
कुशतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३३ ॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत् । कोटितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्
आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति ।
चन्द्रभागां ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ३५ ॥

स्नानमात्रेण तस्यैव सोमलोके महीयते । नर्मदादक्षिणे कूले सङ्गमेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वयज्ञफलं लभेत् । नर्मदायोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्
आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेणतु भाषितम् । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्त्वा दानं तु शक्तितः
तस्य तीर्थप्रभावेण लभते चाक्षयं फलम् । दरिद्रा व्याधिता ये तु ये तु दुष्कृतकारिणः
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च । मासेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्
स्नानमात्रे नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।
ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुदालयमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः । काञ्चनं तु द्विजे दद्याद्यथाविभवविस्तरम्
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति । ततो गच्छेत राजेन्द्र अहल्यातीर्थमुत्तमम्
स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमुत्तमम् (महत्तम) ॥ ४३ ॥

त्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी। कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तुपूजयेत्
त्र तत्र समुत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियोभवेत्। स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः
तरिद्विरां समासाद्यतीर्थं शक्रस्यविश्रुतम्। स्नातमात्रोनरस्तत्र गोसहस्रफलंलभेत्

सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥

सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत्। त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्
यस्तु चान्द्रायणंकुर्यात्तत्रतीर्थेसमाहितः। सर्वपापविशुद्धात्मासोमलोकंसगच्छति
अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्सोमतीर्थे नराधिप॥ जले चानशनञ्चापिनासौमर्त्योहिजायते

स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ॥ ५१ ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र! विष्णुतीर्थमनुत्तमम्।
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः। तत्र तीर्थंसमुत्पन्नंविष्णुश्रीकोभवेदिह
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति। नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्॥

कामतीर्थमितिख्यातं यत्र कामोऽर्चयद्धरिम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ॥ ५५ ॥

कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते। ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥५६

उमाहकमिति ख्यातं तत्र सन्तर्पयेत्पितॄन्।
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥ ५७ ॥

गजरूपाशिलातत्रतोयमध्येव्यवस्थिता। तस्मिंस्तुदापयेत्पिण्डान्वैशाखेतुसमाहितः
स्नात्वासमाहितमनादम्भमात्सर्यवर्जितः। तृप्यन्तिपितरस्तस्यतावत्तिष्ठतिमेदिनी
विश्वेश्वरंततोगच्छेत्स्नानंतत्रसमाचरेत्। स्नातमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत्

ततो गच्छेत राजेन्द्र! लिङ्गो यत्र जनार्दनः।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ ६१ ॥

यत्र नारायणो देवो मुनीनां भावितात्मनाम् ।
स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत्परमम्पदम् ॥ ६२ ॥

अङ्कोलन्तु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् । स्नानन्दानन्तत्रैव ब्राह्मणानाञ्च भोजन
पिण्डप्रदानञ्च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम् ।
त्रियम्बकेन तोयेन चरुञ्च श्रपयेद्द्विजः ॥ ६४ ॥

अङ्कोलमूले दद्याच्च पिण्डांश्चैव यथाविधि । तारिता पितरस्तेन तृप्यन्त्याचन्द्रतारक
ततो गच्छेन्नराजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र प्राप्नुयात्तपस फल
शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् । नास्ति तेन समं तीर्थं नर्मदायां युधिष्ठि
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य स्नानाद्ध्यानात्तपोजपात् ।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत्फलम् ॥ ६८ ॥

योजनन्तत्स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम् । शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापविनाशन
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति । देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शङ्कर
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां वैशाखे मासि सुव्रत । कैलासाच्चाभिनिष्क्रम्य तत्र सन्निहितो ह
देवदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा । गणाश्चाप्सरसो नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुङ्गव
रञ्जितं हि यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा । आजन्मजनितं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोह
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते । शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भविष्यति पावन
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः । अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोह
कार्त्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी । घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वर
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेतैश्वरात्पदात् । तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुन
न तां गतिमवाप्नोति शुक्लतीर्थे तु यां लभेत् । शुक्लतीर्थं महातीर्थं मृषिसिद्धनिषेवित
तत्र स्नात्वा नरो राजन्पुनर्जन्म न विन्दति । अयने वा चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथ
स्नात्वा तु सोपवासः सन्विजितात्मा समाहितः ।
दानं दद्याद्यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशङ्करौ ॥ ८० ॥

एतत्तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् । अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा

उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु । यावत्तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! यमतीर्थमनुत्तमम् ॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर !।
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद्योनिसङ्कटम् ॥ ८४ ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र! एरण्डीतीर्थमुत्तमम् । संगमे तु नरः स्नात्वाऽपवासपरायणः
ब्राह्मणं भोजयेदेकंकोटिर्भवतिभोजिताः । एरण्डीसङ्गमेस्नात्वाभक्तिभावात्तुरञ्जितः
मृत्तिकांशिरसिस्थाप्यअवगाह्य चतज्जलम् । नर्मदोदकसंमिश्रंमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः
ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थंकल्लोलकेश्वरम् । गङ्गाऽवतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्वा चैव यथाविधि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८६ ॥
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानंसमाचरेत् । प्रीयते तत्र नन्दीशःसोमलोकेमहीयते
ततो गच्छेत राजेन्द्र!तीर्थं त्वनरकं शुभम् । तत्र स्नात्वानरोराजन्नरकं नैव पश्यति
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत् ।
रूपवाञ्जायते लोके धनभोगसमन्वितः ॥ ९२ ॥
ततोगच्छेतराजेन्द्रकपिलातीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलंलभेत्
ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्तेचतुर्दश्यां विशेषतः । तत्रोपोष्य नरोभक्त्यादत्त्वा दीपंघृतेनतु
घृतेन स्नापयेद्रुद्रं ततो वै श्रीफलं लभेत् । घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां वै प्रदापयेत्
सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः । शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत्क्रीडते सदा ॥
अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः ।
स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ॥ ९७ ॥
सर्वदेवसमायुक्तो विमाने सर्वकामिके । गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते
ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टोधृतिमान्भोगवान्भवेत् । अङ्गारकनवम्यांतु अमावास्यांतथैवच
स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र! गणेश्वरमनुत्तमम्
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी । स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोकेमहीयते

पितॄणा तर्पणं कृत्वा मुच्यतेसऋणत्रयात् । गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्त
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानव ।
आजन्मजनितैं पापैर्मुच्यते नात्र सशय ॥ १०३ ॥
तस्य वै पश्चिमे भागे समीपेनातिदूरत । दशाश्वमेधिक तीर्थं त्रिषु लोकेषुविश्रु
उपोष्य रजनीमेका मासिमाद्रपदे शुभे । अमावास्या हर स्नात्वपूजयेद्गोवृषध्य
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना । गत्वा रुद्रपुर रम्य रुद्रेण सह मो
सर्वत्र सर्वदिवसे स्नान तत्र समाचरेत् । पितॄणा तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलल
इतिश्रीकूर्म्ममहापुराणेउत्तरार्द्धेनर्मदामाहात्म्येनानातीर्थमाहात्म्यवर्णननामै
कचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्येनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र भृगुतीर्थमनुत्तमम् । तत्र देवो भृगु पूर्वं रुद्रमाराधयत्
दर्शनात्तस्य देवस्य सद्य पापात्प्रमुच्यते । एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाश
तत्रस्नात्वादिवयान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवा । उपानहौतथायुग्म देयमन्नञ्चकाञ्च

[illegible]

यत्राराध्यत्रिशूलाङ्कगौतम सिद्धिमाप्तवान् । तत्र स्नात्वानरो राजन्नुपवासपराय
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ।
गवोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

न जानन्ति नरा मूढा विष्णोर्मायाविमोहिताः । धौतपापं ततो गच्छेद्धौतं यत्र वृषेण तु
नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम् । तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां विमुञ्चति
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र! प्राणत्यागं करोति यः । चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च हरतुल्यबलो भवेत्
वसेत्कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः । कालेन महता जातः पृथिव्यामेकराड्भवेत्
ततो गच्छेत राजेन्द्र! हंसतीर्थमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते
ततो गच्छेत राजेन्द्र यत्र सिद्धो जनार्दनः । वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम्
ततो गच्छेत राजेन्द्र! चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् । पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड्भवेत् । देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थनमस्कृतम्
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र! दैवतैः सह मोदते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! शिखितीर्थमनुत्तमम्
यत्तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं पैतामहं शुभम्
यत्तत्र दीयते श्राद्धं सर्वं तस्याक्षयं भवेत् । सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते । मनोहरं तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ॥ २०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र कन्यातीर्थमनुत्तमम्
स्नात्वा तत्र नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते । शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानमात्रं समाचरेत्
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड्भवेत् । स्वर्गबिन्दुं ततो गच्छेत्तीर्थं देवनमस्कृतम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दुर्गतिं वै न पश्यति । अप्सरेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्
क्रीडते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभिः स मोदते । ततो गच्छेत राजेन्द्र! भारभूतिमनुत्तमम्
उपोषितो यजेदीशं रुद्रलोके महीयते । अस्मिंस्तीर्थे मृतो राजन्गाणपत्यमवाप्नुयात्
कार्तिके मासि देवेशमर्चयेत्पार्वतीपतिम् । अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः
वृषभं यः प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसप्रभम् । वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति
एतत्तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं स गच्छति
एरण्ड्या नर्मदायास्तु सङ्गमं लोकविश्रुतम् । तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्
उपवासकृतो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया

तती गच्छेत राजेन्द्र ! नर्मदोदधिसङ्गमम् ।

जमदग्निमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ॥ ३३ ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदोदधिसङ्गमे । त्रिगुणञ्चाश्वमेधस्य फलम्प्राप्नोति मानवः

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते

तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम् ।

सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम् ॥ ३६ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र अलितीर्थमनुत्तमम् । उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशन

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ।

एतानि तव सङ्क्षेपात्प्राधान्यात्कथितानि च ॥ ३८ ॥

न शक्या विस्तराद्वक्तुं संख्या तीर्थेषु पाण्डव !।

एषा पवित्रा विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता ॥ ३९ ॥

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा । मनसा संस्मरेद्यस्तु नर्मदां वै युधिष्ठिर

चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः ।

अश्रद्दधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः ॥ ४१ ॥

पतन्ति नरके घोरे इत्याह परमेश्वरः । नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वर

तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥ ४२ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्ये नानातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम्। महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम्
महादेवं दिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिना। ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः

मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा।
भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥ ३॥

समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्त्ति चतुर्मुखम्। पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमव्ययम्

षट्कुलीया ऊचुः

भगवन्देवमीशानं तमेवैकं कपर्दिनम्। केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देव! नमस्तव

ब्रह्मोवाच

सत्रं सहस्रमासध्वं वाङ्मनोदोषवर्जिताः। देशञ्च वः प्रवक्ष्यामि यस्मिन्देशे चरिष्यथ
मुक्त्वा मनोमयं चक्रं संस्पृष्ट्वा तानुवाच ह। क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत माचिरम्
यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपसः शुभः। ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत्समनुव्रजन्
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत। नैमिषं तत् स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्
सिद्धचारणसम्पूर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्। स्थानं भगवतः शम्भोरेतन्नैमिषमुत्तमम्
अत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान्वरान्

इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः।
सत्रेणाऽऽराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥ १२॥

अत्र दानं तपस्तप्तं श्राद्धयागादिकञ्च यत्। एकैकं नाशयेत्पापं सप्तजन्मकृतं तथा
अत्र पूर्वं स भगवानृषीणां सत्रमासताम्। स वै प्रोवाच ब्रह्माण्डं पुराणं ब्रह्मभावितम्
अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वदृक्। रमतेऽद्यापि भगवान्प्रमथैः परिवारितः

यत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः ।
ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते ॥ १६ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमिति श्रुतम् । जजाप रुद्रमनिशं यत्र नन्दी महागणः ॥
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकधृक् । ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च ॥

अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित् ।
आराधयन्महादेवं पुत्रार्थं वृषभध्वजम् ॥ १९ ॥

तस्य वर्षसहस्रान्ते तप्यमानस्य विश्वधृक् । शर्वः सोमो गणवृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥

स वव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम् ।
अयोनिजं मृत्युहीनं याचे पुत्रं त्वया समम् ॥ २१ ॥

तथास्त्वित्याह भगवान्देव्या सह महेश्वरः । पश्यतस्तस्य विप्रर्षेरन्तर्धानं गतो हरः ॥
ततो युयोज तां भूमिं शिलादो धर्मवित्तमः । चकर्षाङ्गलेनोर्वीं भित्त्वादृश्यत शोभनः ॥

संवर्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव ।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन्दिशः ॥ २४ ॥

कुमारतुल्योऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा । शिलाद तात तातेति प्राह नन्दी पुनः पुनः ॥

तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे ।
मुनीनां दर्शयामास तत्राश्रमनिवासिनाम् ॥ २६ ॥

जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह ।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम् ॥ २७ ॥

अधीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुत्तमाम् । चक्रे महेश्वरं दृष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिति प्रभुम् ॥

स गत्वा सागरं पुण्यमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ।
जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः ॥ २९ ॥

तस्य कोट्यां तु पूर्णायां शङ्करो भक्तवत्सलः ।
आगत्य सगणो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥ ३० ॥

स वव्रे पुनरेवेशं जपेयं कोटिमीश्वरम् । भवदाह महादेव देहीति परमेश्वरम् ॥

एवमस्त्विति सम्प्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत ।
जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः ॥ ३२ ॥
द्वितीयायाञ्च कोट्यां वै पूर्णायां वृषभध्वजः । आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः
तृतीयाञ्जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शङ्कर ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देव्या चान्तरधीयत ॥ ३४ ॥
कोटित्रयेऽथसम्पूर्णे देवः प्रीतमनाभृशम् । आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः
जपेयं कोटिमन्यां वै भूयोऽपि तवतेजसा । इत्युक्ते भगवानाह न जप्तव्यं त्वयापुनः
अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वं गतः सदा । महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भवमहेश्वरः
योगेश्वरो महायोगी गणानामीश्वरेश्वरः ।
सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वयज्ञमयो हितः ॥ ३८ ॥
ज्ञानं तदामकं दिव्यं हस्तामलकसञ्ज्ञितम् ।
आभूतसंप्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम् ॥ ३९ ॥
एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शङ्करः । अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्
उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक् ।
मरुताञ्च शुभां कन्यां स्वयमेति च विश्रुताम् ॥ ४१ ॥
एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः । यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते
इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जप्येश्वरसमीपतः । नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
त्रिरात्रमुषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम् । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते
अन्यच्च तीर्थप्रवरं शङ्करस्यामिततेजसः । महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम् ।
तीर्थानाञ्च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी । सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेव गिरीन्द्रजा
तीर्थं पञ्चतपो नाम शम्भोरमिततेजसः । यत्र देवाधिदेवेन शक्रार्थे पूजितो भव
पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्दसुखप्रदम् । मृतस्तत्रापि नियमाद् ब्रह्मलोके महीयते
कायावरोहणं नाम महादेवालयं शुभम् । यत्र माहेश्वरा धर्मा मुनिभिः सम्प्रवर्तिताः

श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः ।
परित्यजति यः प्राणान् रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ८ ॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र गत्वा त्यजेत्प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान् ॥ ९ ॥

जामदग्न्यस्य तु शुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः । तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत्

महाकालमिति ख्यातं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम् ।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

गुह्याद् गुह्यतमं तीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम् । तत्र सन्निहितः श्रीमान् भगवान्नकुलीश्वरः
हिमवच्छिखरे रम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने । देव्या सह महादेवो नित्यं शिष्यैश्च सम्भृत

तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम् ।
सर्वपापैर्विमुच्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात् ॥ १४ ॥
अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम् ।

भीमेश्वरमितिख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम् ॥ १५ ॥
तथान्यश्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः । तत्रस्नात्वाचपीत्वाचमुच्यतेब्रह्महत्यया
सर्वेषामपिचैतेषांतीर्थानांपरमापुरी । नाम्नावाराणसीदिव्याकोटिकोट्ययुताधिका
तस्याःपुरस्तान्माहात्म्यंभाषितंवोमयात्विह । नान्यत्रलभतेमुक्तिंयोगेनाप्येकजन्मना
एतेप्राधान्यतःप्रोक्ता देशाःपापहरा नृणाम् । गत्वा सङ्क्षालयेत्पापं जन्मान्तरशतैरपि
यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि ।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ॥ २० ॥
प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथायायावरोगृही । प्रकुर्यात्तीर्थसंसेवांयश्चान्यस्तादृशोजनः
सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥
ऋणानित्रीण्यपाकुर्यात्कुर्वन्वातीर्थसेवनम् । विधायवृत्तिंपुत्राणांभार्यांतेषुविधायच
प्रायश्चित्तप्रसङ्गेनतीर्थमाहात्म्यमीरितम् । यःपठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते
इतिश्रीकूर्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विधप्रलयवर्णनम्

सूत उवाच

एतदाकर्ण्यविज्ञानं नारायणमुखेरितम् । कूर्मरूपधरंदेवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम् ॥ १ ॥

मुनय ऊचुः

कथितोभवताधर्मोमोक्षज्ञानंसविस्तरम् । लोकानांसर्गविस्तारोवंशोमन्वन्तराणिच
इदानींदेवदेवेश! प्रलयं वक्तुमर्हसि । भूतानां भूतभव्येश! यथा पूर्वं त्वयोदितम् ॥

सूत उवाच

श्रुत्वानेषां तद्वाक्यंभगवान् कूर्मरूपधृक । व्याजहारमहायोगीभूतानांप्रतिसञ्चर

कूर्म्मं उवाच

नि यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतोऽत्यन्तिकस्तथा ।

चतुर्द्धाऽय पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चर ॥ ५ ॥

योऽयसंदृश्यतेनित्यंलोकेभूतक्षयस्त्विह । नित्य सङ्कीर्त्यतेनाम्नामुनिभिप्रतिसञ्च

ब्राह्मनैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति ।

त्रैलोक्यस्यास्य कथित प्रतिसर्गो मनीषिभि ॥ ७ ॥

महदाद्यंविशेषान्तं यदासयाति सक्षयम् । प्राकृत प्रतिसर्गोऽयप्रोच्यतेकालचिन्तकै

ज्ञानादात्यन्तिक प्रोक्तो योगिन परमात्मनि ।

प्रलय प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजै ॥ ६ ॥

आत्यन्तिकस्तुकथित प्रलयोज्ञानसाधन । नैमित्तिकमिदानीय कथयिष्येसमास

चतुर्युगसहस्रान्तेसम्प्राप्तेप्रतिसञ्चरे । स्वात्मसंस्था प्रजा कर्तुं प्रतिपेदेप्रजापति

ततोऽभवत्त्वनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी । भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयङ्क

ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीपते ।

तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति ॥ १३ ॥

सप्तरश्मिरथो भूत्वासमुत्तिष्ठन्दिवाकर । असह्यरश्मिर्भवतिपिबन्नम्भोगभस्तिभि

तस्य ते रश्मय सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे ।

तेनाऽऽहारेण ता दीप्त्या सप्तसूर्या भवन्त्युत ॥ १५ ॥

ततस्तेरश्मय सप्त शोषयित्वा चतुर्द्दिशम् । चतुर्लोकमिमंसर्वंदहन्ति शिखिनोया

व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊर्द्ध्वंचाधश्च रश्मिभि ।

दीप्यन्त भास्करा सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिता ॥ १७ ॥

ते सूर्यावारिणादीप्ता बहुसाहस्ररश्मय । ख समावृत्यतिष्ठन्तिप्रदहन्तो वसुन्धरा

ततस्तेषा प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा । साद्रिनद्यर्णवद्वीपा नि स्नेहा समप्रपद्य

जनलोके वर्त्तमानान्तापसान्योगचक्षुषा । अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवःप्रभवो विभुः
सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
मन्त्रोऽहं ब्राह्मणा गावः कुशोऽथ समिधो ह्यहम् ॥ ५७ ॥
प्रोक्षणीयं स्वयञ्चैवसोमोचनमथास्म्यहम् । संवर्त्तकोमहानात्मा पवित्रं परमंयशः
मेधाप्यहं प्रभुर्गोप्तागोपतिर्ब्राह्मणोमुखम् । अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतांवरः
हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्त्तिः सनातनः ।
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम् ॥ ६० ॥
माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यो न विद्यते ।
आदित्यवर्णा भुवनस्य गोप्ता नारायणः पुरुषो योगमूर्त्तिः ।
तं पश्यन्ते यतयो योगनिष्ठा ज्ञात्वात्मानं मम तत्त्वं व्रजन्ति ॥ ६१ ॥

इति श्रीकूर्म्ममहापुराणे उत्तरार्द्धे चतुर्विधप्रलयवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

प्रतिसर्गवर्णनम्

इन्द्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा । इन्द्रचापनिभाः केचित्तिष्ठन्ति घनाः दि
केचित्पर्वतसङ्काशाः केचिद्गजकुलोपमाः । कूटाङ्गारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्व
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः । तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभस्तल

ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजाः ।

सप्तधा संवृतात्मानं तमग्निं शमयन्त्युत (शमयेत्युत) ॥ ४१ ॥

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्तीह महौघवत् । सुघोरमशिवं सर्वं नाशयन्ति च पावक

प्रवृद्धैस्तदात्यर्थमम्भसा पूर्यते जगत् ।

अद्भिस्तेजोऽभिभूतत्वात्तदाग्निः प्रविशत्यप ॥ ४३ ॥

नष्टे चाग्नौ वर्षशतं पयोदाः क्षयसम्भवाः । प्लावयन्तो जगत्सर्वं महाजलपरिस्रवै
धाराभिः पूरयन्तीदं चोद्यमानाः स्वयम्भुवा । अत्यन्तसलिलौघास्तु वेलाइवमहोद
साद्रिद्वीपा तत पृथ्वी जलैः सञ्छाद्यते शनैः । आदित्यरश्मिभिः पीतजलमभ्रेषु तिष्ठ
पुनः पतति तद्भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः । ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रान्तास्तु कृत्स्न
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति । तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्ग
योगनिद्रां समास्थाय शेते देवः प्रजापतिः । चतुर्युगसहस्रान्तं कल्पमाहुर्मनीषि

वाराहो वर्तते कल्पो यस्य विस्तर ईरितः ।

असङ्ख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ॥ ५० ॥

कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः ।

सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥ ५१ ॥

तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषु प्रजापतेः । योऽयं प्रवर्तते कल्पो वाराहः सात्त्विको म

अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः ।

ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा ते योगिनः परम् ॥ ५३ ॥

आराध्य तत्र गिरिशं यान्ति तत्परमम्पदम् ।

सोऽहं तत्त्वं समास्थाय मायी मायामयां (यीं) स्वयम् ॥ ५४ ॥

एकार्णवे जगत्यस्मिन्योगनिद्रां व्रजामि तु । मां पश्यन्ति महात्मानः सत्यकाले महर्षय

व्यापिका मोहिनी शक्तिर्नारायण इति श्रुतिः ।
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगत्सदसदात्मकम् ॥ २६ ॥
सृजेदशेषं प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः ।
दुर्बलाः सर्वगाः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।
शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥ २७ ॥
सर्वेश्वराः सर्ववन्द्याःशाश्वतानन्तभोगिनः । एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुम्प्रधानेश्वरात्मकम्
अन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः ।
इत्येते विविधैर्यज्ञैः शक्रादित्यादयोऽमराः ।
एकैकस्याः सहस्राणि देहानां वै शतानि च ॥ २९ ॥
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा ।
तां शक्तिं समुपास्थाय स्वयं देवो महेश्वरः ॥ ३० ॥
रोति विविधान्देहान्दृश्यते चैव लीलया । इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभिः
र्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः । सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
ाधान्येनस्मृता देवाःशक्तयःपरमात्मनः । आभ्यःपरस्ताद्भगवान् परमात्मासनातनः
ीयते सर्वमायात्माशूलपाणिर्महेश्वरः । एकमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे ॥ ३४॥
न्द्रमेके परे प्राणं ब्रह्माणमपरे जगुः । ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वेदेवास्तथर्षयः ॥
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्तेपरिकीर्त्तिताः । यंयंभेदंसमाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्
तत्तद्रूपं समास्थायप्रददातिफलं शिवः । तस्मादेकतरं भेदंसमाश्रित्यापि शाश्वतम्
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम् । किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम्
आराधयेद गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम् ।
मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः ॥ ३९ ॥
आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत्परमेश्वरम् । पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम्
[illegible] न्तयेद्वैदिकीश्रुतिः । एषयोगःसमुद्दिष्टः सबीजोमुनिपुङ्गवाः
। अथ चेदसमर्थः स्यात्तत्रापि मुनिपुङ्गवाः

दग्धेष्वशेषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा । एषा सामाक्षिणी शम्भोस्तिष्ठते वैदिकाध्व
शिरः कपालैर्देवानां कृतस्रग्वरभूषणः । आदित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन्व्योममण्डल
सहस्रनयनो देवः सहस्राक्ष इतीश्वरः । सहस्रहस्तचरणः सहस्रा चिर्महाभुज
दंष्ट्राकरालवदनः प्रदीप्तानललोचनः । त्रिशूलकृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थित
पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम् । करोति ताण्डवं देवीमालोक्य परमेश
पीत्वा मृत्युमृतं देवी भर्तुः परममङ्गलम् । योगमास्थाय देवस्य देहमायाति शू

स भुक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक् ।
ज्योतिःस्वभावं भगवान्दग्ध्वा ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥ १३ ॥
संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मा विष्णु पिनाकधृक् ।
गुणैरशेषैः पृथिवी विलयं याति वारिषु ॥ १४ ॥
स वारितत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहनः ।
तेजः स्वगुणसंयुक्तं वायौ संयाति सङ्क्षयम् ॥ १५ ॥

आकाशे सगुणो वायुः प्रलयं याति विश्वभृत् । भूतादौ च तथाकाशो लीयते गुणसं

इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति संक्षयम् ।
वैकारिको देवगणः प्रलयं याति सत्तमाः ॥ १७ ॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महति प्रलयं व्रजेत् । महान्तमेभिः सहितं ब्रह्माणममितौज
अव्यक्तं जगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम् । एवं संहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महे
वियोजयति चान्योऽन्यं प्रधानं पुरुषं परम् । प्रधानपुंसोरजयोरेष संहार ई
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्यते लयः । गुणसाम्यं तदव्यक्तं प्रकृतिः परि

प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम् ।
कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवलः पञ्चविंशकः ॥ २२ ॥

गीयते मुनिभिः साक्षी महानेष पितामहः । एवं संहारशक्तिश्च शक्तिर्माहेश्वरी
प्रधानाद्यं विशेषान्तं देहेद्रुद्र इति श्रुतिः । योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानविन्यस्तचेत
आत्यन्तिकश्चैव लयं विदधातीह शङ्करः । इत्येष भगवान् रुद्रः संहारं कुरुते

नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तुते । पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे
नमः साङ्ख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तुते ।
धर्मध्या (ज्ञा) नाभिगम्याय निष्कलाय नमोऽस्तु ते (नमोनमः)॥५६
नमस्ते योगतत्त्वाय महायोगेश्वराय च । परावराणां प्रभवे वेदवेद्यायते नमः ॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे । नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः
नमोऽस्तुते वराहाय नारसिंहाय ते नमः । वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः
स्वर्गापवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने । नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने
देवानां पतये तुभ्यं देवार्त्तिशमनायते । भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम् ॥
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
श्रुताश्च विविधा धर्म्मा वंशा मन्वन्तराणि च ॥ ६५ ॥
सर्गश्चप्रतिसर्गश्चब्रह्माण्डस्यास्यविस्तरः । त्वंहिसर्वजगत्साक्षीविश्वोनारायणःपरः
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणं गताः ।

सूत उवाच

एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम् ॥ ६७ ॥
कौर्म्मंपुराणमखिलंयज्जगादगदाधरः । अस्मिन्पुराणेलक्ष्म्यास्तुसम्भवःकथितःपुरा
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजितः । प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णधर्माश्चवृत्तयः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम् । पितामहस्यविष्णोश्चमहेशस्यचधीमतः
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषश्चोपवर्णितः । भक्तानांलक्षणम्प्रोक्तं समाचारश्चभोजनम्
वर्णाश्रमाणांकथितं यथावदिह लक्षणम् । आदिसर्गस्ततः पश्चादण्डावरणसप्तकम्
हिरण्यगर्भः सर्गश्चकीर्त्तितोमुनिपुङ्गवाः । कालसङ्ख्याप्रकथनंमाहात्म्यञ्चेश्वरस्यच

ततो धार्व्याग्नि(?)न्मादीन् पूजयेद्भक्तिसंयुत ।
तस्मात्सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ४३ ॥
आराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम् ।
भक्तियोगसमायुक्त स्वध (क) मनिरत शुचि ॥ ४४ ॥
तादृश रूपमास्थाय आसाद्यात्यन्तिक शिवम् ।
एष योग समुद्दिष्ट सबीजोऽत्यन्तभावन ॥ ४५ ॥
यथाविधि प्रकुर्वाण प्राप्नुयादैश्वरम्पदम् ।
द्वे चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह ॥ ४६ ॥
अथापि कथितो योगो निर्बीजश्चसबीजक । ज्ञान तदुक्तं निर्बीजपूर्वं हि भवतामि
विष्णु रुद्र विरञ्चि (ञ्चि) च सबीजे साधयेद् बुध ।
अथ धाव्यादिकान्देवान्तत्परो नियतात्मवान् ॥ ४८ ॥
पूजयेत्पुरुषं विष्णु चतुर्मूर्तिधर हरिम् । अनादिनिधन देव वासुदेव सनातनं
नारायणं जगद्योनिमाकाश परमम्पदम् । तल्लिङ्गधारी नियत तद्भक्तस्तदुपाश्र
एष एव विधिर्ब्राह्मे भावने चान्तिमे मत । इत्येतत्कथितं ज्ञान भावनासंश्रयम्
इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथित यन्मयापुरा । अव्यक्तात्मकमेवेद चेतनाचेतन जगत्
तदीश्वर पर ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममय जगत् ।

सूत उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्विरराम जनार्दनम्
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णु शु (श) क्रेण सह माधवम् ॥ ५३ ॥

मुनय ऊचु

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने । नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते न
नमोनमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमोनम । माधवाय च ते नित्य नमो यज्ञेश्वराय
सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नम । नम सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥
ॐ नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने । आनन्दाय नमस्तुभ्यमायातीताय ते न

नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम् ॥ ९९ ॥
लिङ्गार्च्चननिमित्तञ्च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः ।
याथात्म्यकथनञ्चाथ लिङ्गाद्वै भीतिरेव च ॥ १०० ॥
ब्रह्मविष्णोस्तथा मध्ये कीर्त्तिता मुनिपुङ्गवाः ।
मोहस्तयोर्वै कथितो गमनञ्चोदुर्ध्वतो ह्यधः ॥ १०१ ॥
संस्तवोदेवदेवस्यप्रसादःपरमेष्ठिनः । अन्तर्द्धानञ्च लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्ततःपरम्
कीर्त्तिता चाऽनिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः ।
कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणमागतिस्तथा ॥ १०३ ॥
अनुशासनञ्च कृष्णेन वरदानं महात्मनः । गमनञ्चैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम्
कृष्णद्वैपायनस्योक्तंयुगधर्माःसनातनाः । अनुग्रहोऽथपार्थस्य वाराणस्यांगतिस्ततः
पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम् ॥ १०६ ॥
व्यासस्य तीर्थयात्राच देव्याश्चैवाथ दर्शनम् । उद्वासनञ्च कथितं वरदानं तथैव च ॥
प्रयागस्यचमाहात्म्यं क्षेत्राणामथकीर्त्तनम् । फलञ्चविपुलंविप्रामार्कण्डेयस्यनिर्गमः
भुवनानांस्वरूपञ्चज्योतिषाञ्चनिवेशनम् । कीर्त्तितश्चापिवर्षाणां नदीनाञ्चैवनिर्णयः
पर्वतानाञ्चकथनंस्थानानिच दिवौकसाम् । द्वीपानांप्रविभागश्चश्वेतद्वीपोपवर्णनम्
शयनं केशवस्याथ माहात्म्यञ्चमहात्मनः । मन्वन्तराणांकथनंविष्णोर्माहात्म्यमेवच
वेदशाखाप्रणयनं व्यासानांकथनं ततः । अवेदस्यच वेदस्य कथितं मुनिपुङ्गवाः ॥
योगेश्वराणाञ्च कथा शिष्याणाचाथ कीर्त्तनम् ।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्त्तिताः ॥ ११३ ॥
वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः । कपालित्वञ्चरुद्रस्य भिक्षाचरणमेवच
पतिव्रतानामाख्यानं तीर्थानाञ्च विनिर्णयः ।
तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्त्तितो द्विजाः ॥ ११५ ॥

दिव्यदृष्टिप्रदानञ्च ब्रह्मणः परमेष्ठिने । संस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥८८
प्रसादो गिरिशस्याथ वरदानं तथैव च । संवादो विष्णुना सार्द्धं शङ्करस्य महात्मनः
वरदानं तथा पूर्वमन्तर्द्धानं पिनाकिनः । वधश्च कथितो विप्रा मधुकैटभयोः पुरा ।
अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात् । एकीभावश्च देवेन ब्रह्मणा कथितः पुरा
विमोहो ब्रह्मणश्चाथ सञ्ज्ञाप्तिश्च हरेस्ततः । तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः ।

प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात् कथितस्ततः ।
रुद्राणां कथिता सृष्टिर्ब्रह्मणः प्रतिषेधनम् ॥ ८३ ॥

भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशको । अन्तर्द्धानञ्च देवस्य तपश्चर्याण्डजस्य च
दर्शनं देवदेवस्य नरनारीशरीरता । देव्या विभागकथनं देवदेवात् पिनाकिनः ॥८५
देव्याश्च पश्चात् कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च । हिमवद्दुहितृत्वञ्च देव्या माहात्म्यमेव
दर्शनं दिव्यरूपस्य विश्वरूपस्य दर्शनम् । नाम्नां सहस्रं कथितं पित्रा हिमवता स्वयं
उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च । भृग्वादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्त
प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्द्दनम् । दधीचस्य च दक्षस्य विवादः कथितस्त

ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुङ्गवाः ।
रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्द्धानं पिनाकिनः ॥ ९० ॥

पितामहोपदेशश्च कीर्त्यते रक्षणाय तु । दक्षस्य च प्रजासर्गः कश्यपस्य महात्म
हिरण्यकशिपोर्नाशो हिरण्याक्षवधस्तथा । ततश्च शापः कथितो देवदारुवनौकस
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम् । प्रह्लादनिग्रहश्चाथ बले संयमनं तथ

बाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिनः ।
ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञां वंशाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९५ ॥

वसुदेवात्ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः । दर्शनञ्चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम् । कैलासगमनञ्चाथ निवासस्तत्र शार्ङ्गि
ततश्च कथ्यते भीतिर्द्वारवत्यां निवासिनाम् । रक्षणं गरुडेनाथ जित्वा शत्रून्महाबल
नारदागमनञ्चैव यात्राचैव गरुत्मतः । ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामाश्रमस्ततः ॥

शान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् । मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः
श्रोतव्यञ्चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम् ।
ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान् ॥ १३६ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।
योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा ॥ १३७ ॥
सम्प्रेत्यगत्वानिरयान्शुनांयोनिंव्रजत्यधः । नमस्कृत्याहरिंविष्णुं जगद्योनिंसनातनम्
अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा । इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः
पाराशर्यस्यविप्रर्षेर्व्यासस्यच महात्मनः । श्रुत्वा नारायणाद्दिव्यांनारदो भगवानृषिः
गौतमाय ददौपूर्वं तस्माच्चैव पराशरः । पराशरोऽपिभगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते ॥ १४२ ॥
सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् । सनकाद्भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः
अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् । सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवतीसुतः
एतत्पुराणंपरमंव्यासः सर्वार्थसञ्चयम् । तस्माद्व्यासादहं श्रुत्वा भवतांपापनाशनम्
ऊक्तवान्वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने । तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये
पाराशर्याय शान्ताय नमोनारायणात्मने । तस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्रचैवप्रलीयते
नमस्तस्मै सु (प) रेशाय विष्णवे कूर्म्मरूपिणे ॥ १४७ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुत्तरार्द्धेप्रतिसर्गवर्णनंनाम
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

समाप्तैषाब्राह्मीसंहिता
शिवार्पणमस्तु ।

वधश्च कथितो विप्रा कालस्यच समासत । देवदारुवने शम्भो प्रवेशो माधवस्
दर्शन षट्कुलीयाना देवदेवस्य धीमत । वरदानश्च देवस्य नन्दने तु प्रकीर्तितम्
नैमित्तिकश्च कथित प्रतिसर्गस्तत परम् ।
प्राकृत प्रलयश्चोर्ध्वं सबाजो योग एव च ॥ ११८ ॥
एव ज्ञात्वा पुराणस्य सङ्क्षेप कीर्तयेत्तु य । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीय
एवमुक्त्वा श्रिय देवीमादाय पुरुषोत्तम । सन्त्यज्य कूर्मसंस्थान प्रजगाम हरस्त
देवाश्च सर्वेमुनय स्वानिस्थानानिभेजिरे । प्रणम्यपुरुषविष्णु गृहीत्वा ह्यमृतद्विज
एतत्पुराण सकल भाषितकूर्मरूपिणा । साक्षाद्देवाधिदेवेनविष्णुना विश्वयोनि
य पठे सतत विप्रा नियमेन समासत । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते।
लिखित्वा चैव यो दद्याद्वैशाखे कार्तिकेऽपि वा ।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्य निबोधत ॥ १२४ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वश्वर्यसमन्वित ।
भुक्त्वा तु विपुलान्मर्त्यो भोगान्दिव्यान् सुशोभनान् ॥ १२५ ॥
तत स्वर्गात्परिभ्रष्टो विप्राणा जायते कुले ।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्म विद्यामवाप्नुयात् ॥ १२६ ॥
पठित्वाध्यायमेवैकसर्वपापै प्रमुच्यते । योऽर्थंविचारयेत्सम्यक्प्राप्नोतिपरमपदम्
अध्येतव्यमिद पुण्य विप्रै पर्वणिपर्वणि । श्रोतव्यश्च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्
एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानिकृत्स्नश । एकत्र परम सेदमेतदेवातिरिच्यते ॥
इद पुराण मुक्त्वैक नान्यत्साधनकपरम् । यथावदत्र भगवान्देवो नारायणो हरि
कात्यतहिय्या विष्णुर्नतथान्येषुसुव्रता । ब्राह्मीपौराणिकाचेयसंहितापापनाशनी
अत्र त परम ब्रह्म कीर्त्यते हि यथाथत । तीर्थाना परम तीर्थं तपसाञ्च परन्तप ॥
ज्ञानाना परम ज्ञान व्रतानां परम व्रतम् । नाध्येतव्यमिद शास्त्रं वृषलस्य च सन्निधौ
योऽधीत एव मोहात्मा स याति नरकान् बहून् ।
श्राद्धे वा दविके कार्ये श्रावणाय द्विजातिभि ॥ १३४ ॥

ज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् । मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः

श्रोतव्यञ्चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम् ।

ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान् ॥ १३६ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।

योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा ॥ १३७ ॥

सम्प्रेत्यगत्वानिरयान्शुनांयोनिंव्रजत्यधः । नमस्कृत्यहरिंविष्णुंजगद्योनिंसनातनम्

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा । इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः

पाराशर्यस्यविप्रर्षेर्व्यासस्यच महात्मनः । श्रुत्वा नारायणाद्देवान्नारदो भगवानृषिः

गौतमाय ददौपूर्वं तस्माच्चैव पराशरः । पराशरोऽपिभगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः

मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम् ।

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते ॥ १४२ ॥

सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् । सनकाद्भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः

अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् । सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यव्रतीसुतः

एतत्पुराणंपरमंव्यासः सर्वार्थसञ्चयम् । तस्माद्व्यासादहं श्रुत्वा भवतांपापनाशनम्

ऊचिवान्वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने । तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये

पाराशर्याय शान्ताय नमोनारायणात्मने । तस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्रचैवप्रलीयते

नमस्तस्मै सु (प) रेशाय विष्णवे कूर्म्मरूपिणे ॥ १४७ ॥

इति श्रीकूर्ममहापुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुत्तरार्द्धेप्रतिसर्गवर्णनंनाम

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥



सा मा पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

— * —